सितम्बर,
१९३२

वर्ष १०, खण्ड २
संख्या ५, पूर्ण संख्या ११९

सम्पादक :—
मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव
श्रो० सत्यभक्त

वार्षिक चन्दा ६॥)
छः माही चन्दा ३॥)
विदेश का चन्दा ८॥)
इस अङ्क का मूल्य ॥=)

विषय सूची

क्रमाङ्क लेख लेखक पृष्ठ

❀ ❀ ❀

विविध विषय

चित्र-सूची

किसी की याद में—

क्या कहें हाल ज़माने का ख़ुलासा यह है —
तुम हमारे न रहे, कोई हमारा न रहा !

—'बिस्मिल' इलाहाबादी

[लोधा प्रेस, इगमोर (मद्रास) के सौजन्य से प्राप्त]
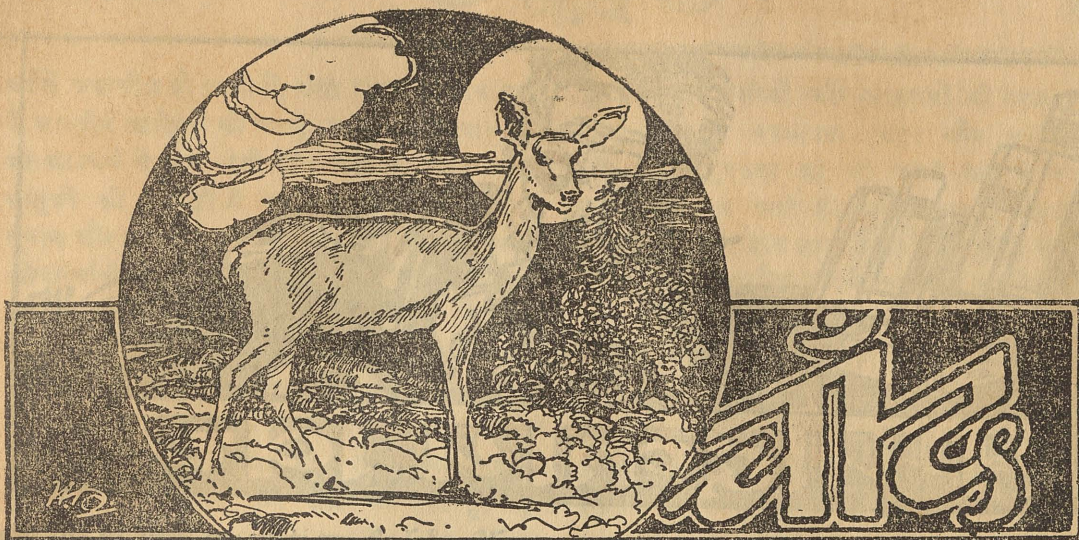
आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है, जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष १०, खण्ड २] सितम्बर, १९३२ [संख्या ५, पूर्ण संख्या ११९

यौवन के पथ पर—

[प्रोफ़ेसर रामकुमार जी वर्मा, एम० ए०]

इस जग में मैं जीवित हूँ, कण-कण के परिवर्तन से;
मुझको तुमने बाँधा है, इन साँसों के बन्धन से।
चर हूँ, पर नियति नचाती, मुझको मेरे ही मन से;
नश्वरता से लड़ता हूँ, यौवन के अवलम्बन से।
मैं भूला अपनापन-पथ, जग के इस अविदित वन से,
प्रेयसि! आओ तारों के झिलमिल प्रकाश कम्पन से॥

सितम्बर, १९३२

भारतीय श्रमजीवी

रतवर्ष प्राचीन काल से कृषि-प्रधान देश रहा है। आरम्भ से ही यहाँ के निवासी प्रायः छोटे-छोटे गाँवों में रहते आए हैं। ये लोग केवल खेती और पशु-पालन द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करते थे। गाँव भर में केवल दस-पाँच घर ऐसे होते थे, जो खेती के सिवा किसी दस्तकारी द्वारा अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण करते हों। मिसाल के लिए लुहार, कुम्हार, जुलाहा, चमार आदि। पर ये लोग अपने पेशे के साथ ही थोड़ा बहुत खेती का काम भी करते रहते थे। क्योंकि गाँवों की जन-संख्या कम होती थी और गाँव वालों की आवश्यकताएँ भी बहुत नियमित रहती थीं, इसलिए उनको पर्याप्त काम किसी-किसी समय ही मिलता था। उपरोक्त पेशे वालों के अतिरिक्त गाँव वालों को समय-समय पर सुनार, दर्ज़ी, रँगरेज, मनिहार आदि की भी आवश्यकता पड़ती थी, पर इनकी पूर्ति वे दस-पाँच मील की दूरी पर किसी छोटे क़स्बे में जाकर कर लेते थे।

इन गाँवों और क़स्बों के सिवा कुछ बड़े नगर भी थे, जहाँ शिल्पकला और कारीगरी का विशेष प्रचार था। ये नगर या तो राजाओं और बादशाहों की राजधानी थे अथवा बनारस और मथुरा जैसे तीर्थस्थान। इन स्थानों में बड़े-बड़े व्यापारी भी पाए जाते थे, जो तैयार होने वाले माल को दूर-दूर के स्थानों तक पहुँचा देते थे। इन स्थानों में जो माल बनता था, वह सौन्दर्य और कला की दृष्टि से उच्च कोटि का होता था और अधिकांश में देश तथा विदेशों के श्रीमान पुरुषों के उपयोग में आता था। ग़रीबों तक उसकी पहुँच शायद ही होती थी, क्योंकि हाथ से बनाए जाने के कारण उसमें बहुत परिश्रम होता था और समय भी लगता था, इसलिए सम्भवतः उसका मूल्य अधिक होता था और धनवान लोग ही उसे ख़रीद सकते थे। इन वस्तुओं की श्रेष्ठता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि बड़े-बड़े राष्ट्रों के सम्राट और प्रधान व्यक्ति उनको बड़े आग्रह से लेते थे। जिस प्रकार विदेशी माल की चमक-दमक और सुन्दरता को देख कर इस समय हमारी

आँखें चकाचौंध हो जाती हैं, उसी प्रकार प्राचीन काल में भारतीय कारीगरों की बनाई वस्तुएँ अन्य देश वालों को आश्चर्य में डाल देती थीं। यहाँ के व्यापारी उन वस्तुओं को जहाज़ों में भर कर ईरान, अरब, टर्की, यूनान और इटली तक ले जाते थे और उसके बदले में सोना-चाँदी लाकर देश की सम्पत्ति की वृद्धि करते थे। भारत-सरकार द्वारा प्रकाशित इम्पीरियल गैज़ेटियर तक में यह स्वीकार किया गया है कि ईसा की पहली शताब्दी में भारत का व्यापारिक सम्बन्ध रोम के साथ था और वहाँ से प्रायः ६० लाख रुपए का सोना-चाँदी प्रतिवर्ष इस देश में आता था। मुग़ल बादशाहों के ज़माने में इस व्यापार की और भी वृद्धि हुई और यूरोप के तमाम प्रधान देशों में भारतीय माल की माँग होने लगी।

पर मुग़ल साम्राज्य के पतन होने के बाद जैसे ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पैर इस देश में जमे, उसने यहाँ के शिल्प तथा व्यवसाय का गला घोंटना आरम्भ कर दिया। उसने बलपूर्वक यहाँ के कच्चे माल को विलायत भेजना और विलायत में बने माल को यहाँ बेचना आरम्भ किया। इसके फल से कुछ ही दिनों में हालत बिल्कुल बदल गई और यहाँ के शिल्पकार नष्ट-भ्रष्ट हो गए। उनको या तो खेती का सहारा लेना पड़ा या छोटी-मोटी नौकरी करके प्राणों की रक्षा करनी पड़ी।

कुछ दिन बाद यूरोप में विज्ञान द्वारा मैशीनों की आश्चर्यजनक उन्नति होने लगी और उनके द्वारा माल बनाने के सम्बन्ध में घोर क्रान्ति हो गई। जितना काम एक शिल्पकार हाथ द्वारा दिन भर में कर सकता था, उससे अधिक काम मैशीन द्वारा घण्टे भर से भी कम में किया जा सकता था। फिर मैशीन का माल देखने में भी अधिक साफ़ और भड़कीला होता था। इससे रही-सही दस्तकारी का भी नाश हो गया और भारतवर्ष तैयार माल के लिए सर्वथा विदेशों का मुखापेक्षी हो गया।

आधुनिक उद्योग-धन्धों का जन्म

यह अवस्था अधिक दिनों तक क़ायम न रह सकी। जैसे ही देश में शान्ति स्थापित हुई और लोगों को आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन का अवसर मिला, उनका ध्यान मैशीनों और कारख़ानों की तरफ़ गया। हिन्दू व्यापारी स्वभावतः चतुर और दूरदर्शी थे और समय-सूचकता का भी उनमें अभाव न था। उन्होंने अवसर आते ही अपने कारबार के ढङ्ग को बदल दिया और हाथ द्वारा माल तैयार करने के तरीक़े को छोड़ कर आधुनिक ढङ्ग के कारख़ाने स्थापित किए। इस कार्य में अग्रणी बम्बई और अहमदाबाद के व्यापारी थे। सन् १८५१ में बम्बई में सब से पहली मिल क़ायम हुई। दस-बारह वर्ष के भीतर ही उनकी संख्या एक दर्जन हो गई। सन् १८७१ में तमाम हिन्दुस्तान में ६३ कपड़े की मिलें थीं, जिनमें ५१ हज़ार मज़दूर काम करते थे। तब से आज तक इस व्यवसाय की सन्तोषजनक उन्नति हुई है और मिलों की संख्या २६४ और मज़दूरों की २ लाख ६० हज़ार तक जा पहुँची है। जूट-मिलों की भी इसी प्रकार उन्नति हुई है। सन् १८८० में उनकी संख्या २२ थी और उनमें २७ हज़ार मज़दूर काम करते थे। इस समय उनकी संख्या क्रमशः ६१ और २ लाख १६ हज़ार है। यही परिस्थिति लोहे, काग़ज़ और शीशे के कारख़ानों और कोयलों की खानों आदि की है। इस समय देश में सब प्रकार की फ़ैक्टरियों की संख्या ८,१२६ और उनमें काम करने वाले मज़दूरों की १५ लाख ४३ हज़ार १६६ तक जा पहुँची है। इनमें से १२,४६,१६५ मर्द; २,५७,१६१ स्त्रियाँ और ४६,८४३ बच्चे हैं। इनके सिवाय क़रीब १० लाख व्यक्ति रेलवे में, ७॥ लाख चाय वग़ैरह के बग़ीचों में, २ लाख ६१ हज़ार खानों में, १ लाख ४० हज़ार जहाज़ों और बन्दरगाहों पर काम करते हैं। ये सब लोग श्रमजीवी हैं, पर विस्तार-भय से इस लेख में फ़ैक्टरियों में काम करने वाले मज़दूरों की चर्चा ही विशेष रूप से की जायगी।

कल-कारख़ानों की उपरोक्त उन्नति भारतवासियों के लिए एक दृष्टि से प्रशंसा का विषय है। क्योंकि इस सम्बन्ध में इस देश को वे साधन और सुभीते उपलब्ध न थे, जो इङ्गलैण्ड, जर्मनी, अमेरिका आदि देशों को प्राप्त हैं। न तो यहाँ पर उन देशों के समान ज्ञान-विज्ञान की उन्नति हुई है और न विविध प्रकार की मैशीनों का आविष्कार। मैशीनों की कमी यहाँ के कल-कारख़ानों की उन्नति में सदा बाधा-स्वरूप रही है।

सितम्बर, १९३२

भारतीय श्रमजीवी

रतवर्ष प्राचीन काल से कृषि-प्रधान देश रहा है। आरम्भ से ही यहाँ के निवासी प्रायः छोटे-छोटे गाँवों में रहते आए हैं। ये लोग केवल खेती और पशु-पालन द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करते थे। गाँव भर में केवल दस-पाँच घर ऐसे होते थे, जो खेती के सिवा किसी दस्तकारी द्वारा अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण करते हों। मिसाल के लिए लुहार, कुम्हार, जुलाहा, चमार आदि। पर ये लोग अपने पेशे के साथ ही थोड़ा बहुत खेती का काम भी करते रहते थे। क्योंकि गाँवों की जन-संख्या कम होती थी और गाँव वालों की आवश्यकताएँ भी बहुत नियमित रहती थीं, इसलिए उनको पर्याप्त काम किसी-किसी समय ही मिलता था। उपरोक्त पेशे वालों के अतिरिक्त गाँव वालों को समय-समय पर सुनार, दर्ज़ी, रँगरेज, मनिहार आदि की भी आवश्यकता पड़ती थी, पर इनकी पूर्ति वे दस-पाँच मील की दूरी पर किसी छोटे क़स्बे में जाकर कर लेते थे।

इन गाँवों और क़स्बों के सिवा कुछ बड़े नगर भी थे, जहाँ शिल्पकला और कारीगरी का विशेष प्रचार था। ये नगर या तो राजाओं और बादशाहों की राजधानी थे अथवा बनारस और मथुरा जैसे तीर्थस्थान। इन स्थानों में बड़े-बड़े व्यापारी भी पाए जाते थे, जो तैयार होने वाले माल को दूर-दूर के स्थानों तक पहुँचा देते थे। इन स्थानों में जो माल बनता था, वह सौन्दर्य और कला की दृष्टि से उच्च कोटि का होता था और अधिकांश में देश तथा विदेशों के श्रीमान पुरुषों के उपयोग में आता था। ग़रीबों तक उसकी पहुँच शायद ही होती थी, क्योंकि हाथ से बनाए जाने के कारण उसमें बहुत परिश्रम होता था और समय भी लगता था, इसलिए सम्भवतः उसका मूल्य अधिक होता था और धनवान लोग ही उसे ख़रीद सकते थे। इन वस्तुओं की श्रेष्ठता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि बड़े-बड़े राष्ट्रों के सम्राट और प्रधान व्यक्ति उनको बड़े आग्रह से लेते थे। जिस प्रकार विदेशी माल की चमक-दमक और सुन्दरता को देख कर इस समय हमारी

आँखें चकाचौंध हो जाती हैं, उसी प्रकार प्राचीन काल में भारतीय कारीगरों की बनाई वस्तुएँ अन्य देश वालों को आश्चर्य में डाल देती थीं। यहाँ के व्यापारी उन वस्तुओं को जहाज़ों में भर कर ईरान, अरब, टर्की, यूनान और इटली तक ले जाते थे और उसके बदले में सोना-चाँदी लाकर देश की सम्पत्ति की वृद्धि करते थे। भारत-सरकार द्वारा प्रकाशित इम्पीरियल गैज़ेटियर तक में यह स्वीकार किया गया है कि ईसा की पहली शताब्दी में भारत का व्यापारिक सम्बन्ध रोम के साथ था और वहाँ से प्रायः ६० लाख रुपए का सोना-चाँदी प्रतिवर्ष इस देश में आता था। मुग़ल बादशाहों के ज़माने में इस व्यापार की और भी वृद्धि हुई और यूरोप के तमाम प्रधान देशों में भारतीय माल की माँग होने लगी।

पर मुग़ल साम्राज्य के पतन होने के बाद जैसे ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पैर इस देश में जमे, उसने यहाँ के शिल्प तथा व्यवसाय का गला घोंटना आरम्भ कर दिया। उसने बलपूर्वक यहाँ के कच्चे माल को विलायत भेजना और विलायत में बने माल को यहाँ बेचना आरम्भ किया। इसके फल से कुछ ही दिनों में हालत बिल्कुल बदल गई और यहाँ के शिल्पकार नष्ट-भ्रष्ट हो गए। उनको या तो खेती का सहारा लेना पड़ा या छोटी-मोटी नौकरी करके प्राणों की रक्षा करनी पड़ी।

कुछ दिन बाद यूरोप में विज्ञान द्वारा मैशीनों की आश्चर्यजनक उन्नति होने लगी और उनके द्वारा माल बनाने के सम्बन्ध में घोर क्रान्ति हो गई। जितना काम एक शिल्पकार हाथ द्वारा दिन भर में कर सकता था, उससे अधिक काम मैशीन द्वारा घण्टे भर से भी कम में किया जा सकता था। फिर मैशीन का माल देखने में भी अधिक साफ़ और भड़कीला होता था। इससे रही-सही दस्तकारी का भी नाश हो गया और भारतवर्ष तैयार माल के लिए सर्वथा विदेशों का मुखापेक्षी हो गया।

आधुनिक उद्योग-धन्धों का जन्म

यह अवस्था अधिक दिनों तक क़ायम न रह सकी। जैसे ही देश में शान्ति स्थापित हुई और लोगों को आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन का अवसर मिला, उनका ध्यान मैशीनों और कारख़ानों की तरफ़ गया। हिन्दू व्यापारी स्वभावतः चतुर और दूरदर्शी थे और समय-सूचकता का भी उनमें अभाव न था। उन्होंने अवसर आते ही अपने कारबार के ढङ्ग को बदल दिया और हाथ द्वारा माल तैयार करने के तरीक़े को छोड़ कर आधुनिक ढङ्ग के कारख़ाने स्थापित किए। इस कार्य में अग्रणी बम्बई और अहमदाबाद के व्यापारी थे। सन् १८५१ में बम्बई में सब से पहली मिल क़ायम हुई। दस-बारह वर्ष के भीतर ही उनकी संख्या एक दर्जन हो गई। सन् १८७१ में तमाम हिन्दुस्तान में ६३ कपड़े की मिलें थीं, जिनमें ५१ हज़ार मज़दूर काम करते थे। तब से आज तक इस व्यवसाय की सन्तोषजनक उन्नति हुई है और मिलों की संख्या २६४ और मज़दूरों की २ लाख ६० हज़ार तक जा पहुँची है। जूट-मिलों की भी इसी प्रकार उन्नति हुई है। सन् १८८० में उनकी संख्या २२ थी और उनमें २७ हज़ार मज़दूर काम करते थे। इस समय उनकी संख्या क्रमशः ६१ और २ लाख १६ हज़ार है। यही परिस्थिति लोहे, काग़ज़ और शीशे के कारख़ानों और कोयलों की खानों आदि की है। इस समय देश में सब प्रकार की फ़ैक्टरियों की संख्या ८,१२६ और उनमें काम करने वाले मज़दूरों की १५ लाख ४३ हज़ार १६६ तक जा पहुँची है। इनमें से १२,४६,१६५ मर्द; २,४७,१६१ स्त्रियाँ और ४६,८४३ बच्चे हैं। इनके सिवाय क़रीब १० लाख व्यक्ति रेलवे में, ७॥ लाख चाय वग़ैरह के बग़ीचों में, २ लाख ६१ हज़ार खानों में, १ लाख ४० हज़ार जहाज़ों और बन्दरगाहों पर काम करते हैं। ये सब लोग श्रमजीवी हैं, पर विस्तार-भय से इस लेख में फ़ैक्टरियों में काम करने वाले मज़दूरों की चर्चा ही विशेष रूप से की जायगी।

कल-कारख़ानों की उपरोक्त उन्नति भारतवासियों के लिए एक दृष्टि से प्रशंसा का विषय है। क्योंकि इस सम्बन्ध में इस देश को वे साधन और सुभीते उपलब्ध न थे, जो इङ्गलैण्ड, जर्मनी, अमेरिका आदि देशों को प्राप्त हैं। न तो यहाँ पर उन देशों के समान ज्ञान-विज्ञान की उन्नति हुई है और न विविध प्रकार की मैशीनों का आविष्कार। मैशीनों की कमी यहाँ के कल-कारख़ानों की उन्नति में सदा बाधा-स्वरूप रही है।

सितम्बर, १९३२

भारतीय श्रमजीवी

रतवर्ष प्राचीन काल से कृषि-प्रधान देश रहा है। आरम्भ से ही यहाँ के निवासी प्रायः छोटे-छोटे गाँवों में रहते आए हैं। ये लोग केवल खेती और पशु-पालन द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करते थे। गाँव भर में केवल दस-पाँच घर ऐसे होते थे, जो खेती के सिवा किसी दस्तकारी द्वारा अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण करते हों। मिसाल के लिए लुहार, कुम्हार, जुलाहा, चमार आदि। पर ये लोग अपने पेशे के साथ ही थोड़ा बहुत खेती का काम भी करते रहते थे। क्योंकि गाँवों की जन-संख्या कम होती थी और गाँव वालों की आवश्यकताएँ भी बहुत नियमित रहती थीं, इसलिए उनको पर्याप्त काम किसी-किसी समय ही मिलता था। उपरोक्त पेशे वालों के अतिरिक्त गाँव वालों को समय-समय पर सुनार, दर्ज़ी, रँगरेज, मनिहार आदि की भी आवश्यकता पड़ती थी, पर इनकी पूर्ति वे दस-पाँच मील की दूरी पर किसी छोटे क़स्बे में जाकर कर लेते थे।

इन गाँवों और क़स्बों के सिवा कुछ बड़े नगर भी थे, जहाँ शिल्पकला और कारीगरी का विशेष प्रचार था। ये नगर या तो राजाओं और बादशाहों की राजधानी थे अथवा बनारस और मथुरा जैसे तीर्थस्थान। इन स्थानों में बड़े-बड़े व्यापारी भी पाए जाते थे, जो तैयार होने वाले माल को दूर-दूर के स्थानों तक पहुँचा देते थे। इन स्थानों में जो माल बनता था, वह सौन्दर्य और कला की दृष्टि से उच्च कोटि का होता था और अधिकांश में देश तथा विदेशों के श्रीमान पुरुषों के उपयोग में आता था। ग़रीबों तक उसकी पहुँच शायद ही होती थी, क्योंकि हाथ से बनाए जाने के कारण उसमें बहुत परिश्रम होता था और समय भी लगता था, इसलिए सम्भवतः उसका मूल्य अधिक होता था और धनवान लोग ही उसे ख़रीद सकते थे। इन वस्तुओं की श्रेष्ठता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि बड़े-बड़े राष्ट्रों के सम्राट और प्रधान व्यक्ति उनको बड़े आग्रह से लेते थे। जिस प्रकार विदेशी माल की चमक-दमक और सुन्दरता को देख कर इस समय हमारी

आँखें चकाचौंध हो जाती हैं, उसी प्रकार प्राचीन काल में भारतीय कारीगरों की बनाई वस्तुएँ अन्य देश वालों को आश्चर्य में डाल देती थीं। यहाँ के व्यापारी उन वस्तुओं को जहाज़ों में भर कर ईरान, अरब, टर्की, यूनान और इटली तक ले जाते थे और उसके बदले में सोना-चाँदी लाकर देश की सम्पत्ति की वृद्धि करते थे। भारत-सरकार द्वारा प्रकाशित इम्पीरियल गैज़ेटियर तक में यह स्वीकार किया गया है कि ईसा की पहली शताब्दी में भारत का व्यापारिक सम्बन्ध रोम के साथ था और वहाँ से प्रायः ६० लाख रुपए का सोना-चाँदी प्रतिवर्ष इस देश में आता था। मुग़ल बादशाहों के ज़माने में इस व्यापार की और भी वृद्धि हुई और यूरोप के तमाम प्रधान देशों में भारतीय माल की माँग होने लगी।

पर मुग़ल साम्राज्य के पतन होने के बाद जैसे ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पैर इस देश में जमे, उसने यहाँ के शिल्प तथा व्यवसाय का गला घोंटना आरम्भ कर दिया। उसने बलपूर्वक यहाँ के कच्चे माल को विलायत भेजना और विलायत में बने माल को यहाँ बेचना आरम्भ किया। इसके फल से कुछ ही दिनों में हालत बिल्कुल बदल गई और यहाँ के शिल्पकार नष्ट-भ्रष्ट हो गए। उनको या तो खेती का सहारा लेना पड़ा या छोटी-मोटी नौकरी करके प्राणों की रक्षा करनी पड़ी।

कुछ दिन बाद यूरोप में विज्ञान द्वारा मैशीनों की आश्चर्यजनक उन्नति होने लगी और उनके द्वारा माल बनाने के सम्बन्ध में घोर क्रान्ति हो गई। जितना काम एक शिल्पकार हाथ द्वारा दिन भर में कर सकता था, उससे अधिक काम मैशीन द्वारा घण्टे भर से भी कम में किया जा सकता था। फिर मैशीन का माल देखने में भी अधिक साफ़ और भड़कीला होता था। इससे रही-सही दस्तकारी का भी नाश हो गया और भारतवर्ष तैयार माल के लिए सर्वथा विदेशों का मुखापेक्षी हो गया।

आधुनिक उद्योग-धन्धों का जन्म

यह अवस्था अधिक दिनों तक क़ायम न रह सकी। जैसे ही देश में शान्ति स्थापित हुई और लोगों को आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन का अवसर मिला, उनका ध्यान मैशीनों और कारख़ानों की तरफ़ गया। हिन्दू व्यापारी स्वभावतः चतुर और दूरदर्शी थे और समय-सूचकता का भी उनमें अभाव न था। उन्होंने अवसर आते ही अपने कारबार के ढङ्ग को बदल दिया और हाथ द्वारा माल तैयार करने के तरीक़े को छोड़ कर आधुनिक ढङ्ग के कारख़ाने स्थापित किए। इस कार्य में अग्रणी बम्बई और अहमदाबाद के व्यापारी थे। सन् १८५१ में बम्बई में सब से पहली मिल क़ायम हुई। दस-बारह वर्ष के भीतर ही उनकी संख्या एक दर्जन हो गई। सन् १८७१ में तमाम हिन्दुस्तान में ६३ कपड़े की मिलें थीं, जिनमें ५१ हज़ार मज़दूर काम करते थे। तब से आज तक इस व्यवसाय की सन्तोषजनक उन्नति हुई है और मिलों की संख्या २६४ और मज़दूरों की २ लाख ६० हज़ार तक जा पहुँची है। जूट-मिलों की भी इसी प्रकार उन्नति हुई है। सन् १८८० में उनकी संख्या २२ थी और उनमें २७ हज़ार मज़दूर काम करते थे। इस समय उनकी संख्या क्रमशः ६१ और २ लाख १६ हज़ार है। यही परिस्थिति लोहे, काग़ज़ और शीशे के कारख़ानों और कोयलों की खानों आदि की है। इस समय देश में सब प्रकार की फ़ैक्टरियों की संख्या ८,१२९ और उनमें काम करने वाले मज़दूरों की १५ लाख ५३ हज़ार १६६ तक जा पहुँची है। इनमें से १२,४६,१६५ मर्द; २,५७,१६१ स्त्रियाँ और ४६,८४३ बच्चे हैं। इनके सिवाय क़रीब १० लाख व्यक्ति रेलवे में, ७॥ लाख चाय वग़ैरह के बग़ीचों में, २ लाख ६१ हज़ार खानों में, १ लाख ४० हज़ार जहाज़ों और बन्दरगाहों पर काम करते हैं। ये सब लोग श्रमजीवी हैं, पर विस्तार-भय से इस लेख में फ़ैक्टरियों में काम करने वाले मज़दूरों की चर्चा ही विशेष रूप से की जायगी।

कल-कारख़ानों की उपरोक्त उन्नति भारतवासियों के लिए एक दृष्टि से प्रशंसा का विषय है। क्योंकि इस सम्बन्ध में इस देश को वे साधन और सुभीते उपलब्ध न थे, जो इङ्गलैण्ड, जर्मनी, अमेरिका आदि देशों को प्राप्त हैं। न तो यहाँ पर उन देशों के समान ज्ञान-विज्ञान की उन्नति हुई है और न विविध प्रकार की मैशीनों का आविष्कार। मैशीनों की कमी यहाँ के कल-कारख़ानों की उन्नति में सदा बाधा-स्वरूप रही है।

इसके कारण इस देश में कारख़ाना खोलने का ख़र्च दूसरे देशों की अपेक्षा बहुत अधिक पड़ता है। मशीनें तैयार करने के लिए आवश्यक लोहे और कोयले का भी यहाँ अभाव रहा है। यद्यपि इन पदार्थों की यहाँ की भूमि में कमी नहीं है, पर इन खानों की वृद्धि बहुत धीरे-धीरे हुई है। कोयले की कमी के कारण कारख़ानों के चलाने का ख़र्च भी यहाँ अधिक पड़ता है। यहाँ के मज़दूरों में भी कुछ ऐसी त्रुटियाँ हैं, जिनके कारण इन व्यवसायों की यथोचित उन्नति नहीं होने पाती।

इन असुविधाओं के होते हुए भी इस देश ने जो औद्योगिक उन्नति की है, उसका कारण यह है कि यहाँ के व्यवसायियों को कुछ ऐसे सुभीते भी प्राप्त हैं, जो अन्य देशों को नहीं हैं। उनमें सर्वप्रधान यह है कि जिस प्रकार इङ्गलैण्ड आदि को कच्चा माल पाने और तैयार माल को बेचने के लिए विदेशों पर आधार रखना पड़ता है, उस तरह की परिस्थिति भारतवर्ष की नहीं है। यहाँ पर रुई, जूट आदि सब प्रकार के कच्चे पदार्थ प्रचुर परिमाण में मिलते हैं, और कारख़ानों में बनने वाले माल को ख़रीदने के लिए बहुत बड़ी जन-संख्या भी मौजूद है। एक सुभीता यह भी है कि जन-संख्या की अधिकता और ग़रीबी के कारण यहाँ मज़दूर अन्य देशों की अपेक्षा सस्ते मिल जाते हैं।

मज़दूर कहाँ से आते हैं ?

भारतवर्ष की फ़ैक्टरियों में जितने मज़दूर काम करते हैं, वे प्रायः सब गाँवों के रहने वाले होते हैं। यद्यपि कारख़ानों का अस्वास्थ्यकर और बन्धनयुक्त जीवन इन खुली हवा में रहने वाले स्वच्छन्द प्रकृति के देहातियों के लिए बहुत कष्टकर प्रतीत होता है, पर कितने ही कारणों से लाचार होकर उनको अपनी प्रिय जन्मभूमि छोड़नी पड़ती है। इनमें मुख्य कारण तो यह है कि आजकल जन-संख्या की वृद्धि के कारण खेती के लायक़ ज़मीन का अभाव होता जाता है, और धीरे-धीरे ज़मीन की उर्वरा-शक्ति भी घटती जाती है। इससे कितने लोगों को तो ज़मीन मिलती ही नहीं और जिनको मिलती है, उनमें से कितनों के ही खेतों की उपज इतनी नहीं होती, जिससे वे लगान इत्यादि चुका कर अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण कर सकें। फ़सल के ख़राब हो जाने या अकाल पड़ जाने की दशा में उनका कष्ट और भी बढ़ जाता है और उनको लाचार होकर किसी कारख़ाने में जाकर रुपए कमाने की चेष्टा करनी पड़ती है। दूसरा कारण यह है कि यहाँ के अधिकांश लोग अपनी प्राचीन प्रवृत्ति के कारण खेती को इतना महत्वपूर्ण समझते हैं कि उसके द्वारा भरण-पोषण न हो सकने पर भी उस पर से अपना हक़ छोड़ना नहीं चाहते। इसलिए किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर उसकी ज़मीन तमाम लड़कों को बाँटी जाती है। उन लड़कों के लड़के भी ऐसा ही करते हैं। परिणाम-स्वरूप कुछ दिनों में ज़मीन इतने छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट जाती है कि उसके द्वारा उन लोगों का गुज़ारा हो सकना असम्भव हो जाता है। ऐसे लोगों को भी इस बात की आवश्यकता होती है कि वे कुछ दिनों के लिए शहर में जाकर कुछ रुपया कमा लें, ताकि घर का काम चल सके। जो लोग संयुक्त-कुटुम्ब-प्रथा के अनुसार रहते हैं और जिनके पास इतनी ज़मीन नहीं होती कि घर के तमाम लोग उसमें काम कर सकें, तो उनमें से दो-एक आदमी कारख़ानों में चले जाते हैं। इससे घर का बोझ हलका हो जाता है और वे थोड़ा-बहुत रुपया भी अपने घर वालों के सहायतार्थ भेजते रहते हैं। इन कारणों के सिवा कुछ लोग सामाजिक अत्याचारों से तङ्ग आकर भी गाँवों का रहना छोड़ कर शहरों में जा बसते हैं, और कारख़ानों में काम करने लगते हैं। गाँवों के लोग सामाजिक और धार्मिक मामलों में शहर वालों की अपेक्षा अधिक कट्टर और लकीर के फ़क़ीर होते हैं और वहाँ किसी व्यक्ति को इन विषयों में स्वाधीनता मिल सकनी असम्भव है। वहाँ पर जो लोग किसी ग़ैर जाति की स्त्री से विवाह कर लेते हैं या विधवा-विवाह वग़ैरह करते हैं या किसी अन्य सामाजिक प्रथा के विरुद्ध चलते हैं, उनको प्रायः इतना तङ्ग किया जाता है कि उनका वहाँ ठहर सकना कठिन हो जाता है। उन लोगों को अपना कल्याण इसी में दिखलाई देता है कि कारख़ाने में जाकर काम करें, जहाँ जात-पाँत के बन्धनों की बहुत कम परवाह की जाती है।

श्रमजीवियों की अस्थिर दशा

पर इस प्रकार कारख़ाने में काम करने के लिए आने वालों में एक ख़ासियत यह होती है कि वे कभी

अधिक दिनों तक जम कर काम नहीं करते। जिनका घर पास होता है, वे कुछ महीनों में और जिनका दूर होता है, वे एक-दो साल में अपने घर अवश्य जाते हैं। कुछ लो चार-छः महीने बाद लौट आते हैं, पर शेष तब तक कारख़ाने का ख़्याल नहीं करते, जब तक कि फिर किसी आर्थिक सङ्कट में न फँसें। इन लोगों के लौटने का एक कारण तो यह होता है कि अपने खेतों की, जिन्हें वे अपने घर वालों या रिश्तेदारों के भरोसे छोड़ गए थे, देख-भाल करें और दूसरा यह कि अपने स्त्री-बच्चों से, जिन्हें वे अनेक प्रकार की असुविधाओं के ख़्याल से साथ नहीं ले जाते, भेंट कर लें। ख़ासकर जो लोग संयुक्त परिवारों में रहते हैं, वे तो अपने स्त्री-बच्चों को अवश्य ही गाँव में छोड़ जाते हैं। घर वाले भी उनको यह सोच कर साथ में नहीं जाने देते कि इनके कारण शहर में नौकरी के लिए जाने वाला व्यक्ति घर से सम्बन्ध-विच्छेद न कर सकेगा और कुछ न कुछ सहायता करता रहेगा। कितने ही लोग तो, जिनके घर में कोई काम करने लायक़ मर्द नहीं होता, प्रत्येक फ़सल के अवसर पर महीने-दो महीने के लिए नौकरी छोड़ कर गाँव चले जाते हैं। कितने ही बिना ज़मीन वाले मज़दूर भी फ़सल कटने आदि के अवसर पर, जब कि गाँवों में मज़दूरों की माँग बहुत बढ़ जाती है और मज़दूरी भी काफ़ी मिलती है, कारख़ानों से गाँवों को चल देते हैं।

श्रमजीवी-दल की उत्पत्ति में बाधा

इस प्रवृत्ति का एक हानिकारक परिणाम यह होता है कि इस देश के मज़दूर मैशीन द्वारा कार्य करने में निपुणता प्राप्त नहीं कर पाते। इससे न तो वे काफ़ी वेतन पा सकते हैं और न कारख़ाने वाला यथोचित नफ़ा उठा सकता है। यही कारण है कि यहाँ के मज़दूरों को योग्यता की दृष्टि से अन्य देश के मज़दूरों की अपेक्षा बहुत पिछड़ा हुआ माना जाता है। आम तौर पर लोगों का ख़्याल है कि एक अङ्गरेज़-मज़दूर तीन या चार हिन्दुस्तानी मज़दूरों के बराबर काम करता है। एक बड़ी हानि और भी है। इसके कारण इस देश में एक ऐसे श्रमजीवी-दल की सृष्टि नहीं होने पाती, जो औद्योगिक क्षेत्र को ही प्रधान समझे और उसमें अपना प्रभाव बढ़ाने की चेष्टा करे। ऐसे श्रमजीवी-दल की सृष्टि हुए बिना भारत कभी विदेशियों के पञ्जे से स्वाधीनता लाभ कर सकेगा या नहीं, यह सन्देहजनक है। क्योंकि कृषि-कार्य करने वालों की परिस्थिति ऐसी नहीं होती कि वे कोई बड़ा सङ्गठन बना कर देश की स्वाधीनता जैसे महान कार्य को पूरा कर सकें। साथ ही उन सब की अवस्था में इतना अन्तर होता है कि उनमें कभी एकात्मता का भाव उत्पन्न ही नहीं होता। एक सौ बीघा ज़मीन रखने वाले किसान का स्वार्थ पाँच बीघे रखने वाले से कदापि नहीं मिल सकता। क्योंकि उन दोनों की आर्थिक अवस्था में बहुत अन्तर होगा और जिन बातों का कष्ट तथा अभाव एक अनुभव करता होगा उसका सम्भवतः दूसरे को पता भी न होगा। इसके अतिरिक्त तमाम किसानों का अधिकार ज़मीन पर एक सा नहीं होता। किसी का अधिकार पीढ़ी दर पीढ़ी के लिए स्थायी होता है और किसी को ज़मींदार इच्छा करते ही हटा देता है। किसी को ज़मीन का लगान एक रुपया बीघा देना पड़ता है और दूसरे को उसी तरह की ज़मीन का दस रुपए बीघा। ऐसे भिन्न-भिन्न आर्थिक दशा वाले लोग किस प्रकार एक ही उद्देश्य के लिए मिल कर खड़े हो सकते हैं। इसके सिवाय गाँव इतने बिखरे हुए, दूर-दूर और एक-दूसरे की दशा से अनभिज्ञ होते हैं कि उनका एक नियत समय पर शीघ्रतापूर्वक कार्य कर सकना या आन्दोलन उठा सकना बड़ा कठिन है। इसके विपरीत कारख़ाने में काम करने वाले मज़दूर एक सेना की भाँति सङ्गठित और आज्ञापालन के अभ्यस्त हो जाते हैं। उनको एक साथ उठना, काम पर जाना और खाना-पीना तथा सोना होता है। उनकी छुट्टी तथा दिल-बहलाव का समय तथा ढङ्ग भी प्रायः एक ही होता है। उनकी आर्थिक दशा प्रायः समान होती है, सबका खाना-पीना, कपड़े आदि प्रायः मिलते-जुलते होते हैं। कारख़ाने में उनको समान रूप से कष्ट या आराम उठाना पड़ता है और पूँजीपति या शासक उनके लिए जो नियम बनाते हैं, उनका प्रभाव सब लोगों पर एक सा पड़ता है। उनमें जात-पाँत और मज़हब के बन्धन भी बहुत शिथिल हो जाते हैं और जिन लोगों से उनका आर्थिक हित समान होता है,

इस प्रकार प्रायः सुबह के ४ बजे से रात के नौ बजे तक का समय उनको काम करते ही बीतता है। ऐसी हालत में सांसारिक उन्नति और मनोविनोद की बात तो दूर रही, अपने इष्ट-मित्रों से दुःख-सुख की दो बातें करने अथवा अपनी कष्टपूर्ण परिस्थिति पर विचार करने का भी मौक़ा उनको नहीं मिलता। खाना खाते ही वे थकावट के कारण प्रायः दस-पाँच मिनट में नाक बजाने लगते हैं। यदि वे थोड़ी देर जगना भी चाहें, तो सुबह को उठने में देर होने का भय बना रहता है।

वेतन

इन श्रमजीवियों को जो मज़दूरी दी जाती है, वह प्रायः इतनी होती है कि जिससे वे किसी तरह प्राणों की रक्षा कर सकें। अच्छा खाना या अच्छा पहिनना तो वे जानते ही नहीं, बीमारी की हालत में न वे दवा करा सकते हैं और न पथ्य पा सकते हैं! अगर प्रकृति ने दया-वश चङ्गा कर दिया तो ख़ैर, नहीं तो संसार से चल बसते हैं। उनको अपनी आँखों से अपने छोटे-छोटे बच्चों को रोटी के टुकड़े के लिए रोते या लड़ते-झगड़ते देखना पड़ता है। जाड़े में उनको फटे-टूटे कपड़ों या कबाड़ियों के यहाँ मिलने वाले पुराने कोटों से काम चलाना पड़ता है और गर्मी के दिनों में नङ्गे बदन रहना होता है। यह मामूली मज़दूरी भी उनको सही-सलामत नहीं मिल जाती, वरन् इस पर कितने ही गृद्धों की निगाह लगी रहती है। पहले तो कारख़ाने का मालिक ही उसका एक अंश जुर्माने के स्वरूप में काट लेता है। कारख़ानों में मज़दूरों के साथ बड़ा डाट-डपट का व्यवहार किया जाता है और जहाँ ज़रा सी भूल हुई या काम पर पहुँचने में कुछ देरी हुई, जुर्माना ठोंक दिया जाता है। ब्याज पर रुपया देने वाले पठान या बौहरे भी मज़दूरों का बुरी तरह से रक्त-शोषण करते हैं। यदि कभी बीमारी के कारण या हड़ताल अथवा 'लॉकआउट' के कारण मज़दूर को दस-पाँच रुपए क़र्ज़ लेने की आवश्यकता पड़ गई, तो फिर जन्म भर उससे पिण्ड नहीं छूटता। वह प्रति मास आठ आना या रुपया के हिसाब से चुकाता हुआ पचासों रुपए दे डालता है, तो भी उस दस रुपए में कमी नहीं पड़ती। इस क़र्ज़ के कारण उस ग़रीब को धमकियाँ सहनी पड़ती हैं, गालियाँ सुननी पड़ती हैं और अन्य प्रकार से भी अपमानित होना पड़ता है। इनके सिवा पण्डे-पुरोहित आदि धर्मजीवी भी उस पर घात लगाए रहते हैं और थोड़ा-बहुत हिस्सा झटक ही लेते हैं। भारतीय जनता और ख़ास कर हिन्दुओं का समस्त जीवन धार्मिक नियमों में जकड़ा हुआ है और मनुष्य चाहे कैसे भी कष्ट में, दरिद्रता में क्यों न हो, उसे इन रीति-रस्मों के लिए कुछ न कुछ ख़र्च करना ही पड़ता है।

अन्य कष्ट

इन प्रधान-प्रधान कष्टों के अलावा और भी अनेक साधारण कष्ट तथा असुविधाएँ श्रमजीवियों को सहन करनी पड़ती हैं। उदाहरणार्थ कारख़ानों में न तो उनके विश्राम कर सकने का कोई स्थान होता है, न पीने के पानी और पेशाब-घर का ठीक प्रबन्ध। यह आशा करना तो निरर्थक है कि यहाँ के मिल-मालिक विलायत अथवा रूस आदि के कारख़ानों की तरह मज़दूरों के विश्राम के लिए पक्के और फ़र्श, मेज़, कुरसी आदि से सुसज्जित कमरे बनवा देंगे। यदि वे उनके लिए टीन या खपरैल का ऐसा छप्पर भी बनवा दें, जहाँ गर्मी की तेज़ धूप और बरसात से बच कर वे बैठ सकें और जलपान कर सकें तो बड़ी बात है। पर अभी अधिकांश कारख़ानों में इस तरह का प्रबन्ध भी नहीं है और मज़दूरों को या तो किसी पेड़ आदि के नीचे समय काटना पड़ता है या वे छुट्टी के समय भी मैशीन के पास ही बन्द हवा में बैठे रहते हैं और उसी गन्दे स्थान में जलपान करते हैं। इसी प्रकार मज़दूरों को पानी का कष्ट उठाना पड़ता है। मज़दूरों की संख्या देखते हुए कारख़ाने में पानी के नलों की बड़ी कमी रहती है और छुट्टी के समय प्रायः पानी पीने के लिए धक्कमधक्का और कहा-सुनी हो जाती है। गर्मी में कितने ही लोगों को प्यासा रह जाना पड़ता है। पेशाब और पाख़ाने का प्रबन्ध क़ानून के अनुसार कारख़ाने वालों को करना पड़ता है, पर ये स्थान इतने गन्दे और दुर्गन्ध-युक्त रहते हैं कि उनमें जाने की इच्छा नहीं होती। सच तो यह है कि मज़दूरों को कारख़ाने वाले मनुष्य ही नहीं समझते और उनके लिए उसी प्रकार की व्यवस्था करते हैं, जिसमें कम से कम ख़र्च हो और किसी भी तरह

काम चल सके। छुट्टी के सम्बन्ध में भी इन ग़रीबों को बड़ी तकलीफ़ उठानी पड़ती है। कारख़ानों के अधिकारी प्रायः इस विषय में बड़ी कठोरता और हृदयहीनता से काम लेते हैं और ज़रूरी से ज़रूरी काम पड़ने पर भी छुट्टी नहीं देते। हमने यहाँ तक देखा है कि यदि मज़दूर अपने किसी सम्बन्धी का देहान्त होने पर उसके शव के साथ श्मशान जाने की छुट्टी माँगता है, तो जवाब मिलता है कि वह इतवार के दिन क्यों नहीं मरा! अपनी स्त्री और बच्चों की भयङ्कर बीमारी के समय भी मज़दूर जल्दी छुट्टी नहीं पाते और अन्त समय में अपने प्रियजनों का मुँह तक देखने से वञ्चित रह जाते हैं। स्वयम् उनको बीमारी की दशा में काम करना पड़ता है और तभी छुट्टी मिलती है, जबकि हालत बहुत ख़राब हो जाती है।

मज़दूर-आन्दोलन

श्रमजीवियों की इस कष्टकर अवस्था का सुधार करने के लिए कितने ही समय से आन्दोलन हो रहा है और उनकी संस्थाएँ (यूनियनें) क़ायम की गई हैं। ऐसी सब से पहली यूनियन सन् १८९० में बम्बई में खोली गई थी, जिसके सञ्चालक श्री० नारायण मेघाजी लोखण्डे नामक सज्जन थे। इन्होंने 'दीन-बन्धु' नामक एक समाचार-पत्र भी प्रकाशित किया था, जो श्रमजीवियों की दुर्दशा को सर्वसाधारण के सामने प्रकट करता था और उनका पक्ष समर्थन करता था। इसके पश्चात् समय-समय पर और भी यूनियनें क़ायम होती रहीं, पर मज़दूरों की अज्ञानावस्था के कारण उनको बहुत कम सफलता प्राप्त हुई। मज़दूर-आन्दोलन का वास्तविक आरम्भ यूरोपीय महायुद्ध के समय से समझना चाहिए, जबकि चीज़ों का दाम चौगुना-पचगुना हो गया था। एक तरफ़ कारख़ाने वाले असीम लाभ उठा रहे थे और दूसरी तरफ़ मज़दूरों के कष्ट दुगने हो गए थे। उस समय मालिकों की स्वार्थपरता और अन्यायशीलता को नग्न रूप में देख कर इन अशिक्षितों की आँखें भी खुल गईं और वे अपने उचित अधिकारों के लिए उठ खड़े हुए। सन् १९१९ के अन्त में बम्बई में अनेक कारख़ानों के मज़दूर-प्रतिनिधियों की एक कॉन्फ़्रेन्स हुई, जिसमें मज़दूरों की माँगों का एक 'मेमोरैण्डम' तैयार किया गया। इसमें विशेष ज़ोर काम करने के घण्टों के कम करने और वेतन के बढ़ाने पर दिया गया था। पर मालिकों ने इन माँगों की सर्वथा उपेक्षा की और उनको कोरी धमकी समझा। इस पर देश भर में हड़तालों की बाढ़ आ गई और मज़दूरों ने अपनी माँगों को पूरा करा कर छोड़ा। इस सफलता ने मज़दूरों के हौसले को बढ़ा दिया और तब से वे अपनी यूनियनों और आन्दोलन में यथाशक्ति भाग लेने लगे। सन् १९१९ से एक भी वर्ष ऐसा नहीं गया है, जिसमें मज़दूरों की बड़ी-बड़ी हड़तालें न हुई हों। सन् १९२८ में बम्बई के मज़दूरों ने जो हड़ताल की, उसमें एक लाख से भी अधिक मज़दूरों ने प्रायः छः महीने तक काम करना बन्द रक्खा। इस हड़ताल की व्यापकता और शक्ति को देख कर मिल-मालिक काँप उठे और सरकार को भी बड़ी चिन्ता लग गई। उसी समय से वह मज़दूर-आन्दोलन को उग्र उपायों की तरफ़ जाने से रोकने का प्रयत्न कर रही है। पर यह आन्दोलन बराबर बढ़ता जाता है और मज़दूरों का सङ्गठन भी दृढ़ हो रहा है। 'ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कॉङ्ग्रेस' अब एक काफ़ी शक्तिशाली संस्था बन गई है और अवसर पड़ने पर भारत के तमाम प्रान्तों के श्रमजीवी उसका आदेश पालन करने को तैयार रहते हैं।

सुधार के उपाय

श्रमजीवियों की दुर्दशा का सुधार कैसे हो और किस प्रकार वे अपने अधिकारों को प्राप्त करें, यह एक विस्तृत और गहन विषय है। इसके उत्तर भी भिन्न-भिन्न हैं। मज़दूर आन्दोलन करने वालों में कितने ही मतों के व्यक्ति हैं और वे अपने-अपने सिद्धान्त के अनुसार कार्य करने का उपदेश मज़दूरों को देते हैं। इन कार्यकर्ताओं के लक्ष्य भी एक दूसरे से पृथक् हैं। जब कि एक सिद्धान्त वाले केवल इतना चाहते हैं कि कारख़ाने के नफ़ा में से मज़दूरों को उचित हिस्सा मिले और उसके प्रबन्ध में उनकी भी सम्मति ली जाय; तब दूसरे सिद्धान्त वालों का मत है कि कारख़ानों पर मज़दूरों का ही क़ब्ज़ा रहना चाहिए, और मालिकों को उनमें से कान पकड़ कर निकाल देना चाहिए। इन विभिन्न सिद्धान्तों और मतों

की मीमांसा करने का स्थान इस लेख में नहीं है और हम इस विषय में केवल उतना ही विचार करेंगे, जो देश की वर्तमान दशा में सम्भव है और जिसका शीघ्र ही कार्यरूप में परिणत होना आवश्यकीय है।

सब से मुख्य आवश्यकता तो यह है कि कारख़ानों के प्रबन्ध में उनके कर्मचारियों का भी हाथ रहे और वे अपने लिए बनाए गए नियमों पर सम्मति दे सकें। वर्तमान समय में यह कहना कि कारख़ाने के मालिक को अपनी चीज़ का पूरा अधिकार है, वह जिस तरह ठीक समझे उसका प्रबन्ध करे, चाहे उसे बनाए या बिगाड़े, ठीक नहीं है। आजकल समाज और देश की आर्थिक व्यवस्था इतनी अन्योन्याश्रित और पेचीली हो गई है कि किसी व्यवसाय या कारख़ाने का दूसरों की सहायता या सम्बन्ध बिना चल सकना असम्भव है और एक व्यवसाय की अव्यवस्था और हलचल का परिणाम समस्त कारबार पर पड़ता है। इसके सिवा कारबार का मुख्य आधार श्रमजीवियों पर ही है और यदि वे काम करना छोड़ दें तो कारख़ाने की मैशीनें लोहे के टुकड़ों के सिवा कुछ नहीं हैं। इसलिए यह परमावश्यक है कि जिस प्रकार प्रत्येक राष्ट्र का प्रबन्ध जनता के प्रतिनिधियों की शासन-सभा द्वारा होता है, उसी प्रकार कारख़ाने का प्रबन्ध मज़दूरों के प्रतिनिधियों की कमिटी की सम्मति द्वारा ही हो। ऐसा हो जाने से वे मज़दूरों की तमाम शिकायतों, कष्टों और असुविधाओं को बड़े कर्मचारियों पर प्रकट कर सकेंगे और उनका प्रतिकार करा सकेंगे। वे इस बात का भी ख़्याल रक्खेंगे कि कार्य की ऐसी व्यवस्था की जाय, जिससे मज़दूरों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव न पड़े। वह कमिटी कारख़ाने के आय-व्यय पर भी निगाह रक्खेगी और ऐसा प्रबन्ध करेगी कि मज़दूरों को इतना वेतन अवश्य दिया जाय, जिससे उनका जीवन-निर्वाह मनुष्य की तरह हो सके। कारख़ानों पर से उनके मालिकों का हक़ बिना किसी भारी क्रान्ति के हटा सकना असम्भव है, पर उक्त प्रकार का प्रबन्ध हो सकना, जिसमें दोनों पक्ष मिल कर कार्य करें, वर्तमान दशा में भी सम्भव है। इसके लिए आवश्यकता केवल इस बात की है कि कारख़ानों के स्वामी उनको केवल अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति न समझें, वरन् राष्ट्र का एक अङ्ग मानें।

❦

एडीटर साहब ने एक दिन की हजामत के पैसे नाई से ऑफ़िस में देने का वादा किया। नाई ऑफ़िस में पहुँचा, उस समय एडीटर साहब और उनके साथी क़ैंची लिए समाचार-पत्रों से लेख काट रहे थे। नाई ने यह देख कर एडीटर साहब से कहा—मुझे यहाँ नौकरी दिला दीजिए।

एडीटर ने पूछा—एडीटर का काम तुम कर सकते हो?

नाई ने जवाब दिया—क्यों? क्या मैं क़ैंची नहीं चला सकता? मैंने भी १० वर्ष नाई का काम किया है।

❀ ❀ ❀

मास्टर जी—बताओ, राक्षस किसे कहते हैं?

विद्यार्थी—चुप रहा।

मास्टर जी—यों समझो कि तुम अपने बाप को खा गए। बताओ तुम क्या कहलाओगे?

विद्यार्थी—अनाथ!

❦ ❦

घड़ी में बारह बजे और घण्टे बजने लगे। बालक सोने के लिए लेटा ही था। उसने कहा—अम्माँ! घड़ी से कहो कि शोर न मचाए।

माता बोली—बेटा, घड़ी के कान नहीं होते।

बालक—तो फिर आप रोज़ सवेरे मरोड़ा किसे करती हैं?

❀ ❀ ❀

नाटक का मैनेजर—(नटी से) कुछ भी हो, तुम्हें ही अपना पार्ट करना पड़ेगा।

नटी—परन्तु मेरे सिर में बड़ा दर्द हो रहा है।

मैनेजर—तो क्या तुम्हें अपने सिर से थोड़े ही गाना है?

❀ ❀ ❀

लड़के पर नाराज़ होकर पिता ने कहा—तू निरा गदहा है।

लड़के ने कहा—बाबू जी, माफ़ कीजिए, मैं आपही का लड़का हूँ।
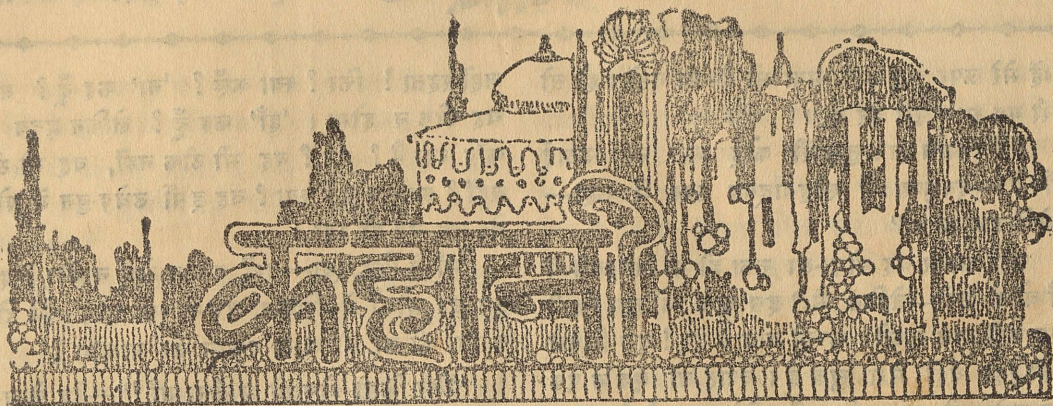
वे दोनों

[श्री० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', एम० ए०]

वकृष्ण अभी कॉलेज से आकर बैठा ही था कि उसकी माँ सामने आ खड़ी हुई और सदा की भाँति, आँखों में आँसू भर कर बोली—मुझे इस तरह कब तक रुलाते रहोगे बेटा?

बेटा, और दिन की तरह, आज झुँझलाया नहीं। वह इधर माँ की इस अश्रु-समस्या पर गम्भीरता और सहानुभूति के साथ विचार करने लग गया है। निर्णय के निकट अभी तक पहुँचा नहीं, इसीसे साफ़-साफ़ कुछ कह नहीं सकता। 'हाँ' और 'ना' के पञ्जे में पड़ी छटपटाने वाली इच्छा का प्रदर्शन करना सहल नहीं होता। वह सिर झुकाए चुप रहा।

"मैं दिन-रात रोया करती हूँ"—माँ ने बेटे का हाथ पकड़ कर कहा—"यह देख कर भी तुम्हारा दिल नहीं पसीजता?" उसकी स्नेह-भरी आँखें कातर भाव से जैसे किसी अनुकूल उत्तर की भिक्षा माँग रही थीं।

बेटे ने सहानुभूति-भरी वाणी को कँपा कर कहा—यह तो मेरा दिल ही जानता है माँ! मगर यह तो बताओ, तुम इस तरह रो-रोकर मरी क्यों जा रही हो?

"इसके सिवा मैं और कर ही क्या सकती हूँ बेटा?" बारम्बार आँचल से आँसू पोंछती हुई माँ कहने लगी—"भगवान ने मुझे बनाया ही इसीलिए है। मरने की उमर हो आई, अभी तक सुख का मुँह नहीं देख सकी हूँ। तुम पाँच ही महीने के थे तभी तुम्हारे पिता जी छोड़ कर भाग गए। पर तुम्हारे रहते, मैंने उस दुःख की परवा न की। तुम मेरी गोद में थे, फिर मुझे कमी किस बात की थी? लेकिन अब देखती हूँ, तुम भी मुझसे भागे-भागे फिरते हो। पचीस साल से अपने कलेजे के भीतर मैं जिस अरमान को पालती आ रही हूँ, उसीको कुचल कर तुम मेरे प्यार का बदला चुकाना चाहते हो। फिर बताओ, रोऊँ नहीं तो हँसूँ कैसे?"

देवकृष्ण की आँखें भी सजल हो आईं। वह एक गम्भीर नीरवता में डूब-सा गया।

माँ की भयभीत आशा पुलकित हो उठी। वह बेटे का आँसू पोंछ-पोंछ कर कहने लगी—भगवान की दया से धन-दौलत की कमी नहीं, तुम्हारी पढ़ाई भी ख़तम होने पर आई, उमर भी पचीस को पार कर गई; अब ऐसी कौन सी बात है, जो तुम्हें मेरी साध पूरी करने से रोक रही है, यह मैं बार-बार कोशिश करने पर भी समझ नहीं सकती। अपनी इस बीमार बुढ़िया माँ की ओर देखो बेटा, इसके पास सब कुछ है, पर यह आदमी की दुखिया है। इसको एक बहू ला दो, नहीं तो अब यह अधिक दिनों तक जी न सकेगी।

बेटा उसी तरह चुप रहा। माँ का अञ्चल तर हो गया, पर उसकी आँखें न सूख सकीं।

माँ ने बेटे को छाती से लगा लिया और कहा—तुम्हारे रोने से मेरा दुःख दूर नहीं होगा बेटा, बताओ

"आपको मालूम हो जायगा।"—इन्सपेक्टर ने जवाब दिया।

"कब ?"

"मैं नहीं कह सकता।"

"जब तक कहोगे नहीं, मैं अपने बेटे को न जाने दूँगी।"

इन्सपेक्टर ने हँस कर कहा—आपको मालूम है, आप किससे बातें कर रही हैं ?

"आदमी से ; क्या तुम आदमी नहीं हो ?"

"जी नहीं।"—इन्सपेक्टर की आँखें चढ़ गईं।

"हाँ, सचमुच नहीं हो। आदमी होते तो एक बीमार बुढ़िया के बेक़सूर बेटे पर यह ज़ुल्म करते तुम्हारी छाती फट जाती। मगर देखती हूँ, तुम बेरहमी की हँसी हँसते हो, बेकसों पर आँखें तरेरते हो ! तुम्हारी माँ हैं ? तुम्हारे बाल-बच्चे भी हैं ? ख़ूनी जानवर, बताओ, तुम आदमी हो ? तुम्हारे दिल में कहीं रहम भी है ?"

इन्सपेक्टर कुछ बोल नहीं सका।

माँ ने फिर बिनती की—छोड़ दो, भैया ! आज भर के लिए ! सिर्फ़ आज ही भर के लिए ! नहीं छोड़ सकते ? नहीं छोड़ सकते ? दो-चार घण्टों के लिए भी नहीं ? आह ! तो क्या मुझे बहू का मुँह न देखने दोगे ? इतनी निष्ठुरता ? इतनी बेरहमी ? × × ×

देवू ने माँ के मुँह पर हाथ रखते हुए कहा—अब बस करो माँ ! आशीर्वाद दो, तुम्हारे इन आँसुओं का मूल्य चुका सकूँ—तुम्हारे दूध की लाज रख सकूँ ! इन्सपेक्टर साहब, चलिए। अब यह दृश्य नहीं देखा जाता। उफ़ ! × × ×

इन्सपेक्टर ने विवशता का भाव दिखा कर कहा—हुक्म है कि मैं आपको हथकड़ी पहना कर ले चलूँ।

"बड़े शौक़ से !"—कह कर देवू ने अपने दोनों हाथ आगे कर दिए।

इधर बेटे के हाथों में हथकड़ी डाली गई, उधर माँ अचेत होकर धरती पर गिर पड़ी !

देवू ने आँखें बन्द कर लीं। इन्सपेक्टर उसे लेकर जल्दी-जल्दी आँगन से बाहर निकल गया।

३

कमला की माँ ने राय गोपीचन्द साहब से पूछा—देवकृष्ण जी के बारे में कुछ मालूम हुआ ?

रायसाहब ने अनमने भाव से जवाब दिया—मालूम क्या होगा ? उनके बचने की तो कोई उम्मीद नज़र आती नहीं।

"क्यों ?"

"क्यों, क्या ? राजनैतिक डकैतियों और हत्याओं का अभियोग उन पर चलाया गया है। या तो फाँसी की सज़ा होगी या कालेपानी की।"

"ऐसी मनहूस बातें मुँह से न निकालो"—कमला की माँ ने कहा—"ईश्वर न करें, कहीं ऐसा हुआ तो हम लोग मिट्टी में मिल जायँगे।"

"हम लोग क्यों मिट्टी में मिल जायँगे ?"

"कमला सिसक-सिसक कर प्राण दे देगी।"

"और शायद तुम भी सिर धुन-धुन कर मर जाओगी, क्यों ?"

"और तुम, शायद, .ख़ुशियाँ मनाओगे ; दुकामों को दावतें खिलाओगे।"

"नहीं, उसके लिए बैठ कर दिन-रात आँसू बहाता रहूँगा !"

"दिल भी हो तो आँसू बने।"

"समझ में नहीं आता कि आख़िर उसके लिए तुम इतनी चिन्ता क्यों कर रही हो ?"

"समझ है भी तुम्हें ?"

"आज तुम इस तरह की बहकी हुई बातें क्यों कर रही हो ?"

"ठीक ही तो कह रही हूँ, तुम्हें समझ भी है ? समझ होती तो सब बातें ठीक-ठीक समझते नहीं ? समझने की कोशिश भी नहीं करते ?"

"कौन सी बात समझने की मैंने कोशिश नहीं की ?"

"कमला के हृदय की व्यथा का मर्म समझ सकते हो ?"

"समझ सकता हूँ, यह क्षण भर टिकने वाली भावुकता मात्र है।"

"नहीं ; यहीं तुम ग़लती करते हो ?"

"मगर मैंने निश्चय कर लिया है।"

"क्या ?"

"यही कि विप्लवी के साथ बेटी न ब्याहूँगा।"

"कमला विष खा लेगी।"

"खा ले × × ×"

"तुम यहाँ तक तैयार हो?"

"हाँ, मैं अब उसे अपने घर के भीतर क़दम नहीं रखने दूँगा। वह राजद्रोही है, ख़ूनी है, ख़तरनाक है। कलक्टर साहब ने मुझे हिदायत कर दी है कि मैं ऐसे आदमी से अपना कोई हेल-मेल न रक्खूँ। अगर कभी ऐसा करूँगा तो जहन्नुम में चला जाऊँगा। इसलिए मैं सब कुछ सहने को तैयार हूँ, मगर इस बात के लिए बिलकुल तैयार नहीं हूँ कि देवकृष्ण को अपना दामाद बनाऊँ।"

कमला की माँ जैसे आसमान से गिर पड़ी! अपने स्वामी के इस निष्ठुर निश्चय की उसे आशङ्का नहीं थी। उसने व्याकुल होकर कहा—ईश्वर के लिए, कहीं ऐसा अनर्थ न कर बैठना। मैं कहीं की न रह जाऊँगी।

"इस मामले में मैं लाचार हूँ।"—रायसाहब ने उसकी व्याकुलता की कुछ परवा न करते हुए जवाब दिया।

थोड़ी देर चुप रहने के बाद कमला की माँ ने फिर पूछा—तुमने किसी और लड़के को ठीक भी कर लिया है क्या?

रायसाहब ने कहा—हाँ; और मेरा विश्वास है कि कमला मेरे इस चुनाव को ख़ूब पसन्द करेगी। लड़का एक ऊँचे सरकारी पद पर है, दो ही चार साल में कलक्टर हो जाने की उम्मीद है।

"जस्टिस दिवानाथ का लड़का तो नहीं?"—कमला की माँ ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"हाँ"—रायसाहब ने कहा—"तुमने तो लड़के को देखा है न? और शायद कमला से भी उसकी जान-पहचान है; क्यों?"

कमला की माँ ने एक लम्बी साँस खींच कर अत्यन्त संक्षेप में उत्तर दिया—हाँ।

"तुम्हें पसन्द है न?"

"मुझे पसन्द हो या न हो, इसकी चिन्ता नहीं। पसन्द होना चाहिए कमला को; और मुझे इसमें शक है।"

पत्नी की चिन्ता-गम्भीरता से रायसाहब भी अब कुछ चिन्तित होते दीख पड़े। बोले—तो क्या समझती हो, इसके लिए उसकी भी राय लेनी होगी?

"मैं तो ऐसा ही समझती हूँ!"—कमला की माँ ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—"लड़की सयानी है, लिखी-पढ़ी है। ब्याह सब तरह से उसी की इच्छा और रुचि के अनुसार हो तभी वह सुखी और सन्तुष्ट रह सकती है।"

"मगर इस लड़के को नापसन्द करने का तो कोई कारण नहीं दीखता?"

"कारण एक ही है, और वह यही कि कमला देवकृष्ण को अपना हृदय दान कर चुकी है। तुम तो कुछ देखते-सुनते नहीं, वह उसी की तस्वीर की पूजा किया करती है और उसीके ध्यान में सदैव रोया करती है। ऐसी हालत में किसी और के साथ उसका ब्याह कराना ठीक है या नहीं, तुम्हीं सोच लो।"

रायसाहब की वाणी मूक हो गई। वह किसी गम्भीर चिन्ता में लीन हो गए।

इसी समय नौकर ने आकर कहा—सरकार! बाहर एक बग्घी खड़ी है, उसमें एक माँ जी बैठी हैं। बच्ची रानी (कमला) को बुला रही हैं।

"यह कौन आई?" कह कर रायसाहब चौंक उठे। कमला की माँ तुरन्त अगवानी को निकल पड़ी। बग्घी के पास जाकर देखा, पचास वर्ष की एक बीमार बुढ़िया आँखों में आँसू भर कर खड़ी थी। कमला की माँ को देखते ही वह बोली—बहिन, मेरी बहू कहाँ है?।

कमला की माँ भौचक्की-सी खड़ी रही। उसके मुँह से सहसा कोई बात ही न निकल सकी।

अब वह माँ जी धीरे-धीरे उसके पास पहुँच गईं और कातर स्वर में फिर बोलीं—एक बार मैं अपनी बहू को देखना चाहती हूँ बहिन, वह कहाँ है?

कमला की माँ का कलेजा धड़कने लगा। उसने विनीत स्वर में पूछा—आप कहाँ से आ रही हैं?

बुढ़िया बिलखने लगी—आह, मुझे अब कोई नहीं पहचानता! देवू की दुखिया माँ को आज सारा संसार भूल गया! सच है बहिन, सच है, तुम्हारा यह पूछना बिल्कुल सच है कि मैं कहाँ से आ रही हूँ। अच्छा, बताती हूँ। लेकिन बहिन, पहले तुम तो बताओ कि तुम कौन हो?"

"मैं कमला की माँ हूँ।"

"कमला की माँ ?"—बुढ़िया जैसे उन्मत्त हो उठी—"मेरी बहूरानी की माँ ? मेरी प्यारी समधिन ? फिर इस तरह दूर रह कर क्यों बातें कर रही हो बहिन ? आओ, मुझे गले लगा लो। हाँ, अपनी छाती से इस तरह चिपका लो कि कभी तुमसे अलग न हो सकूँ। और बहिन, मेरी बहू कहाँ है ? बहू ! बहू !! बहू !!! आह, वह तो सुनती ही नहीं ! सच है बहिन, दुखिया की पुकार कोई नहीं सुनता। लेकिन क्या मेरी बहू भी नहीं सुनेगी ? सुनेगी, ज़रूर सुनेगी। जब तक नहीं सुनेगी, मैं इसी तरह चिल्लाती रहूँगी। बहू ! बहू !! बहू !!!× × ×"

कमला की माँ ने झपट कर उसे सँभाल लिया, नहीं तो वह बेहोश होकर गिर पड़ती।

कमला भी आ गई थी, पर दूर ही खड़ी-खड़ी नाख़ून से धरती खुरच रही थी।

रायसाहब बरामदे में बेचैनी के साथ टहल रहे थे, और बार-बार रूमाल से माथे पर का पसीना पोंछते जाते थे !

कमला की माँ ने बेटी की ओर देख कर स्नेह-विगलित स्वर में कहा—बच्ची, आओ इन्हें सँभाल कर भीतर ले चलें।

४

रायसाहब ने अपनी स्त्री से पूछा—अब उनकी क्या हालत है ?

"हालत तो पहले से कुछ अच्छी दीखती है, अब बड़बड़ाती कुछ कम हैं।"

"बेचारी बेटे के विछोह में मर रही है !"

"बार-बार यही कहती हैं कि बहू को मेरे घर जाने दो। पास से थोड़ी देर के लिए भी अगर कमला हट जाती है, तो वह बिलख-बिलख कर इस तरह रोने लगती हैं कि क्या बताऊँ !"

रायसाहब चुप रहे।

"बुढ़िया के रग-रग में बेटे का प्यार समाया हुआ है, बच्ची के ऊपर इसने जैसे जादू डाल दिया !"

रायसाहब ने एक लम्बी साँस ली।

"बुढ़िया जब मेरी बेटी को 'बहू' कह कर छाती से लगा लेती है, तब तुम देखो तो सचमुच रो पड़ो। मेरा तो हृदय उमड़ आता है।"

रायसाहब की आँखों से टप-टप करके आँसू की दो-तीन बड़ी-बड़ी बूँदें गिर पड़ीं।

"तुम रोने क्यों लगे ?"

रायसाहब की आँखें बरसाती नदियाँ बन गईं।

पत्नी ने प्यार भरे शब्दों में कहा—छिः ! मर्द होकर इस तरह व्याकुल हो उठते हो ? तुम डर किस बात से रहे हो ? कलक्टर साहब से ? उनकी धमकी से ? कौन कह सकता है कि कल तुम्हारे बाल-बच्चों की भी वही हालत न होगी, जो आज देवू की हो रही है ? इस तरह डरने से काम नहीं चलेगा। देवू की ओर से लड़ो और उस बेक़सूर बच्चे को मेरी बच्ची के लिए छुड़ा लाओ।

इन शब्दों ने रायसाहब के ऊपर जादू का काम किया। वे पत्नी की ओर देख कर करुण स्वर में बोले—नहीं, देवू की माँ का यह दुःख मुझसे देखा नहीं जाता। कमला अब सब तरह से उन्हीं की है, मेरे सारे विचार बदल गए। आज ही मैं देवू की ओर से लड़ने के लिए बड़े-बड़े वकील ठीक किए आता हूँ। अपनी ओर से पूरी कोशिश करूँगा, आगे भगवान की इच्छा।

"तो बच्ची को उनके घर जाने दूँ ?"

"बच्ची इसको पसन्द करेगी ?"

"बच्ची ? बच्ची को तो जैसे मनचाहा वरदान मिल जायगा !"

"जिसमें दोनों घर सुखी रहें, वही करो।"

"तुम उन्हें कभी-कभी देख क्यों नहीं आते ?"

"उनके आगे मुझसे बिना रोए रहा नहीं जाता। इसीसे परहेज़ करता हूँ। क्या कुछ कह रही थीं ?"

"उन्हें और कुछ कहने की सुध कहाँ रहती है ? केवल 'बेटा !' 'बेटा !!' और 'बहू !' 'बहू !!' की रट लगाया करती हैं।"

"उनकी दशा देख कर जी में आता है, देवू को चुरा कर ले आऊँ और उसकी जगह ख़ुद जेल में जा बैठूँ।"

पत्नी ने पति को खींच कर छाती से लगा लिया और अधरों पर परिपक्व प्रणय का प्रकम्पन नचाते हुए कहा—मेरा भी यही जी चाहता है प्यारे !

रायसाहब ने स्नेह-भरे शब्दों में कहा—प्रिये ! आज मेरी अन्तरात्मा का सारा मैल धुल गया।

कमला की माँ बोली—प्यारे! आज मैं कृतकृत्य हो गई।

५

देवकृष्ण का मुक़दमा सात महीने तक चलता रहा। राय गोपीचन्द साहब उसकी ओर से खुल कर लड़े—और ख़ूब लड़े। रुपए को पानी की तरह बहा दिया। देवू की माँ ने अश्रु-गङ्गा बहा कर उनके हृदय-क्षेत्र को अच्छी तरह सींच दिया था, उसमें स्वदेश-प्रेम के अङ्कुर उग आए थे। कमला की माँ ने उसे और भी पनपा दिया। अब उन्हें हुक्कामों को ख़ुश रखने की चिन्ता नहीं थी—चिन्ता थी दुखियों के दुःख दूर करने की, निरीह आत्माओं को उत्पीड़न-विमुक्त बनाने की। इस मुक़दमे में उन्होंने ख़ून और पसीना एक कर दिया। इस अनीति के युग में भी कभी-कभी पुण्य प्रमुदित हो उठता है, सत्य विजयी बन जाता है। और न्याय के मुख पर जीवन की ज्योति आ जाती है। देवू के मामले में भी यही हुआ। वह निर्दोष सिद्ध हुआ और छोड़ दिया गया। सब लोग ख़ुश थे, लेकिन वह ख़ुश नहीं था। उसके मुख-मण्डल पर निराशा नाच रही थी, विषाद मँडरा रहा था, वेदना तड़प रही थी!

रायसाहब ने उसे गले लगाया। उसने उनके चरण छुए। उन्होंने कहा—बेटा, चलो घर चलें।

देवू ने कहा—अभी नहीं।

"क्यों?"—रायसाहब ने आश्चर्य-चकित होकर पूछा—"फिर कब चलोगे?"

"कह नहीं सकता।"

"तो अभी जाओगे कहाँ?"

"यह भी नहीं जानता।"

"तुम्हारी माँ मर रही हैं, बची तभी से वहीं है।"

देवू की आँखें सजल हो आईं। वह सिर झुका कर बोला—अपमान से भरा हुआ यह जीवन-बोझ मुझसे अब नहीं ढोया जा सकेगा। देश की वर्तमान दुर्दशा में किसी स्वाभिमानी व्यक्ति का सुखपूर्वक बैठ सकना सम्भव नहीं है। मैंने अब देश-सेवा में ही जीवन अर्पण कर देने का निश्चय कर लिया है।

"ईश्वर तुम्हें ऐसा सुअवसर दें बेटा!"—रायसाहब ने उसे गले लगाते हुए कहा—"लेकिन अभी चार पहर के लिए घर चले चलो। सब लोग तुम्हारे लिए तड़प रहे हैं। उन्हें एक बार देख भर आओ। स्वदेश-सेवा के कार्य में हम सब लोग तुम्हारा साथ देंगे। लेकिन, अभी मेरे साथ चले चलो।"

देवू अटल रहा। बार-बार आग्रह करने पर भी उसने यही कहा—अभी घर नहीं जा सकता, इसके लिए क्षमा कीजिए। महीने भर बाद मैं स्वयं पहुँच जाऊँगा।

रायसाहब लाचार होकर अपनी 'कार' में जा बैठे। देवू उन्हें प्रणाम करके एक ओर को चल दिया।

६

रायसाहब ने देवू की माँ को यह बात न जानने दी। वह योंही बीमार थी, खाट पर पड़ी तड़प रही थी, अगर कहीं यह सुन पाती कि बेटा रिहा होकर भी घर नहीं आया, तो उसी क्षण उसका हृत्-पिण्ड फट पड़ता।

रायसाहब ने अपनी स्त्री से कहा—देवू अभी तक राजनीति से पृथक् था, पर अब वह उसमें पूर्णतया कूद पड़ा।

"वह गया कहाँ है?" कमला की माँ ने उत्सुकता-पूर्वक पूछा।

"बिना क़ुसूर किए ही जो उसकी यह दुर्दशा की गई, इससे उसका ख़ून खौल उठा है। आत्म-सम्मान की भावना इस तरह आग बन कर धधक उठी है कि उसमें वह अपना सब कुछ अर्पण कर देना चाहता है। मेरा अनुमान कहता है कि वह किसी देशोत्थान के कार्य में लग गया है।"

"कहीं ऐसा तो न होगा कि मेरी बच्ची को जनम भर रोना पड़े?"

पत्नी की कातरता से विद्ध होकर रायसाहब ने कहा—मैंने हिम्मत बटोरी तो अब तुम रोने बैठी? कौन जानता है, कमला भी उसी की राह पर चल खड़ी हो? अगर वह ऐसा कर सके तो फिर उसके सुख की बराबरी कौन कर सकता है? मैं तो ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि 'वे दोनों' मिल कर सब तरह से 'एक' हो जायँ।

कमला की माँ इस पर कुछ कह नहीं सकी। पर सच तो यह है कि उसके हृदय का अरमान रो रहा था।

रायसाहब समझ गए और उसे समझाने लगे—मैंने अब तक देवू को नहीं पहचाना था। वह तो एक अनुपम रत्न है। वह भिखारी बन कर भी जीवन बिता-

बेगा तब भी कमला उसके साथ सुखी रहेगी। जिसके भीतर कर्त्तव्य-पालन करने की क्षमता है, वही प्रेम का भी पालन कर सकता है; क्योंकि दोनों ही का भोजन है त्याग और तपस्या। इसलिए, मैं अपनी बच्ची का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल और आनन्दमय देखता हूँ। उसके लिए तुम कभी किसी तरह का सोच न किया करो।

कमला की माँ ने कहा—चलो, ज़रा बच्ची को देख आएँ।

"चलो"—कह कर रायसाहब उठ खड़े हुए।

७

"माँ! आप अधीर न हों, अब वे आने ही वाले हैं।"

"कौन? देवू? नहीं, अब मैं उसका मुँह न देख पाऊँगी बहू!"

कमला की आँखें उमड़ आईं। उसे सब बातें मालूम थीं। आज ही वह दिन था, जब देवू ने स्वयं उपस्थित हो जाने का वचन उसके पिता (रायसाहब) को दिया था। इसीसे वह ज़ोर देकर बोली—नहीं माँ, बाबू जी कह रहे थे कि वे आज छूट आयँगे।

"छूट जायगा? कौन? मेरा लाल? मेरे कलेजे का टुकड़ा? मेरा देवू?"—बेचारी बुढ़िया तड़प-तड़प कर बड़बड़ाने लगी—"नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है बहू! मेरा इतना बड़ा भाग कहाँ कि मरने के पहले एक बार बेटे का मुँह देख लूँ? वह सरकार का मेहमान है, अभी वे लोग उसे यहाँ क्यों आने देंगे? मगर तू कह जो रही है! तो क्या वह आज आएगा? आएगा? सच बता बेटी, क्या वह आज मेरी गोद में आएगा?"

"आएँगे माँ, आज वे ज़रूर आएँगे।"—कह कर कमला ने अपने आँसू पोंछे और उस तड़पती हुई बुढ़िया के मुँह में एक चम्मच पानी डाल दिया। उसका तालू सूख गया था!

वह थक कर थोड़ी देर चुप पड़ी रही और फिर उसी तरह व्याकुल होकर बड़बड़ाने लगी—आ गए बेटा? नहीं, तुम भला क्यों आने लगे। जब दूध पीना रहता था तब दौड़-दौड़ कर आते थे। आज मेरे पास दूध जो नहीं है! आओगे किस लिए? मगर नहीं, तुम नहीं जानते बेटा! माँ के पास दूध की कमी कभी नहीं रहती। बच्चे के लिए वह अपने समूचे शरीर का लहू दूध बना डालती है—उसकी सूखी हड्डियों से भी दूध की धारा फूट पड़ती है। माँ सिर्फ़ दूध ही की बनी होती है बेटा! तुम आओ तो सही! एक बार देख तो जाओ, तुम्हारी इस बुढ़िया माँ के भीतर कितना दूध उमड़ रहा है। मगर नहीं, मत आओ। जी न चाहता हो तो मत आओ! मैं एक बार तुम्हें देखना चाहती हूँ ज़रूर, लेकिन इससे अगर तुम्हें दुःख हो तो मत आओ बेटा! मत आओ! ना! ना! ना!!! आने की ज़रूरत ही क्या है?

कमला का धीरज छूटता जा रहा था, वह विह्वल हो, माँ की छाती पर माथा गाड़ कर, रोने लगी!

माँ ने अपने दुर्बल हाथों से 'बहू' को जकड़ लिया और बोली—नहीं बेटी, तू इस तरह न रो! देख, वह आ रहा है। वह! वह!! वह!!! हाँ, आँखें उठा कर ज़रा देख तो बेटी! वह मेरा बेटा आ गया! आ गया!! हाँ, सचमुच आ गया!!!

बात बिलकुल सच निकली। कमला ने सिर उठा कर देखा, पलङ्ग के पास देवू खड़ा-खड़ा आँसू बहा रहा था!

वह घबड़ा कर खड़ी हो गई और बोली—यह सपना तो नहीं देख रही हूँ?

"नहीं; लेकिन तुम्हारा सोचना भी ग़लत नहीं कहा जा सकता। संसार में सब कुछ सपना ही तो है?"—देवू ने उत्तर दिया।

फिर वह माँ के पास घुटने टेक कर बैठ गया। माँ ने आँखें बन्द कर ली थीं, परन्तु स्नेह की अधीर धारा पलकों के नीचे दबी न रह सकी! वह अत्यन्त व्याकुल होकर बह निकली!

देवू ने कहा—माँ, मैं तुमसे आशीर्वाद लेने आया हूँ। मुझमें वह बल दो, जिससे तुम्हारे आँसुओं का मूल्य चुका सकूँ।

"बेटा!"—माँ ने स्नेह से अपने कलेजे के टुकड़े को थपथपाते हुए कहा—"अब मैं बड़े सुख से मर सकूँगी! मगर अभी तक तुमने मेरी वह साध पूरी न की बेटा! क्या अब भी न करेगा? बहू, तू दूर क्यों हट गई? मेरे 'नन्हाँ' के पास आ जा! आ बेटी, इसमें लाज की कौन सी बात है? नहीं आती, बहू मेरी तुझसे रूठ गई है बेटा! जा, उसे मना ला! नहीं जाता? नहीं जाता? क्या तू भी उससे रूठ गया? नहीं, यह तेरी शरारत है! तू रूठ ही नहीं सकता, तुझे रूठने का हक़ ही नहीं

है। अपराध तो तेरा ही है! तू अभी तक था कहाँ? इतने दिनों से कहाँ जा छिपा था? वह बेचारी तो दिन-रात मेरे ही पास रहती थी! वह मेरी प्यारी बहूरानी है देवू! उसे तङ्ग न कर! कहती हूँ, उसे मत सता! उठ, जा, ला, मेरी रानी बिटिया को हाथ पकड़ कर मना ला! × × ×"

माँ की यह अवस्था देख कर बेटे का कलेजा टूक-टूक हुआ जा रहा था। वह उसी तरह बैठा आँसू बहाता रहा। कमला आई और माँ के मुँह में फिर एक चम्मच पानी डाल कर चुपचाप उसी जगह खड़ी हो गई।

माँ ने फिर ज़ोर दिया—बेटा, मेरी वह साध पूरी कर दे, मेरे आगे इसी समय तू अपने वचन का पालन कर।

इसी समय रायसाहब भी सपत्नीक आ खड़े हुए। दोनों ने बारी-बारी प्रेम से देवू को गले लगाया।

कमला की माँ अधिक देर तक अपने हृदय का भाव रोके न रह सकी। बिना किसी भूमिका के बोल उठी—बेटा! हम लोग आज अपनी बच्ची को तुम्हें सौंप देने आए हैं। तुम दोनों का असली ब्याह तो कभी का हो चुका। हम अब किसी रस्म-रिवाज़ की ज़रूरत नहीं समझते। सिर्फ़ हमारे आगे तुम मेरी बिटिया का हाथ पकड़ लो। फिर हम लोग निश्चिन्त हो जायँगे।

देवू की माँ फिर बड़बड़ाने लगी—नहीं मानता! बार-बार कहती हूँ, फिर भी नहीं मानता! जिसे पाल-पोस कर इतना बड़ा बनाया, वही आज मेरी एक मामूली सी बात नहीं मानता! हाय, तो क्या वह साध अब पूरी न हो सकेगी? न हो सकेगी? न हो सकेगी बेटा? मेरी वह साध अब पूरी न हो सकेगी? × × ×

"होगी माँ!"—देवू ने माँ को आश्वासन दिया—"तुम जो-जो कहोगी, सब करूँगा।"

"होगी?"—माँ ने फिर कहना शुरू किया—"मेरी साध पूरी होगी? सच कहते हो बेटा? सच कहते हो? मैं जो कहूँगी, करोगे? करोगे? सच बता दो बेटा, करोगे? तो आ जा, बेटी! तू मेरे पास आ जा! तेरा हाथ मैं अपने बेटे के हाथ पर रख दूँ! × × ×"

कमला, माँ के मुँह में एक चम्मच पानी डालने के लिए फिर उनके पास पहुँची। पानी पिला कर वह हटना ही चाहती थी कि उसकी माँ भी उसके पास ही पहुँच गई। उसने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—बेटा, अब तुम भी अपना हाथ दे दो, तुम्हारी माँ का यही सब से बड़ा अरमान है, इसे पूरा कर डालो।

देवू ने बिना किसी सङ्कोच के अपना हाथ बढ़ा दिया। कमला सदा के लिए उसकी हो गई, वह सदा के लिए कमला का हो गया। दोनों सिर झुकाए पलङ्ग के पास ही खड़े थे। दोनों की माँ इस अनुपम जोड़ी की करुणापूर्ण छवि को प्रेम-गद्गद भाव से देख रही थीं। रायसाहब भी आनन्द-विभोर हो रहे थे। सहसा, बाहर कुछ आदमियों की हलचल सी सुनाई पड़ी! रायसाहब ने खिड़की से झाँक कर देखा, पुलिस के कुछ सशस्त्र सिपाही उस घर में घुसे आ रहे थे। देखते ही देखते, उनका कप्तान उन लोगों के आगे आ खड़ा हुआ।

देवू के अधरों पर मुस्कुराहट नाच उठी, कमला के अधरों पर वेदना की छाया! रायसाहब की स्त्री काँप उठीं और वे स्वयं स्तब्ध-से खड़े रहे! खाट पर की वह बीमार बुढ़िया चिल्ला उठी—क्या फिर पकड़ने आए?

देवू ने आगे बढ़ कर आत्म-समर्पण कर दिया और कहा—ले चलो।

कमला से न रहा गया। वह लपक कर साहब की तरफ़ बढ़ी और उसको ज़ोर से धक्का मार कर ज़मीन पर गिरा दिया। वह बोली—बताओ, तुम लोग इतना अत्याचार क्यों करते हो?

वह भी हँसती हुई गिरफ़्तार हो गई! दोनों के हाथ एक ही हथकड़ी से बाँध दिए गए!

देवू ने प्रमुदित होकर कहा—मेरी सच्ची सहधर्मिणी! तू मेरे जीवन-पथ की अमर ज्योति है, मैं अवश्य विजयी बनूँगा।

रायसाहब पत्थर की प्रतिमा बन गए थे, उनकी स्त्री फूट-फूट कर रो रही थीं और खाट पर की वह अभागिनी बुढ़िया बड़बड़ा रही थी—देखना, मेरी बहू को अच्छी तरह रखना बेटा! ख़बरदार, कभी उसे रुठाना नहीं! जाता है? अच्छा, जा! फिर आएगा न? कब आएगा? लाख बरस तक जीता रह! बेटी, मेरी बिट्टो! तेरा सुहाग सब दिन हँसता रहे × × ×

'वे दोनों' गिरफ़्तार होकर चुपचाप कमरे से बाहर निकल गए, न इन लोगों की ओर फिर कर उन्होंने एक बार ताका, न इनसे कुछ कहा!

परिवर्तन
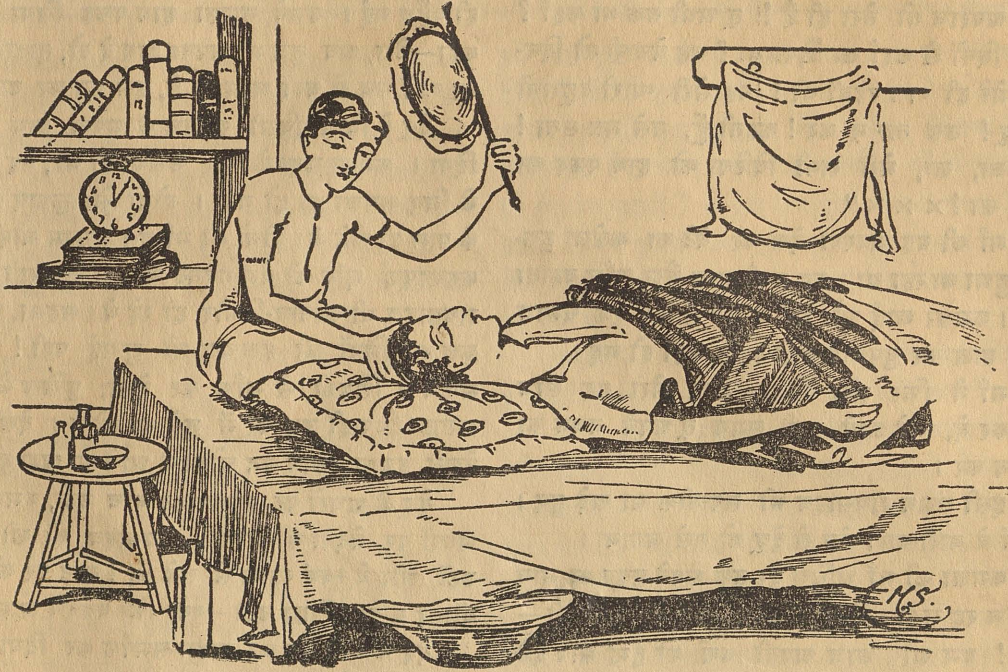
होस्टल में—

डिप्टी कलक्टर होने पर—

वर्तमान मुस्लिम-जगत्

[डॉक्टर मथुरालाल जी शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०]

(गताङ्क से आगे)

१९१४ में मुस्लिम-संसार
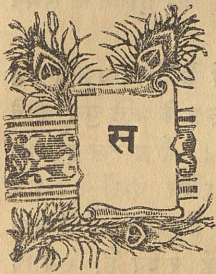
न् १९१४ में जब यूरोपीय महासमर की रणभेरी बजी, तो प्रायः सम्पूर्ण मुस्लिम-जगत् जीर्ण-शीर्ण अवस्था में पड़ा था। त्रिपोली और कुस्तुनतुनियाँ से पश्चिम का हिस्सा छिन जाने के कारण तथा यूरोपीय राष्ट्रों की सहायता से अरबी देशों के स्वातन्त्र्य-आन्दोलन के कारण तुर्की का राज्य सङ्कुचित और उसका प्रताप क्षीण हो गया था। १९०८ की राज्यक्रान्ति भी एक प्रकार से असफल हो गई थी। मिसिर में लॉर्ड किचनर के सैनिक तथा निरङ्कुश शासन के कारण लोग दबे हुए थे। त्रिपोली, एलजेरिया, ट्यूनिस और मोरक्को, इटली, स्पेन तथा फ़ान्स के अधीन थे। मोरक्को के मुसलमान फ़ान्स के चङ्गुल में वैसे ही फँसे हुए थे, जैसे राजपूताने के राजे इस समय अङ्गरेज़ों के अधीन हैं। सीरिया, पैलेस्टाइन, हजाज और ईराक़ स्वतन्त्रता के स्वप्न देख रहे थे और तुर्की-साम्राज्य से अलग होना चाहते थे। फ़ारस में रूसियों का अखण्ड राज्य था। अहमदशाह उनके हाथ की कठपुतली था और उसके राज्याभिषेक के समय जो पार्लामेण्ट बुलाई गई थी, वह केवल भुलावा था। उसके पीछे न कोई शक्ति थी और न वह प्रजा की प्रतिनिधि कही जा सकती थी। वास्तव में उस समय ईरान के स्वामी थे रूसी लोग और उनके बाद शक्तिशाली थे अङ्गरेज़। अफ़ग़ानिस्तान अभी कुछ उन्नत ही नहीं होने पाया था। वहाँ रेल, तार, स्कूल आदि नहीं खुल सके थे। अभी सभ्य संसार के राष्ट्रों में अफ़ग़ानिस्तान की गणना भी नहीं होने लगी थी। भारतवर्ष के मुसलमान काफ़ी सभ्य और उन्नत थे, परन्तु वे अङ्गरेज़ों की कड़ी ज़ञ्जीरों से जकड़े हुए और शस्त्रहीन थे। चीन, पश्चिमी तुर्किस्तान, जावा, बोर्नियो आदि में जो अल्पसंख्यक मुसलमान बस्तियाँ थीं, उनका भाग्य-सूत्र अपने देशवासियों के साथ बँधा हुआ था।

प्रत्येक देश के साथ अलग-अलग समस्याएँ और कठिनाइयाँ थीं। तुर्की को रूस, फ़ान्स और इङ्गलिस्तान तीनों से भय था। मिसिर पर तो अङ्गरेज़ों का पूर्ण अधिकार ही था। अरबी देशसमूह स्वतन्त्रता की तलाश में थे। ईरान रूस की चोटों के कारण कराह रहा था। फ़ान्स में अफ़ग़ानिस्तान को धर्मान्धता और अनभिज्ञता से युद्ध करना और भारत के मुसलमानों को एक तरफ़ हिन्दुओं पर शक था तो दूसरी ओर सरकार से भय। कठिनाइयों में भेद होते हुए भी सम्पूर्ण मुस्लिम-जगत् एक बात में मिला हुआ था। मोरक्को से आसाम तक सारा मुस्लिम-जगत् यूरोप से प्रायः घृणा करता था। केवल भारतीय मुसलमान अभी अङ्गरेज़ों की वफ़ादारी के गीत गाते थे, परन्तु उसके कारण थे, जो पूर्व प्रकरण में बतलाए जा चुके हैं और बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही यह रुख़ भी बदला जाने लगा था। इस व्यापक घृणा के कारण ही जब युद्ध छिड़ा, तो समस्त मुस्लिम-जगत् ने इस यूरोपीय आपत्ति का अभिनन्दन किया। यह समाचार कि इस महाप्रलय में यदि यूरोप के गर्विष्ट राष्ट्र सर्वथा विलीन नहीं हुए, तो कम से कम क्षत-विक्षत तो अवश्य हो जावेंगे। इसी आशा से मुसलमानों को बड़ा हर्ष हुआ। वे हर्षोत्फुल्ल नेत्रों से ईसाई राज्यों के पारस्परिक कलह के समाचार पढ़ने लगे।

तुर्की युद्ध में क्यों सम्मिलित हुआ ?

१९१४ में तुर्की के सुलतान अब्दुलहमीद का देहान्त हो चुका था और सुलतान मुहम्मद पञ्चम उस

समय राज्य करता था। उसके समय में वहाँ का नव-युवक-सङ्घ फिर प्रबल होने लगा और शासन में भी अधिकाधिक भाग लेने लगा। ऐक्य और उन्नति-सङ्घ, जो कई वर्ष पूर्व स्थापित हो चुका था और कभी प्रबल तथा कभी निर्बल हो जाया करता था, इस समय फिर उकसा और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर विचार करने लगा। तुर्की को महासमर में सम्मिलित होना चाहिए या नहीं, और अगर सम्मिलित हो तो किसकी तरफ़ से, यह प्रश्न देश में उठाया गया। रूस, तुर्की का पक्का शत्रु था, इसलिए यह कहा जाता था कि यदि महासमर में रूस विजयी हो जायगा तो वह अजेय और दुर्निवार्य होकर तुर्की को हड़प बैठेगा। इसलिए तुर्की को रूस के विरुद्ध लड़ना चाहिए। इसके सिवा तुर्की अङ्गरेज़ों पर भी अधिक सन्देह करने लगा था। अब तक तो रूस और इङ्गलैण्ड में मुस्लिम देशों के विषय में विरोध रहता था, जैसे ईरान और अफ़ग़ानिस्तान में। परन्तु इस महासमर में दोनों देश मित्र बन गए थे। इस मित्रता के कारण इङ्गलैण्ड भी तुर्की तथा अन्यान्य मुस्लिम देशों का शत्रु माना जाने लगा। तीसरा कारण एक और था। समर के आरम्भ से पूर्व तुर्की इङ्गलैण्ड के कारख़ानों में दो जहाज़ बनवा रहा था और उनकी क़ीमत भी पेशगी दी जा चुकी थी, परन्तु इस समय इङ्गलैण्ड को जहाज़ों की बड़ी आवश्यकता थी, इसलिए ये दोनों जहाज़ अङ्गरेज़-सरकार ने अपने उपयोग के लिए रख लिए। इसी समय जर्मनी ने दो जहाज़ तुर्की को बेच दिए। इसे एक प्रकार से, इङ्गलैण्ड ने अपने विरुद्ध युद्ध-घोषणा समझी। उधर युयुत्सु-मित्र भी तुर्की को मित्र या शत्रु बनाने के लिए अधीर हो रहे थे। दर्रे-दानियाल और बोस्फ़रस के जल-विभाजक तुर्की राज्य में थे, इसलिए रूसी सेना के वास्ते दक्षिण में जलमार्ग नहीं था। बाल्टिक सागर में होकर आना जर्मनी के सान्निध्य के कारण असम्भव सा ही था। इसलिए तुर्की युयुत्सु-मण्डल का मित्र बनता तब काम चलता या उसको दबा दिया जाता तब मार्ग निष्कण्टक होता। उसको मित्र बनाना अङ्गरेज़ों को अभीष्ट नहीं था। सन् १९१४ के लगभग इङ्गलैण्ड और फ़्रान्स में जो समझौता हुआ था, उसके अनुकूल पूर्वी मुस्लिम देशों पर इङ्गलैण्ड का अधिकार मान लिया गया था और भारत में अपना राज्य अटल रखने के लिए अङ्गरेज़ मिसिर, अरब, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान को अपने अधीन करना चाहते थे। इस उद्देश्य से वे अरब और ईराक़ आदि को सहायता देकर तुर्की के विरुद्ध भड़काना चाहते थे और इस भेद-नीति से एक-एक करके मिसिर से भारत तक सब मुस्लिम देशों को अधिकृत करने की फ़िक्र में थे। इसलिए उनकी अरबी नीति के कारण न तो तुर्की उनकी मित्रता स्वीकार कर सकता था और न स्वयं वे उसकी मित्रता के अभिलाषी थे। इसीलिए तो इङ्गलिस्तान ने तुर्की के जहाज़ों को छीनने के समय कुछ आगा-पीछा नहीं सोचा था।

इस स्थिति को देख कर तुर्की के ऐक्य-उन्नति-सङ्घ ने उसे इङ्गलैण्ड, फ़्रान्स और रूस के प्रति युद्ध करने के लिए उभारना शुरू किया। शैख़-उल-इस्लाम ने फ़तवा दे दिया कि इन तीन काफ़िर देशों के विरुद्ध लड़ना जिहाद अर्थात् धर्म-युद्ध है और जर्मनी तथा ऑस्ट्रिया-हङ्गरी भी यद्यपि ईसाई राज्य हैं, तथापि उनके साथ मित्रता करने में तथा युद्ध में उनकी सहायता करने में कोई हानि नहीं है। सन् १९१४ में जितने मुस्लिम देश परतन्त्र थे, वे सब इङ्गलैण्ड, फ़्रान्स या रूस के अधीन ही थे। उस समय स्वतन्त्र देश वास्तव में तुर्की के सिवा और था ही कौन सा? इसलिए भी शैख़-उल-इस्लाम का फ़तवा अनुचित नहीं था। फिर भी जब तुर्की के ख़लीफ़ा ने मुस्लिम-जगत् को इस जिहाद में शामिल होने के लिए आह्वान किया तो मुसलमानों में एक हलका सा स्पन्दन होकर रह गया। इसके तीन कारण थे। पहला कारण यह था कि मिसिर, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान और भारतवर्ष या तो युयुत्सु-मित्रों के अधीन थे, या दबे हुए थे। भारत के सात करोड़ मुसलमान तो बिल्कुल निःशस्त्र थे। दूसरा हेतु यह था कि अनेक मुसलमान नेता नहीं चाहते थे कि मुसलमान इस युद्ध में सम्मिलित होकर अपना रक्त बहावें। उनका कहना था कि चाहे जर्मनी हारे चाहे इङ्गलैण्ड, ईसाइयों की शक्ति वाञ्छनीय है। इस पारस्परिक कलह के कारण ईसाई-राष्ट्र क्षीणबल और शान्त हो जावें तब मुसलमानों को अवसर देख कर हाथ-पैर हिलाना चाहिए। तीसरा कारण यह था कि अब जिहाद का समय भी बीत चुका था। मुसलमानों में राष्ट्रीयता

की जाग्रति के कारण अपने-अपने देश और स्वत्वों की रक्षा करने की अधिक फ़िक्र थी।

युद्ध-घोषणा

२८ अक्टूबर सन् १९१४ को तुर्की ने रूस के विरुद्ध युद्ध आरम्भ कर दिया और कृष्ण सागर के बन्दरगाहों पर गोले बरसाए। फ्रान्स, इङ्गलैण्ड और इटली ने तुर्की की मित्रता छोड़ दी और ९ नवम्बर को ब्रिटिश-साम्राज्य के प्रधान मन्त्री श्री० लॉयड जॉर्ज ने ह्वाइट हॉल में भाषण देते हुए कहा कि तुर्की सरकार ने मानो स्वयं उद्घोषित कर दिया है कि यूरोप में ही नहीं, बल्कि एशिया में भी तुर्कों के राज्य का अन्त होने वाला है। यह गर्वोक्ति अधांश में ठीक निकली।

१९१५ और १९१६ की गुप्त सन्धियाँ

सन् १९१५ के आरम्भ में ही रूस, ग्रेटब्रिटेन और फ्रान्स में एक गुप्त समझौता हुआ, जिसमें यह स्वीकार किया गया कि रूस को अधिकार है कि वह क़ुस्तुन-तुनिया दरेदानियाल और बोस्फ़रस तथा उसके निकट-वर्ती प्रदेश, समुद्रतट और टापू जीत कर अपने राज्य में मिला ले। एशियाई तुर्की में इङ्गलैण्ड और फ्रान्स का क्या भाग होगा और उसके किस प्रकार टुकड़े किए जाएँगे, इस विषय का निर्णय करने को फ्रान्स, रूस और इङ्गलैण्ड में एक अलग समझौता होगा। यह दूसरा समझौता भी सन् १९१६ में हो गया और इसके अनुसार निश्चय हुआ कि एडज़ीरम, मेबीज़न्द, वान, बितलिस्ट और क़ुर्दिस्तान के दक्षिण के कुछ हिस्से रूस को मिलेंगे। सीरिया का समुद्रतट, अदाना की विलायत और नई रूसी सीमा के पूर्वोत्तर का प्रदेश फ्रान्स को दिया जायगा तथा ईराक़ का दक्षिण भाग बग़दाद, पैलेस्टाइन का हेफ़ा और ऐकर बन्दरगाहों पर इङ्गलैण्ड अधिकार जमावेगा। इसी समझौते में यह भी तय हुआ कि फ्रेञ्च और अङ्गरेज़ी राज्य के बीच में स्वतन्त्र अरबी रियासतें या रियासत होगी और युयुत्सु-सङ्घ के धार्मिक हितों को दृष्टि में रखते हुए फ़लस्तीन और उसके पवित्र नगरों में एक विशेष प्रकार का राज्य-प्रबन्ध स्थापित किया जावेगा और उसका स्वरूप रूस, फ्रान्स तथा इङ्गलैण्ड आपस में मिल कर तय करेंगे।

महासमर में सम्मिलित होने का परिणाम यह हुआ कि अरबी देश और मिसिर तुर्की राज्य से अलग हो गए। ३० अक्टूबर सन् १९१८ में जब अस्थायी सन्धि हुई तो टोरस के दक्षिण में सब एशियाई देश युयुत्सु-सङ्घ के अधीन थे। अब दानियाल और बोस्फ़रस के जल-मार्ग भी उनकी नौ-सेनाओं के हाथ में आ गए। तुर्की के ऐक्य तथा उन्नति-सङ्घ की सब योजनाएँ और आकांक्षाएँ मिट्टी में मिल गईं और तुर्की राष्ट्र चार वर्षों के निरन्तर युद्ध से जर्जर होकर बैठ गया। चारों ओर निराशा और भ्रान्ति दिखाई देने लगी। कभी वे अपने भाग्य को कोसते और कभी मिसिर के भाग्य को सराहते थे। उस विपन्ना-वस्था में इन्हें मिसिर की पराधीनता भी अपनी दुर्दशा से अधिक अच्छी मालूम होती थी। अनेक बुद्धिमान तथा निराशावादी तुर्क यह अनुभव करने लगे कि संसार के वर्तमान जीवन-सङ्घर्ष में तुर्की वास्तव में अपने पैरों के बल खड़ा होने के योग्य नहीं है। वैज्ञानिक शस्त्रास्त्र से सुसज्जित यूरोपीय सेनाओं का तथा सदियों के शासन से परिपुष्ट यूरोपीय सरकार और धुरन्धर राजनीतिज्ञों का सामना करते-करते जर्जर होने और अन्त में जगतीतल से अन्तर्हित हो जाने से तो यही अच्छा है कि अमेरिका या इङ्गलैण्ड की अधीनता स्वीकार कर ली जावे। उनको क्या पता था कि निराशा-रजनी की कुछ ही घड़ियाँ शेष थीं और कमाल-सूर्य का शीघ्र ही उदय होने वाला था।

तुर्की को निर्बल करने के प्रयत्न

तुर्की को निर्बल करने के लिए यूरोपीय राष्ट्र सदैव उसके ग़ैर-तुर्की प्रदेशों में हस्तक्षेप किया करते थे। फ्रेञ्च, रूसी और अमेरिकन आदि ईसाइयों की अनेक बस्तियाँ तुर्की में बसी हुई थीं, जो तुर्की राज्य में रहते हुए भी सदैव अपने विशेष स्वत्वों की रक्षा के लिए अपनी ईसाई सरकारों से अपील किया करती थीं और ईसाई-राष्ट्र हस्तक्षेप करने का अवसर ही ताका करते थे। हम पहिले ही बतला चुके हैं कि अरबी देश तुर्की की अधीनता को पसन्द नहीं करते थे और स्वतन्त्रता के लिए अनेक प्रकार के यत्न किया करते थे। उनके इस आन्दोलन में यूरोपीय राष्ट्र गुप्त रूप से

सहायक थे। कम से कम उनके साथ सहानुभूति रखते थे। अरबी प्रदेशों को पृथक् करके और मिल्लतो अर्थात् ईसाई बस्तियों को उभार करके यूरोपीय राष्ट्र "यूरोप के मरीज़" तुर्की की अन्त्येष्टि करना चाहते थे। सन् १९१४ तक तो यह नीति ही थी, और प्रत्यक्ष में सब ईसाई राष्ट्र तुर्की के मित्र थे। परन्तु जब तुर्की ने जर्मनी और आस्ट्रिया-हङ्गरी का पक्ष ग्रहण कर लिया तो विपक्षी राष्ट्र खुल्लमखुल्ला उसके घर में फूट के बीज बोने लगे और साम, दाम, दण्ड, भेद चारों प्रकार से अपने उद्देश्य की सिद्धि में लग गए। मक्के के बड़े शरीफ़ हुसैन इब्नअली के साथ बातचीत होने लगी कि वह किन शर्तों पर तुर्की के विरुद्ध बलवा कर सकता है। १९१५ में अङ्गरेज़ी वायुयानों के द्वारा अरबिस्तान में हज़ारों विज्ञापन इस आशय के बाँटे गए थे कि जब युद्ध समाप्त होकर सन्धि होगी तो अङ्गरेज़ी सरकार उसमें यह भी शर्त रक्खेगी कि अरबिस्तान और उसके पवित्र स्थान बिलकुल स्वतन्त्र कर दिए जावें और इनमें से एक बाल भर भूमि भी अङ्गरेज़ी या मित्र-राष्ट्रों के राज्य में न मिलाई जावे। हुसैन के साथ बातचीत हुई। उससे कहा गया कि अरबी देशों का एक संयुक्त राज्य बना दिया जाएगा। अर्थात् ईराक़, अरब और सीरिया आदि उसके अधीन हो जावेंगे और वह एक स्वतन्त्र अरब राष्ट्र का स्वामी बन जायगा। इसके साथ ही साथ उससे यह भी कहा गया था कि यदि वह तुर्की-सरकार के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देगा तो उसको अङ्गरेज़ी-सरकार से आर्थिक सहायता मिलेगी। स्वतन्त्र राज्य-प्राप्ति के प्रबल प्रलोभन को कौन छोड़ सकता था? हुसैन ने इस रिश्वत को स्वीकार कर लिया और जून सन् १९१६ में तुर्की के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करके स्वयं अरब का सम्राट बन गया। अङ्गरेज़ सरकार ने इसको हज़ारों रुपए रोज़ देकर इसकी सहायता करनी शुरू कर दी और उसने अरब में तुर्कों के ख़िलाफ़ ज़हर फैलाना आरम्भ किया। ९ जुलाई सन् १९१६ में इसने एक विज्ञप्ति निकाली, जिसमें घोषित किया कि "तुर्की साम्राज्य का शासन इस समय ख़लीफ़ा के हाथ में नहीं है, बल्कि ऐक्य और उन्नति-सङ्घ के हाथ में है, जिसके नेता इस्लाम के विरोधी क़ाफ़िर हैं। हमारे देश-भाइयों ने अब इस्लाम की सेवा करने का निश्चय कर लिया है। इस्लाम का मस्तक ऊँचा करना हमारा जीवन-ध्येय है। हमारे प्रयत्न सब शरियत के अनुकूल होंगे। इस्लाम धर्म और क़ानून के अनुकूल जो भी सुधार हो सकेंगे, सब किए जावेंगे। देश में सुधारों की माँग है, परन्तु तुर्की की भाँति यहाँ शरियत के विरुद्ध कोई कार्य न होगा।" तो भी इन विज्ञप्तियों की तह में क्या था, उसे मुसलमान-जगत् समझ गया था। सब मुसलमान मानने लगे थे कि हुसैन का बलवा तुर्की के विरुद्ध है और इससे इस्लाम का अहित होगा। पर मुसलमान कर ही क्या सकते थे। उनकी विवशता और हुसैन का विद्रोह दोनों एक ही नीति के फल थे। चारों तरफ़ से रूस, इङ्गलैण्ड और फ़्रान्स उनकी बेड़ियों को मज़बूत करते जाते थे।

हुसैन और इब्नसऊद

उस समय हुसैन की मित्रता से अङ्गरेज़ों का ख़ूब काम बना। हुसैन का जन्म क़ुरेशी वंश में हुआ था। पैग़म्बर मुहम्मद भी इसी वंश के थे और मुस्लिम विद्वानों का मत था कि पैग़म्बर इसी वंश का होना चाहिए। मुसलमानों का सर्वाधिक पवित्र नगर मक्का पर कई शताब्दियों तक इस वंश का राज्य था। इसलिए ख़िलाफ़त और मक्का में घनिष्ट सम्बन्ध माना जाता था। मक्का की रक्षा करना और उसके मान तथा प्रतिष्ठा को बनाए रखना ख़लीफ़ा का सर्व-प्रथम कर्तव्य था। हुसैन स्वयं बड़ा धुरन्धर विद्वान था। अरबी साहित्य का वह पारङ्गत पण्डित था। देश में उसके लेखों की धूम थी और "अलक़िबला" नामक पत्र का वह सम्पादक भी था। वह पुनर्जीवित अरब राज्य, अरबी ख़लीफ़ा और अरब-गौरव के स्वप्न देखा करता था। उसके पुत्रों ने क़ुस्तुनतुनिया में शिक्षा पाई थी और वर्तमान यूरोपीय विचारों से उनका सम्पर्क हो चुका था। वह पूर्व की परम्परागत नीति के अनुकूल शासक को पितावत् और प्रजा को पुत्रवत् मानने वाला था और इसी सिद्धान्त के अनुकूल उसने शासन किया था। एक व्यक्ति के शासन में, चाहे उसका ध्येय कितना ही ऊँचा क्यों न हो, भारी भूलें हुए बिना नहीं रह सकतीं। उसके पतन का एक कारण उसका अनियन्त्रित शासन ही था। वह अपनी समझ और सामर्थ्य का

अत्यधिक अनुमान करता था और विरोधियों के मत और बल को तुच्छ समझता था। इस कारण इब्न-सऊद और उसमें घोर विरोध हो गया। इब्नसऊद वहाबी था और इस्लाम का पूर्ण सुधार चाहता था। पीछे से घुसी हुई कुरीतियाँ, गुरुडम और विलासिता उसकी आँखों में खटकती थी। उसकी धारणा थी कि जैसे मध्यकाल में रोम और रोम के पोपों की दशा बिगड़ गई थी, वही हालत उसके समय में मक्का की हो गई थी। उसके नज़दीक हुसैन भी अरब की उन्नति और सुधारों का विरोधी था। हुसैन ने अपने पुत्र को नज्द में भेजा और इब्नसऊद से समझौता करना चाहा, पर कुछ नहीं हुआ।

हुसैन की घोषणा

४ नवम्बर सन् १९१६ को हुसैन की ताजपोशी हुई और उसके सरकारी गज़ट में यह विज्ञप्ति प्रकाशित की गई कि "आज अरबों के बड़े सौभाग्य का दिन है कि उनका प्राचीन गौरव और खोया हुआ प्राचीन राज्य फिर उनको मिल गया है। अब अरब राज्य का शासन पुनः उसी वंश के हाथ में आ गया है, जो संसार में सबसे पुराना शाही घराना है। यह घराना ख़ुदा के सिवा और किसी को अपने से बड़ा नहीं मानता और अरबी झण्डे के सिवाय और किसी झण्डे का मान नहीं करता।" ताजपोशी बड़ी धूमधाम से की गई थी। सीरिया की ओर से सामी-उल-बकरीस प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित था, फ्रान्स ने नए बादशाह को मान लिया था और उत्तरी अफ्रीका के मुसलमानों का एक डेपूटेशन उसे सलाम करने आया था। पेरिस से एक अरबी पत्र प्रकाशित होता था, उसने भी इस अवसर का स्वागत किया था। परन्तु हुसैन ने गद्दी पर बैठते ही शरीयत की दोहाई देना छोड़ दिया और धार्मिक भेदों को भुला कर राष्ट्रीय सङ्गठन पर ज़ोर देने लगा। उसने प्रकाशित किया कि "हमारे इस कार्य ने हमारे मुसलमान और ईसाई देशवासियों के लिए मार्ग साफ़ कर दिया है। अपनी घरू नीति में हम अपने पूर्व पुरुषों का अनुसरण करते रहेंगे। परन्तु साथ ही यूरोपीय संस्थाओं से और वर्तमान सभ्यता से जितना लाभ मिल सकेगा ग्रहण करेंगे। जिन उपायों द्वारा अन्य देशों के समान हमारे उन्नत बनने की सम्भावना होगी, उनका हम उपयोग करेंगे। इस कार्य में हमको सम्पूर्ण अरबिस्तानियों के सहयोग की आवश्यकता है। ग़ैर-मुस्लिम भाइयों की सहायता लेने में हमारा धर्म या हमारी परम्परा बाधक नहीं होनी चाहिए। हमारे राज्य में मुसलमानों और ग़ैर मुसलमानों के समान अधिकार होंगे।" परन्तु एक मास बाद ही हुसैन को पता चल गया कि अरब में वह राज्य नहीं कर सकता। विवश होकर उसने हज्जाज के बादशाह का पद धारण किया। इस समय मदीने के सिवा शेष सम्पूर्ण हज्जाज को वह अधिकृत कर चुका था और अरबी सेना उसके पुत्र फ़ैसल के नेतृत्व में मित्रों की सेना के साथ-साथ जनरल एलन बी की अध्यक्षता में पलस्तीन में लड़ रही थी।

चर्चिल की योजना

इधर यह हो रहा था और उधर विन्स्टन चर्चिल अपनी अलग ही एक योजना बना रहे थे। वास्तव में इस समय मुस्लिम देश यूरोपीय और विशेषकर अङ्गरेज़ राजनीतिज्ञों के हाथ में एक प्रकार से शतरञ्ज की गोटें बन रहे थे। विन्स्टन चर्चिल की योजना थी कि मिश्रि से भारत तक एक पूर्वी साम्राज्य स्थापित किया जावे। इस साम्राज्य की स्थापना में वह केवल तुर्कों को बाधक समझता था। और उनको क्षीणबल करने के लिए हुसैन आदि के बल ही से वह काम लेना चाहता था। चर्चिल समझता था कि यदि इस साम्राज्य की स्थापना हो जावेगी तो फिर रूस का बिलकुल डर न रहेगा और भारतवर्ष कभी अङ्गरेज़ों के हाथ से न जा सकेगा। चर्चिल की यह योजना बड़ी दूरदर्शितापूर्ण थी। यदि यह पूरी हो जाती तो एक प्रकार से सारा एशिया ही अङ्गरेज़ों के हाथ में चला जाता। चर्चिल को क्या मालूम था कि महासमर समाप्त होते ही सम्पूर्ण मुस्लिम देशों में राष्ट्रीय भावों की प्रबल बाढ़ उमड़ आवेगी और जहाँ अङ्गरेज़ी राज्य पहिले से जमा हुआ है, वहाँ भी इसकी जड़ें हिलने लगेंगी। अस्तु—

ईराक़ और सीरिया की विजय

अङ्गरेज़ लोग हुसैन को भड़का कर और सिखा-पढ़ा कर ही चुप नहीं हो गए। पूर्व में ईराक़ और पश्चिम में सीरिया आदि में उन्होंने अपनी सेनाएँ भेजना आरम्भ किया। लोगों से कहा जाता था कि अङ्गरेज़ी सेनाएँ

तुर्की द्वारा पददलित अरबों को मुक्त बनाने के लिए आई हुई हैं। मार्च सन् १९१७ में अङ्गरेज़ों ने बग़दाद पर क़ब्ज़ा कर लिया और अङ्गरेज़ी सेनानायक ने यह विज्ञप्ति निकाली—"बग़दाद-निवासियो, आप यह मत समझ लेना कि अङ्गरेज़ लोग ज़बरदस्ती आपके यहाँ अपनी संस्थाएँ स्थापित करेंगे। अङ्गरेज़-सरकार की अभिलाषा है कि आपके कवि और दार्शनिकों का सम्मान बना रहे और फिर आप सम्पन्न और स्वस्थ बनें। आप लोगों के हित के लिए ऐसी संस्थाएँ जारी की जावेंगी जो आपके धर्म और क़ानून के अनुकूल होंगी। अङ्गरेज़ सरकार और उसके मित्र यह चाहते हैं कि अरबी राष्ट्र फिर उन्नत और सबल हो और संसार की सभ्य जातियों के सामने अपना मस्तक ऊँचा कर सके। आपको अङ्गरेज़ी प्रतिनिधियों के साथ सहयोग करना चाहिए और अन्य अरब देशों के साथ मित्रता स्थापित करनी चाहिए।"

अङ्गरेज़ सैनिकों की नीति और उसका प्रकटीकरण

इसके बाद, दिसम्बर सन् १९१७ में, अङ्गरेज़ी जनरल एलन बी ने यरूशलम पर अधिकार जमा लिया। जिस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु ईसाई राष्ट्र शताब्दियों से तड़प रहे थे, वह पूरा हो गया। इतना ही नहीं, मक्का पर भी अङ्गरेज़ों का दबदबा जम गया। बग़दाद, मक्का, यरूशलम आदि पर अङ्गरेज़ सैनिकों ने क़ब्ज़ा कर लिया था और फ़ैसल एक प्रकार से उनका नौकर ही था। हुसैन उनका सिखाया-पढ़ाया शिष्य और उन्हीं का बनाया हुआ बादशाह था। इस प्रकार सम्पूर्ण अरब और ईराक़ अङ्गरेज़ों ने अपने क़ब्ज़े में कर लिए थे, परन्तु जहाँ देखो वहाँ बातें यही करते थे कि अरबी देशों को स्वतन्त्र, उन्नत तथा गौरवान्वित करने के लिए यह सब कुछ किया जा रहा है। नेपोलियन भी जब देशों को विजय करने जाता था तो इसी नीति से काम लेता था। मिसिर, उत्तर इटली, जर्मनी आदि को ऐसे मीठे वचनों में उसने ख़ूब फँसाया था। यह नीति यूरोपीय विजेताओं के स्वभाव का अङ्ग जान पड़ती है। इधर अधिकृत देशों से ये बातें कही जाती थीं, लेकिन उधर सन् १९१५-१६ में ही गुप्त समझौता हो चुका था कि अरबी देशों को इङ्गलैण्ड और फ़्रान्स किस प्रकार आपस में बाँटेंगे। शासकों और सैनिकों के बर्ताव से इन देशों को पता चलने लग गया था कि फ़्रान्स और इङ्गलिस्तान की मन्शा क्या है। १ली अगस्त सन् १९१९ को एक फ़्रान्सीसी पत्र में बैरूट के एक मुसलमान का निम्न-लिखित पत्र प्रकाशित हुआ था। उस समय के कई पत्र इस बात का अपने देश में प्रचार करते जाते थे कि सीरिया फ़्रान्स की अधीनता स्वीकार करने के लिए अत्यन्त लालायित है। यह वैसा ही प्रचार था, जैसा एङ्गलो-इण्डियन पत्र आजकल भारतवर्ष के विषय में कहा करते हैं। इसके जवाब में यह पत्र प्रकाशित हुआ था।

सीरिया का विरोध

"सीरिया और ईराक़ के बीच में न कोई भौगोलिक सीमा है और न वहाँ के निवासियों में कोई जाति-भेद है। धार्मिक विचारों में किञ्चित् भेद है, पर तुर्की शासकों के कारण वह कभी-कभी भयङ्कर रूप में प्रकट हुआ करता था। तुर्कों के शासन में अरब लोग शताब्दियों तक कष्ट भोग चुके हैं। अनेक अरबी लोग तुर्कों के अत्याचार से बचने के लिए विदेशों में भाग गए हैं। परन्तु वहाँ जाकर भी वे अपने प्यारे देश को नहीं भूले हैं और उसकी स्वतन्त्रता की उनको सदा चिन्ता रहती है। आप लोगों ने हमको शिक्षा दी है, उससे हमारा ज्ञान विस्तृत हो गया है और साथ ही हमारी आकांक्षाएँ भी उच्च बन गई हैं। हमने जो कुछ आपसे सीखा है, उसको अपने साहित्य का अङ्ग बना दिया है। जब से युद्ध का आरम्भ हुआ है, तभी से हम निरन्तर सुनते आए हैं कि इसका उद्देश्य लोगों को स्वतन्त्र बनाना है। यह जान कर हमको हर्ष-रोमाञ्च होने लगा है। हमारे अन्दर स्वतन्त्रता की अभिलाषा जाग उठी थी, लेकिन अब हमको निराशा का अनुभव होने लगा है। हम फ़्रान्स से प्रेम करते हैं, हम उसको स्वतन्त्रता का रक्षक समझते हैं; लेकिन यदि उसने भी हमको तुर्की की भाँति दासता में जकड़ा तो हम उसको भी उसी भाँति कोसेंगे, जैसे हम तुर्की को कोसा करते हैं। तुर्की की अपेक्षा हमको फ़्रान्स की अधीनता अधिक असह्य होगी। ईराक़ से हमको जुदा कर देने से हमारी दशा पोलैण्ड की सी हो जावेगी। परिणाम यह होगा कि फ़्रेञ्च-विद्यालयों

(शेष मैटर ५०० पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)

अन्धविश्वास

[श्री० सत्यभक्त जी]

अन्धविश्वास की शक्ति बड़ी प्रबल है। संसार का कोई स्थान ऐसा नहीं, जहाँ इसकी पहुँच न हो। अफ्रीका के घोर कुसंस्काराच्छन्न नर-भक्षियों से लेकर यूरोप और अमेरिका के वैज्ञानिक सामग्रियों से घिरे हुए श्वेताङ्गों तक पर इसका अतुलित प्रभाव देखने में आता है। इसकी माया ऐसी अद्भुत है कि यह जिस प्रकार अशिक्षितों और गँवारों को अपने चङ्गुल में फँसाता है, उसी प्रकार पढ़े-लिखों और सुसभ्य लोगों को भी अपना अनुयायी बना लेता है।

सबसे पहले भारतवर्ष को ही लीजिए। यहाँ के लोग धर्म के बहुत बड़े ज्ञाता और दार्शनिक होने का दावा करते हैं। ब्रह्म और जीव की एकता तथा ईश्वर की सर्वशक्तिमानता पर यहाँ के विद्वानों ने बड़े-बड़े पोथे लिख डाले हैं। इसी देश में सांख्य, न्याय, योग जैसे गहन विषयों के ग्रन्थ रचे गए हैं, जिनसे अनेक अन्धविश्वासों और भ्रममूलक धारणाओं का खण्डन हो जाता है। पर इतने पर भी अन्धविश्वास का जैसा अटल और व्यापक साम्राज्य इस देश में है, वैसा शायद ही पृथ्वी के किसी अन्य भाग में देखने को मिलेगा। यहाँ के स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध आदि सब श्रेणियों और सब अवस्थाओं के लोग अन्धविश्वास में फँसे हुए हैं, और उस पर इतनी अधिक श्रद्धा रखते हैं कि देखने वाले को आश्चर्य होता है। सच पूछा जाय तो सच्चे धर्म को यहाँ के निवासी सर्वथा भुला बैठे हैं और उसका स्थान भाँति-भाँति के अन्धविश्वासों ने ही ग्रहण कर लिया है।

हिन्दुओं में फैले हुए सैकड़ों तरह के अन्धविश्वासों में से एक प्रधान अन्धविश्वास मुहूर्त है। छोटा-बड़ा कोई कार्य करना हो, ये लोग सब से पहले उसके लिए कोई 'शुभ' मुहूर्त पूछने को पण्डित के पास दौड़ते हैं। जन्म से मरण तक की जितनी धार्मिक या सामाजिक क्रियाएँ हैं, उनके लिए तो मुहूर्त जान लेना आवश्यक ही है, पर यात्रा को जाने, दुकान खोलने, मकान बनवाने, यहाँ तक कि नए कपड़े पहिनने के लिए भी लोग मुहूर्त का पता लगा लेते हैं। कितने ही लोग बिना शुभ दिन के हजामत तक नहीं बनवाते। स्त्रियाँ चूड़ी पहिनने में शुभ और अशुभ दिन का ख़याल रखती हैं।

शकुन का महत्व भी कम नहीं है। छींक आने; छिपकली के गिरने; रवाना होते समय पानी का ख़ाली या भरा घड़ा मिलने; बिल्ली के मार्ग काट जाने; काने या अन्य हीन अङ्ग वाले व्यक्ति के मिलने; तेली, तमोली, चर्मकार, चाण्डाल आदि किसी ख़ास पेशे वाले से भेंट होने आदि बातों से यहाँ के लोग सफलता या असफलता, हानि या लाभ का निश्चय पहले ही से कर लेते हैं। कितने ही लोग अत्यावश्यक कार्य के लिए जाते हुए ऐसे किसी अपशकुन को देख कर वापस लौट जाते हैं और अपनी हानि कर लेते हैं। यदि वैद्य को बुलाने के लिए जाते हुए कोई अशकुन हो जाय तो ऐसे व्यक्ति रोगी के मर जाने की धारणा पहले से ही कर लेते हैं।

इसके सिवा जादू, मन्त्र, टोना, टोटका, झाड़-फूँक, नज़र आदि सम्बन्धी और भी सैकड़ों तरह के अन्धविश्वास यहाँ की साधारण जनता में देखने में आते हैं और उनके कारण प्रायः बड़ा अनिष्ट होता रहता है। बच्चों की मृत्यु का तो एक बहुत बड़ा कारण यही है। यहाँ की स्त्रियाँ और कितने ही पुरुष भी छोटे बच्चे को किसी प्रकार की तकलीफ़ होते ही सब से पहले नज़र लग जाने या टोना-टोटका की बात ही सोचते हैं और रोग का उपयुक्त इलाज करने के बजाय ओझाओं और स्यानों से झाड़-फूँक कराने पर ही अधिक ध्यान देते हैं। अथवा वे बच्चे को लाल मिर्चों आदि की धूनी देते हैं या फूल-बताशे आदि कितनी ही चीज़ें

एक दोने या मिट्टी के बर्तन में रख कर चौराहे पर रख आते हैं। इस युक्ति को 'उठावा' या 'चलावा' कहते हैं और लोगों का विश्वास है कि इसके द्वारा बच्चे का रोग उस व्यक्ति के पास चला जाता है, जो उन चीज़ों को उठाता है या छू लेता है। इस तरह की बातों का फल यह होता है कि बीमारी ज़ोर पकड़ जाती है और बचा प्रायः असमय में ही काल-कवलित हो जाता है। कभी-कभी इस प्रकार की धारणाओं का फल और भी भयङ्कर निकलता है और लोग अपने ही हाथों अपने प्रियजनों का घोर अनिष्ट कर बैठते हैं। कितने ही लोग भूत-प्रेतादिक को सिद्ध करने के फेर में पड़ कर अपनी जान गँवा देते हैं और कितने देवी-देवताओं से वर प्राप्त करने की अभिलाषा से अपना सर मूर्ति के सामने काट डालते हैं। कुछ समय पहले अख़बारों में एक विद्यार्थी का हाल छपा था, जिसने रामायण में रावण के सर काटने और पुनर्जीवित हो जाने का क़िस्सा पढ़ कर शिवजी के मन्दिर में अपना सर काट कर चढ़ा देने की चेष्टा की थी, पर गर्दन का कुछ भाग कटते ही वह यन्त्रणा से बेसुध हो गया और इससे उसके प्राण बच गए। इसी प्रकार चन्द कवि के जिह्वा काट कर देवी से वरदान पाने का हाल सुन कर एक व्यक्ति ने अपनी जीभ काट डाली थी। गोस्वामी तुलसीदास के सम्बन्ध में यह मशहूर है कि शौच से बचा हुआ जल लगातार एक बबूल के पेड़ की जड़ में डालने से एक प्रेत उन पर प्रसन्न हो गया था और उसी की कृपा से उनको भगवान का दर्शन प्राप्त करने की युक्ति विदित हुई थी। इस क़िस्से पर विश्वास करके कितने ही व्यक्ति शौच के समय आधे गन्दे रह कर भी पेड़ों की जड़ में जल डालते फिरते हैं। इसी प्रकार के अनगिनती अन्ध-विश्वासों ने इस देश में डेरा जमा रक्खा है।

अन्य देशों के उदाहरण

पर जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं, यह अन्धविश्वास का रोग भारतवासियों को ही नहीं है, सभी देशों के निवासी थोड़े-बहुत अंशों में इसमें ग्रस्त हैं। पुराने ज़माने में रोमन लोग बुख़ार को दूर करने के लिए बीमार आदमी के नाख़ून काट कर उन्हें सूर्योदय से पूर्व किसी पड़ोसी के दर्वाज़े पर मोम से चिपका देते थे। वे समझते थे कि इस उपाय से बुख़ार उस व्यक्ति को छोड़ कर पड़ोसी के यहाँ चला जायगा। ओरकनी टापू के लोग आजकल भी किसी बीमार व्यक्ति को स्नान कराके उसका पानी दर्वाज़े के बाहर फेंक देते हैं और समझते हैं कि जो कोई व्यक्ति सबसे पहले उस पर से निकलेगा, बीमारी उसको लग जायगी और स्नान करने वाला व्यक्ति नीरोग हो जायगा। बवेरिया (जर्मनी) में किसी व्यक्ति को बुख़ार आने पर वह एक काग़ज़ पर लिखता है—"बुख़ार, यहीं ठहरो, मैं घर पर नहीं हूँ।" इस काग़ज़ को वह चुपके से किसी अन्य व्यक्ति के जेब में डाल देता है, ताकि बुख़ार उसे छोड़ कर दूसरे व्यक्ति के पास चला जाय। अथवा वहाँ के लोग एक विशेष प्रकार के वृक्ष की डाली तोड़ कर बिना बोले हुए ज़मीन में गाड़ देते हैं। तब बुख़ार उस डाली में चला जाता है और जो कोई उसे उखाड़ता है, उसको लग जाता है। बोहेमिया (ऑस्ट्रिया) में लोग दूसरी तरह का उपाय काम में लाते हैं। वहाँ के निवासी ज्वरग्रस्त होने पर एक ख़ाली बर्तन लेकर चौराहे पर जाते हैं और उसे वहाँ फेंक कर भाग आते हैं। जो व्यक्ति सबसे पहले उस बर्तन से ठोकर खाएगा, बुख़ार उसको लग जायगा और बीमार व्यक्ति का पीछा उससे छूट जायगा। ओल्डेनबर्ग के निवासियों का विश्वास है कि जब ज्वर में ख़ूब पसीना आ रहा हो, तो बीमार को एक सिक्का देना चाहिए। बाद में वह सिक्का रास्ते में फेंक दिया जाय। जो व्यक्ति उसे उठाएगा, वह बीमार हो जायगा और पहले व्यक्ति की हालत सुधर जायगी।

(४६८वें पृष्ठ का शेषांश)

में पढ़-पढ़ कर हम राजनैतिक विचारों में उन्नत बनेंगे। मध्य अरबस्तान के उग्र विचार, जो इस समय सुषुप्त हैं, पुनः जाग्रत होंगे। उनका हममें भी सञ्चार होगा। हम उठ खड़े होंगे और अरब साम्राज्य, जिसकी हम वर्षों से अभिलाषा कर रहे हैं, स्थापित होगा।"

इस पत्र से स्पष्ट है कि सन् १६१५-१६ के समझौते के शब्द चाहे अरब लोगों को मालूम नहीं थे, परन्तु उनको अनुभव होने लगा था कि दूसरों की दिलाई स्वतन्त्रता नहीं मिलती। उसे स्वयं प्राप्त करना पड़ता है।

❀ ❀ ❀

असभ्य और अर्द्ध-सभ्य जातियों की भाँति यूरोप वालों में भी यह विश्वास आमतौर से प्रचलित है कि किसी मनुष्य की बीमारी या तकलीफ़ टोटके द्वारा किसी जानवर पर उतारी जा सकती है। कितने ही पुराने लेखों में कहा गया है कि अगर किसी आदमी को बिच्छू काट ले तो उसे गधे के ऊपर पूँछ की तरफ़ मुँह करके बैठ जाना चाहिए, अथवा उसके कान में कहना चाहिए—"मुझे बिच्छू ने काट लिया है।" इन तरकीबों से आदमी की तकलीफ़ गधे पर चली जायगी। कैशायर (इङ्गलैण्ड) में छोटे बच्चों को खाँसी की बीमारी हो जाने पर लोग एक मेंढक पकड़ कर लाते हैं और उसका सर थोड़ी देर तक बालक के मुँह में रखते हैं। इससे बालक अच्छा हो जायगा और खाँसी मेंढक को लग जायगी। एक पुराने यूरोपियन लेखक ने दमा की बीमारी को दूर करने की यह तरकीब बतलाई है कि बीमार आदमी किसी टट्टू के मुँह के झागों को गरम पानी में मिला कर पी जाय। इससे वह नीरोग हो जायगा, पर टट्टू मर जायगा। उसी लेखक ने आँतों की बीमारी के सम्बन्ध में लिखा है कि एक ख़रगोश को पैरों की तरफ़ से पकड़ कर बीमार के पेट पर फेरे और यह कह कर छोड़ दे—"भाग जाओ, भाग जाओ, छोटे ख़रगोश, और आँतों के दर्द को भी अपने साथ ले जाओ।" इङ्गलैण्ड के डेवनशायर नामक स्थान और वेल्स में खाँसी को दूर करने के लिए रोगी के सर का एक बाल मक्खन लगी हुई रोटी के दो टुकड़ों के बीच में रख कर कुत्ते को खिला देते हैं। इससे बीमार अच्छा हो जायगा और खाँसी कुत्ते को लग जायगी। ओल्डनबर्ग में लोग बीमारी को दूर करने को एक ऐसा उपाय काम में लाते हैं, जिसे इस देश के मनुष्य शायद ही कर सकेंगे। वे लोग एक कुत्ते के सामने प्याले में मीठा दूध भर कर रखते हैं और उससे कहते हैं—"कुत्ता जी, आप राज़ी-ख़ुशी हैं। क्या तुम बीमार होगे और मैं अच्छा हो जाऊँगा।" इसके बाद जब कुत्ता थोड़ा सा दूध चाट लेता है तो बीमार उसमें से एक घूँट पी लेता है। इस प्रकार तीन बार करने से बीमारी कुत्ते के पास चली जायगी। वहाँ की एक स्त्री ने गिर्जे के पादरी को बतलाया था कि एक बार वर्ष भर तक उसे बुख़ार आता रहा और किसी तरह आराम न हुआ। तब किसी व्यक्ति ने उसे अपना खाना कुत्ते और बिल्ली को देने की सलाह दी। इस उपाय से बुख़ार उन दोनों प्राणियों के पास चला गया। पर वह उन ग़रीब प्राणियों को रोज़ अपनी आँखों से दुखी देखा करती थी और इससे उसे बड़ा सन्ताप होता था। तब उसने इच्छा की कि वे नीरोग हो जायँ। तब कुत्ते और बिल्ली का बुख़ार जाता रहा और वह स्वयम् फिर बीमार हो गई।

फ्रान्स के पर्के नामक स्थान के किसानों की धारणा है कि किसी व्यक्ति को बहुत अधिक उल्टी आने का कारण उसके मेदे का स्थानच्युत हो जाना है। इसके लिए वे किसी ओझे को बुलाते हैं, जो बीमारी का हाल पूछ कर तुरन्त ही ज़मीन पर गिर कर भयङ्कर रूप से तड़फड़ाने और लोटने लगता है। इस तरकीब से वह अपने मेदे को स्थानच्युत करता है। जब वह इसमें सफल हो जाता है, तो वह फिर उसे ठीक स्थान पर पहुँचाने की चेष्टा करता है और इसके लिए फिर तड़पना और इधर-उधर लोटना शुरू होता है। जैसे-जैसे वह इन हरकतों को करेगा, बीमार को आराम होता जायगा। इसकी फ़ीस तीन रुपए देनी पड़ती है। डाइक लोगों में जब कोई ओझा बीमार का इलाज करने आता है, तो वह स्वयम् मुर्दा बन कर लेट जाता है। लोग उसके साथ मुर्दे का सा ही व्यवहार करते हैं और चटाई में बाँध कर घर से बाहर ले जाकर श्मशान-भूमि में रख देते हैं। घण्टे भर बाद दूसरा ओझा जाकर उसके बन्धन खोलता है और उसे फिर से जीवित करता है। उसके पुनर्जीवित होने से बीमार व्यक्ति भी नीरोग हो जायगा, ऐसा वहाँ के लोगों का विश्वास है।

कील ठोंकने से दाँत का दर्द मिटाना

यूरोप के कितने ही भागों में दाँत के दर्द को अच्छा करने के लिए लोग दर्वाज़े की चौखट में या छत की कड़ी में कील ठोंक देते हैं, और विश्वास करते हैं कि जब तक कील गड़ी रहेगी, दाँत का दर्द बन्द रहेगा। इसले नामक स्थान में एक पहाड़ी टीला है। लोगों का विश्वास है कि जो कोई उसमें कील ठोंक देता है, वह सदा के लिए दाँतों के दर्द से छुट्टी पा जाता है। उत्तरी अफ्रीका के मुसलमान दाँतों में दर्द होने पर दीवार

पर कुछ अरबी अक्षर और संख्याएँ लिखते हैं। बीमार व्यक्ति दर्द करने वाले दाँत पर अँगुली रखता है और एक दूसरा व्यक्ति क़ुरान की आयतें पढ़ते हुए एक संख्या के ऊपर कील ठोंकता है। तब वह बीमार से पूछता है कि दर्द मिटा या नहीं। अगर वह 'हाँ' कहे तो कील पूरी ठोंक दी जाती है और यदि 'नहीं' कहे तो उस संख्या में से निकाल कर दूसरी पर ठोंकी जाती है। जब तक दर्द अच्छा न हो, यह कार्य जारी रहता है।

चीन में मेह बरसाने की विधि

जिस प्रकार मेह बरसने में देर होने पर हमारे देश में यज्ञ-हवन आदि किए जाते हैं, शिवलिङ्ग को पानी में डुबो दिया जाता है, लड़के और बड़ी उम्र के व्यक्ति घर-घर पानी माँगते और ज़मीन में लोट कर नहाते फिरते हैं, उसी प्रकार चीन में भी अवर्षण को दैवी प्रकोप समझ कर देवताओं से पानी बरसाने की प्रार्थना की जाती है। इसके लिए वहाँ के निवासी काग़ज़ का एक बहुत बड़ा अजगर बनाते हैं, जो कि वर्षा का देवता माना जाता है। इस अजगर का बड़ी धूमधाम से जुलूस निकाला जाता है और उससे पानी बरसाने की प्रार्थना की जाती है। पर जब इस पर भी मेह नहीं आता, तो अजगर को दण्ड-स्वरूप टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं। किसी-किसी स्थान में लोग वर्षा के देवता को पीटने की धमकी देते हैं, अथवा उसे सर्व-साधारण के सम्मुख देवता के पद से च्युत कर देते हैं। इसके विपरीत यदि प्रार्थना करने पर पानी बरस जाता है तो सम्राट की आज्ञा द्वारा उसे और भी ऊँचा पद प्रदान किया जाता है। कहा जाता है कि मञ्चू वंश के किआ-किङ्ग नामक सम्राट के राज्य-काल में एक बार बहुत दिनों तक मेह नहीं बरसा और उत्तरी चीन के कई प्रदेश अकाल के कारण नष्ट हो गए। अजगर के सैकड़ों जुलूस निकाले गए, पर उसने एक बूँद पानी भी ज़मीन पर न गिराया। अन्त में सम्राट का धैर्य जाता रहा और उसने क्रुद्ध होकर देवता को सदा के लिए टॉरगॉट प्रान्त में इली नदी के किनारे निर्वासित करने की आज्ञा दे दी। सन् १७१० में साङ्ग-मिङ्ग के टापू में मेह न बरसने से अकाल पड़ा। जब बहुत प्रार्थना करने पर भी देवता ने मेह नहीं बरसाया, तो वहाँ के शासक ने उसका मन्दिर बन्द करा दिया और पूजा वग़ैरह रोक दी। कुछ दिनों बाद मेह बरसा और देवता ने फिर पुराना सम्मान प्राप्त कर लिया। इसी प्रकार सन् १८८८ में कैण्टन प्रान्त में अवर्षण होने पर वहाँ के गवर्नर ने देवता को पाँच दिन तक क़ैद रक्खा, तब कहीं जाकर मेह बरसा। एक बार यही देवता मेह न बरसने पर ज़ञ्जीर से बाँध कर मन्दिर के आँगन में बैठा दिया गया। इसका आशय यह था कि जब वह गर्मी से कष्ट पाएगा, तो उसे मेह की आवश्यकता स्वयम् प्रतीत होगी।

स्याम के निवासी भी अवर्षण होने पर देवताओं को सूरज की जलती हुई धूप में बैठा देते हैं। पर जब कभी मेह अधिक बरसता है तो वे देवताओं के गृह की छत को हटा देते हैं, जिससे मूर्तियाँ पानी में भीगने लगती हैं। वहाँ के निवासियों का विश्वास है कि जब देवताओं को असुविधा होगी, तब वे स्वयम् ही अपने भक्तों की प्रार्थना स्वीकार करेंगे।

दीर्घजीवन देने वाले वस्त्र

चीन वालों ने दीर्घजीवन प्राप्त करने के लिए ऐसे विचित्र उपायों का आविष्कार किया है, जिनका अन्य देश वालों को पता भी न होगा। वहाँ के बहुत से व्यक्ति अपना कफ़न अपने जीवन-काल में ही तैयार करा लेते हैं और उसे किसी क्वारी कन्या अथवा बहुत कम उम्र की स्त्री से सिलाते हैं। वे समझते हैं कि कफ़न सीने वाला व्यक्ति अभी बहुत दिनों तक जीएगा और इसका कुछ न कुछ प्रभाव कपड़े पर भी अवश्य पड़ेगा। इसके फल-स्वरूप उस अवसर के आने में विलम्ब लगेगा, जब कि वह उपयोग में लाया जाय। इसके सिवा वे इस कफ़न को ऐसे साल में तैयार कराते हैं, जो दूसरे सालों की अपेक्षा बहुत अधिक लम्बा हो। उनके मतानुसार ऐसे वर्ष में तैयार हुआ कपड़ा, जो कि ग़ैर मामूली लम्बा है, अवश्य ही जीवन की वृद्धि करेगा। वहाँ के निवासी जो कपड़े पहनते हैं, उनमें से एक गहरे नीले रङ्ग का रेशमी चोग़ा होता है। इस पर ऊपर से नीचे तक हज़ारों की संख्या में 'दीर्घजीवन' शब्द लिखा जाता है। सामर्थ्यवान व्यक्ति अपने वृद्ध माता-पिता को इस प्रकार का बहुमूल्य चोग़ा भेंट करते हैं और यह उनके सपूत होने का बड़ा प्रमाण माना जाता है। इस चोग़े

को कभी-कभी, विशेषकर त्योहारों पर पहना जाता है, जिससे उसमें लिखे हुए शब्दों द्वारा पहनने वाले की आयु-वृद्धि हो। अपने जन्म-दिवस पर तो इसको अवश्य ही पहना जाता है।

पेड़ों की पूजा

हिन्दू लोग पेड़ों में भी आत्मा मानते हैं और कितने ही पेड़ तो देवता मान कर पूजे जाते हैं। पीपल के पेड़ को समस्त देवताओं का निवास-स्थान माना जाता है। उसका महत्व हिन्दुओं की दृष्टि में इतना अधिक है कि पीपल की डाल के काटे जाने के कारण हिन्दू-मुसलमानों के बड़े-बड़े दङ्गे हो चुके हैं। बड़, गूलर, आमला आदि के पेड़ भी पूजनीय माने जाते हैं। इस प्रकार का विश्वास अन्य जातियों में भी पाया जाता है। प्राचीन समय में जब कि लिथूनिया (यूरोप) में ईसाई धर्म का प्रचार नहीं हुआ था, तो एक पादरी ने वहाँ के निवासियों को गाँव के पूजनीय पेड़ों को काट डालने को समझाया। इस पर हज़ारों औरतों ने शासक के पास जाकर प्रार्थना की कि इस कार्य को रोका जाय, अन्यथा पेड़ों का देवता मेह और धूप को रोक देगा। आसाम में रहने वाले मुन्दारिस जाति के जङ्गली लोगों का भी विश्वास है कि यदि वे किसी पवित्र पेड़ को काट डालेंगे तो वर्षा न होगी। बर्मा के एक भाग में मेह बरसने के लिए लोग इमली के सबसे बड़े पेड़ के पास जाकर प्रार्थना करते हैं और उसमें रहने वाले देवता को रोटी, नारियल, केला तथा मुर्ग़ी की बलि चढ़ाते हैं। कम्बोडिया के प्रत्येक गाँव में एक पवित्र पेड़ होता है और यदि मेह बरसने में देर होती है, तो लोग उसके पास जाकर बलिदान करते हैं। कितने ही स्थानों के लोग पानी बरसाने के लिए किसी ख़ास पेड़ की डाल को तोड़ कर पानी में डुबो देते हैं। वे समझते हैं कि इस डाल में मेह के देवता का निवास है और वह पानी का स्पर्श होने से अवश्य मेह बरसाएगा।

कितने ही देशों में लोग अच्छी फ़सल होने के लिए भी पेड़ों से प्रार्थना करते हैं और भेंट चढ़ाते हैं। गोल्ड-कोस्ट (अफ़्रीका) के हबशी इस उद्देश्य से कुछ बहुत ऊँचे पेड़ों के नीचे जाकर बलिदान किया करते हैं और उनका विश्वास है कि अगर उनमें से कोई पेड़ गिर जाय तो पृथ्वी के तमाम फल नष्ट हो जायँगे। पूर्वी अफ़्रीका के वाबोनडेई जाति वाले एक विशेष वृक्ष के सामने प्रति वर्ष बकरे का बलिदान करते हैं और कहते हैं कि अगर इसमें चूक हो जाय तो पेड़ का देवता बीमारी और मृत्यु भेज देगा। यूरोप में स्वीडेन के किसान प्रत्येक हल के फाल में एक पेड़ की डाल बाँध देते हैं, जिससे फ़सल ख़ूब ज़्यादा हो। फ़्रान्स और जर्मनी के किसान फ़सल कट जाने पर 'मे' नामक पेड़ की एक बड़ी शाखा काटते हैं और उसको अन्न की बालों से सजा कर अनाज की अन्तिम गाड़ी पर रख कर लाते हैं। यह शाखा साल भर तक खलिहान की छत पर रक्खी रहती है। इस शाखा में पेड़ के देवता का निवास माना जाता है, जिसमें फ़सल की वृद्धि करने की शक्ति है।

जिस तरह पेड़ों में फ़सल उत्पन्न करने की शक्ति मानी जाती है, उसी तरह लोग यह भी विश्वास करते हैं कि वे वन्ध्या स्त्री को फलवती कर सकते हैं। यूरोप में आम तौर पर पहली मई के दिन अपनी भावी पत्नी के घर पर एक हरा पौधा रक्खा जाता है, जिससे वह सन्तानवती हो। बवेरिया (जर्मनी) में नवविवाहित दम्पति इस तरह का पौधा अपने घर पर लगाते हैं। पर यदि स्त्री के शीघ्र ही सन्तान होने वाली हो, तो उसे नहीं लगाया जाता। दक्षिणी यूरोप की स्लैवोनियन जातियों की वन्ध्या स्त्रियाँ सेण्ट जॉर्ज दिवस को अपना नया कुर्ता किसी फलयुक्त वृक्ष पर रख देती हैं। दूसरे दिन प्रातःकाल वे वस्त्र को उठाती हैं और देखती हैं कि उस पर कोई जीवित कीड़ा-मकोड़ा चढ़ा है या नहीं। अगर कोई कीड़ा चढ़ा होता है, तो वे समझ लेती हैं कि उनकी अभिलाषा साल भर के भीतर पूर्ण हो जायगी और वे उस कुरते को वहीं पहिन लेती हैं।

हिन्दुओं की तरह यूरोप के लोग भी वृक्षों की पूजा करते हैं! इनमें सबसे अधिक महत्व ओक का है। यह वृक्ष अति विशाल होता है। प्राचीन काल में तो उसे एक महान देवता ही माना जाता था। अब भी प्रायः सभी देशों में उसकी पूजा होती है। फ़्रान्स में पादरी लोग ईसाई सन्तों के चित्र ओक-वृक्ष पर लटका देते हैं और सब लोग उसकी वन्दना करते हैं। स्विडन में ईस्टर के अवसर पर युवक और युवतियाँ दलबद्ध हो ओक के किसी पुराने पेड़ के चारों तरफ़ नाचते और हर्षनाद करते

थे। जर्मनी में बीमार मनुष्यों और जानवरों को आरोग्य होने के लिए किसी ओक के तने के बीच में होकर, जिसमें ख़ुदबख़ुद रास्ता बन गया हो या काट कर बनाया गया हो, निकालते हैं। कुछ दिन पहले लिथूनिया के निवासी ओक के देवता को भेंट चढ़ाया करते थे।

हानियाँ

इसी तरह संसार में न मालूम कितने अन्धविश्वास फैले हुए हैं। इनकी गणना कर सकना अथवा इनका पूरा विवरण दे सकना सर्वथा असम्भव है। इनमें से अधिकांश विश्वासों और प्रथाओं का कुछ न कुछ कारण अवश्य है। इनके विकास का इतिहास बड़ा ही मनोरञ्जक है और उससे मानव-प्रकृति के रहस्यों का बहुत-कुछ ज्ञान प्राप्त हो सकता है। इन अन्धविश्वासों में से बहुत से प्राचीन काल की प्रथाओं के अवशेष अथवा किसी ऐतिहासिक घटना के स्मारक-स्वरूप हैं। उनमें से कितने ही केवल मनुष्यों के अज्ञान को प्रकट करते हैं, पर कितने ही ऐसे भी हैं, जिनसे जनता की बड़ी हानि होती है। उदाहरणार्थ हिन्दू लोग हनुमान जी की आकृति का होने से बन्दरों और गणेश जी का वाहन होने से चूहों को नहीं मारते। इस मूर्खता के फल-स्वरूप उनको बेहद नुक़सान उठाना पड़ता है। बन्दर जैसे नटखट जन्तु थोड़े ही होते हैं और उसके कारण लोगों को अनेक बार बड़ी तकलीफ़ उठानी पड़ती है। वृन्दावन, अयोध्या जैसे स्थानों में लोग उनके भय से घरों को जेलख़ानों की तरह चारों तरफ़ से बन्द और सुरक्षित बना लेते हैं, जिससे स्वच्छ हवा के प्राप्त होने में भी बाधा पड़ती है। बन्दरों को खिलाने में साल में लाखों रुपए ख़र्च कर दिए जाते हैं वह अलग। इसी प्रकार चूहे प्रति वर्ष खेतों और घरों में करोड़ों रुपए के अन्न और माल की हानि करते हैं, पर अधिकांश व्यक्ति पाप समझ कर उनको नष्ट करने का कोई उपाय नहीं करते। एक तरफ़ तो करोड़ों मनुष्य भूख की ज्वाला से प्राण दे रहे हैं, छोटे-छोटे बच्चे रोटी के एक कौर के लिए बिलबिलाते रहते हैं, और दूसरी तरफ़ अपार सामग्री का इस प्रकार नाश किया जाता है। इसका नाम मूर्खता नहीं तो क्या है? यह तो एक साधारण उदाहरण है, इसी तरह न मालूम कितने अन्धविश्वासों से इस देश का नाश हो रहा है और यहाँ के निवासी कष्ट उठा रहे हैं। अन्धविश्वास को मामूली बात समझ कर टाल देना भूल है। इसके फल से अप्रत्यक्ष रीति से समस्त जनता में तरह-तरह के दोष उत्पन्न होते हैं। यह समझना ग़लती है कि यह केवल एक व्यक्तिगत विषय है, राष्ट्र की उन्नति से इसका कोई सम्बन्ध नहीं। पुराने ज़माने में ऐसी घटनाएँ हुई हैं, जिनसे विदित होता है कि अन्धविश्वास के कारण राष्ट्रों का नाश हो जाता है। दो हज़ार वर्ष से अधिक हुआ, ईरान वालों ने यूनान के स्पार्टा प्रदेश पर हमला किया था। स्पार्टा वालों का विश्वास था कि सेना को विजय तभी प्राप्त हो सकती है, जब कि वह शुक्ल पक्ष में रवाना हो। इसलिए उन्होंने कई दिन तक सेना को रणभूमि के लिए रवाना न किया और शत्रु बहुत आगे बढ़ आया। वह तो एथेन्स वालों ने उस अवसर पर उनकी सहायता कर दी और किसी तरह वे ईरान वालों को अपने देश से हटा सके। अन्यथा यूनान और सम्भवतः यूरोप का नक़्शा कई सौ वर्षों के लिए बदल जाता। इसी प्रकार एथेन्स वालों ने चन्द्रग्रहण के भय से अपने शत्रु सिराकुस के मुक़ाबले में सेना भेजने में एक दिन की देर कर दी और फल-स्वरूप उनका ज़बर्दस्त जहाज़ी बेड़ा और एक बड़ी सेना नष्ट हो गई तथा एथेन्स सदा के लिए उन्नति के पथ से गिर गया। भारतवर्ष की पराधीनता के अनेक कारणों में से एक कारण अन्धविश्वास भी है। इतिहासकारों ने लिखा है कि जब आरम्भ में मुसलमान आक्रमणकारियों ने इस देश पर हमला किया था, तो कितनी ही बार वे गायों का एक बड़ा समूह सामने करके इस देश वालों पर आक्रमण करते थे। गायों की हत्या के भय से हिन्दू सैनिक वार करने में हिचकिचाते थे और इससे मुसलमानों का काम बन जाता था। यह जान कर भी कि मुसलमान गौ-भक्षक हैं और यदि इस देश पर उनका क़ब्ज़ा हो गया तो सदा के लिए असंख्यों गायों की हत्या का मार्ग खुल जायगा, उन्होंने थोड़ी गायों के मरने के ख़याल से उनका मुक़ाबला न किया। अन्धविश्वास से होने वाली हानि का इससे बढ़ कर और क्या प्रमाण हो सकता है।

स्वतन्त्रता और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में रूसी महिलाओं की नई प्रगति

मास्को (रूस) की नाव चलाने वाली संस्था की सदस्याओं का एक विराट जुलूस, जिसमें ७५ हज़ार महिलाओं ने भाग लिया था ।

श्रीमती सावित्री हरदास कुन्दानी—आप एक सिन्धी महिला-रत्न हैं, जो हाल में ही हैदराबाद (सिन्ध) के बेञ्च की ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट बनाई गई हैं। इसके अतिरिक्त कतिपय सार्वजनिक संस्थाओं से भी आपका सम्बन्ध है।

कुमारी एफ़० मुहम्मद अली—आप कराची (सिन्ध) ज़िले की कन्या-पाठशालाओं की इन्स्पेक्ट्रेस नियुक्त की गई हैं।

श्रीमती जी० एन० गिनवाला—आप गुजरात प्रान्त की पहली पारसी महिला हैं, जो अङ्कलेश्वर की म्युनिसिपैलिटी की कौन्सिलर बनाई गई हैं।
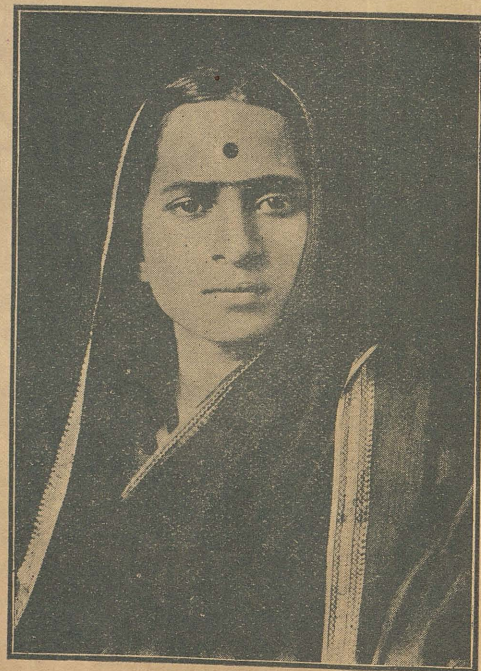
श्रीमती सुशीला बाई पवार—आप लश्कर (ग्वालियर) की रहने वाली हैं। आपने एफ़० ए० क्लास की अर्थ-शास्त्र की परीक्षा में सर्व-प्रथम स्थान पाया है।

पाकपटन (ज़िला मॉन्टगोमरी, पञ्जाब) के वकील दीवान जयचन्द जी की माता श्रीमती कौशल्यादेवी (उम्र ६३ साल) और उनकी धर्म-पत्नी श्रीमती आनन्दकुमारी देवी, जिन्हें मॉन्टगोमरी ज़िला कॉङ्ग्रेस कमिटी की डिक्टेटर की हैसियत से ६-६ मास की कड़ी क़ैद और १-१ सौ रुपए जुर्माने की सज़ा दी जा चुकी है।

कुमारी शान्तिदेवी सक्सेना, उम्र १२ साल—यह बालिका इटावा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के हेडक्लर्क श्री० कालीप्रसाद जी सक्सेना की कन्या है, जो इस साल इलाहाबाद की हाई-स्कूल परीक्षा में सफलतापूर्वक उत्तीर्ण हुई है।

भेद
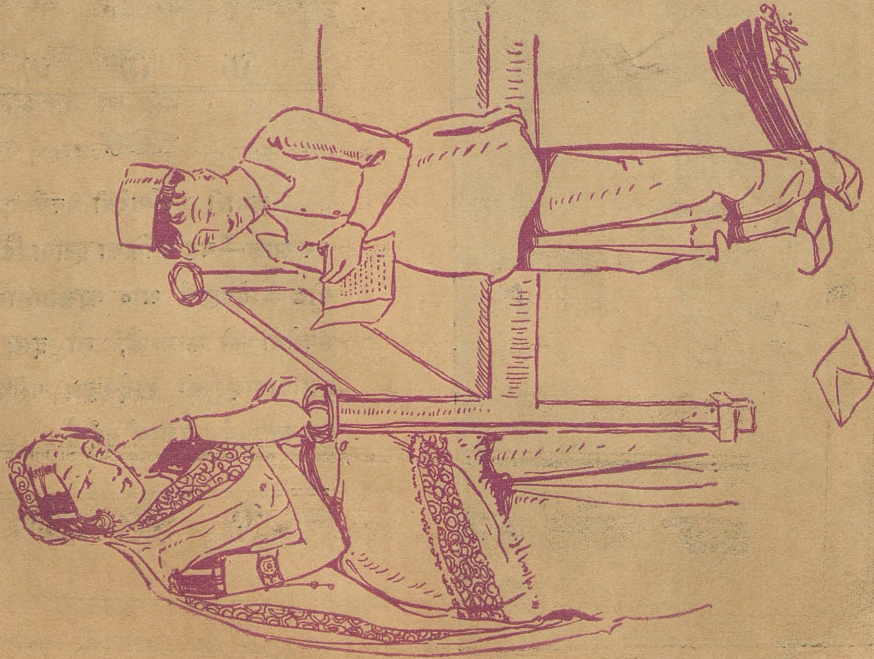
अशिक्षिता

पति का पत्र राहगीर से पढ़ाया जा रहा है !

शिक्षिता

घर बैठे संसार की सैर !!

गायक

[डॉक्टर धनीराम प्रेम]

ब आध घण्टे तक बाँसुरी से ओठों को रगड़ने के बाद भी भास्कर को कुछ न मिला, तो वह खिन्न-चित्त होकर सामने के मकान की एक सीढ़ी पर बैठ गया। उसे आशा थी कि कम से कम सन्ध्या के भोजन के लायक़ तो उसे अवश्य ही मिल जायगा, परन्तु वह आशा अब निराशा में परिणत हो गई। वह बैठा हुआ कभी आकाश की ओर देख कर और कभी पृथ्वी की ओर देख कर कुछ सोचने लगा। फिर उसने बाँसुरी को अपने दाहिने हाथ में उठा कर उसकी ओर एकटक ताकना शुरू कर दिया। उसके मस्तिष्क में उस समय वह बाँसुरी ही समाई हुई थी। क्योंकि उसके जीवन में वही बाँसुरी सबसे अधिक महत्त्व की वस्तु थी, वही उसके जीवन की आधार थी, और वही न जाने किन-किन बातों की भण्डार थी।

बाँसुरी उसके जीवन की आधार थी अवश्य, परन्तु वह इतनी आवश्यक न थी, जितना कि उसका जीवन। बाँसुरी के पीछे जीवन था सही, परन्तु बिना जीवन के बाँसुरी भी किस काम की थी। इसीलिए बाँसुरी से हट कर उसके विचार जीवन की ओर, वास्तविक जीवन की ओर, उसकी समस्याओं की ओर गए। वह एक-एक करके उनके विषय में सोचने लगा।

भास्कर उस नगर का रहने वाला नहीं था। उस स्थान से दूर एक छोटा सा ग्राम उसकी जन्मभूमि था। बाल्यकाल में ही मातृ-पितृ-विहीन हो जाने के कारण उसे संसार में अपना मार्ग स्वयं बनाना पड़ा था। परन्तु प्रयत्न करने पर भी उस मार्ग को वह विशद, वृक्षाच्छादित तथा कण्टकहीन न बना सका था। वह जिधर जाता था, वहीं ठोकरें खाने को मिलती थीं। सम्बन्धी समझते थे कि उनका उससे कोई सम्बन्ध था ही नहीं। मित्र समझते थे कि वह उनकी मित्रता का अधिकार प्राप्त करने की क्षमता रखता ही न था। यहाँ तक कि यदि वह किसी के पास थोड़े से द्रव्य की याचना के लिए जाता, तो वह उसके लिए भी उपयुक्त पात्र नहीं समझा जाता था। ऐसे समय में जीवन को स्थिर रखने के लिए, पेट के लिए कुछ दाने प्राप्त करने के लिए तथा शरीर पर कुछ वस्त्र धारण कर सकने के हेतु उसने बाँसुरी की शरण ली थी। सङ्गीतज्ञ माता-पिता की सन्तान होने के कारण बचपन से ही उसे बाँसुरी बजाने का अभ्यास हो गया था। और अब तक स्वयं अपने ही उद्योग से उसने उस कला में प्रवीणता प्राप्त कर ली थी। परन्तु एक ग्राम में सङ्गीत का इतना आदर कहाँ—और विशेषकर उस ग्राम में, जहाँ उसे प्रत्येक प्राणी जानता था, जहाँ उसकी आशाओं, उसकी महत्वाकांक्षाओं तथा उसके मानवोचित भावों का प्रत्येक दिन वध किया जाता था। यह बात नहीं थी कि लोग उसकी बाँसुरी की सुरीली तानों से

मुग्ध नहीं होते थे। वे मुग्ध होते थे, बड़े मनोयोग से उन तानों को सुनते थे, परन्तु उनके लिए वे पैसे देने के लिए तैयार नहीं थे। इसका एक कारण यह भी था कि पैसे देकर वे यह दिखाना नहीं चाहते थे कि भास्कर का सङ्गीत ऐसा है, जिसका कोई वास्तविक मूल्य भी हो सकता था।

इसी कारण भास्कर अपने ग्राम को सर्वदा के लिए छोड़ कर इस नगर में आया था। दिन भर पैदल चल कर वह थक गया था, परन्तु सन्ध्या के भोजन के लिए कुछ पैसे तो एकत्रित करने ही थे। उन्हीं के लिए उसने आध घण्टे अपनी बाँसुरी बजाई थी। उसे आशा थी कि दो-चार आने एकत्रित हो जाना कठिन नहीं था। परन्तु वह निराशा से पीला पड़ गया, जब उसने देखा कि सुनने वाले एक-एक करके सब चले गए, परन्तु उसे पैसा एक भी नहीं मिला। कुछ देर तक बाँसुरी को एक ओर पटक कर वह हाथों से आँखों को छिपा कर रोने लगा।

२

कुछ समय के अनन्तर उसने अपना रोना बन्द किया। वहाँ से उठा और बाज़ार के दूसरे भाग की ओर जाने लगा। यह उसके लिए बिलकुल स्वाभाविक था। यह उसका जीवन ही था। निराशा, आशा, फिर निराशा और फिर आशा। इसी पर वह अपने अस्तित्व को ठहराए हुआ था। घोर निराशा में दुखी होकर भी वह आशा का पल्ला नहीं छोड़ता था। इसीलिए वह इस नगर की पहली निराशा से परास्त नहीं हुआ। उसने फिर उद्योग करने का सङ्कल्प किया। इसके अतिरिक्त और कुछ करने को था ही नहीं। वह आगे बढ़ा चला गया। सन्ध्या हो चली थी। बाज़ार में भीड़ बढ़ चुकी थी। वह एक स्थान पर जाकर ठहर गया। थका हुआ था, भूखा-प्यासा था, आँखों में नींद भरी हुई थी, निराशा से हृदय व्यथित हो चुका था। फिर भी उसने अपनी बाँसुरी उठाई, एक बार आकाश की ओर नेत्र बन्द करके देखा और फिर एक मीठी सी तान छेड़ दी। वह बजाते-बजाते स्वयं झूमने लगा। बाज़ार में तहलक़ा मच गया। इधर-उधर से लोग उसके चारों ओर एकत्रित होने लगे। धीरे-धीरे वहाँ काफ़ी भीड़ एकत्रित हो गई। भास्कर के साथ सभी बाँसुरी की तान के साथ झूम रहे थे।

वह समा भङ्ग हुआ। भास्कर ने बाँसुरी बजाना बन्द किया। भीड़ छटने लगी। जिस प्रकार सिनेमा समाप्त होते ही लोग शीघ्रता से अपने घरों की ओर चले जाते हैं, उसी प्रकार वह भीड़ भी वहाँ से काफ़ूर होने लगी। भास्कर आँखें फाड़-फाड़ कर चारों ओर देखने लगा। जो कुछ वह देख रहा था, वह ऐसा था कि वह भीड़ से पैसे माँगना भूल गया। क्या लोग इतने विचारहीन हो सकते थे—ये नगर के शिक्षित लोग—कि एक भिक्षुक की बाँसुरी सुन कर भी बिना पैसे दिए चले जा रहे हैं। उन सब में दो-चार भी ऐसे न निकले कि एक-एक पैसा भी उसे दे जाते। उसने इधर-उधर देखा; सब चले गए थे। केवल एक किशोरी वहाँ खड़ी उसकी ओर देख रही थी। भास्कर कुछ देर तक उसकी ओर देखता रहा। वह बाला भी कुछ देर तक उसकी ओर देखती रही। फिर बाँसुरी एक ओर रख कर भास्कर उसके पास आया।

"तुम क्यों खड़ी हो?"—उसने पूछा।

"क्या बुरा लगता है?"

"नहीं तो।"

"फिर क्यों ऐसा पूछते हो?"

"इसलिए कि और सब यहाँ से चले गए हैं।"

"इसका कारण था।"

"क्या?"

"वे बाँसुरी सुनना चाहते थे, परन्तु कुछ देना नहीं चाहते थे।"

"और तुम?"

"यह है मेरी भेंट।"—कह कर उस बाला ने एक अठन्नी उसकी ओर बढ़ाई।

भास्कर ने अठन्नी हाथ में ले ली। कुछ देर उसकी ओर देखा, फिर उसे लौटाते हुए बोला—इसे मैं न लूँगा।

"क्यों?"

"मेरा इतना मूल्य नहीं है।"

"तुम्हारी बाँसुरी की ध्वनि अमूल्य है, तुम ऐसा क्यों समझते हो?"

"तुम ऐसा कहती हो न, परन्तु लोग तो ऐसा नहीं समझते। मैं इस ध्वनि को बाज़ार में बेचने के लिए तैयार हुआ और मुझे क्या मिला? एक पैसा भी नहीं। यह मेरा मूल्य है। यह मेरी बाँसुरी की ध्वनि का मूल्य है। फिर मैं तुम्हारी यह अठन्नी किस प्रकार स्वीकार कर सकता हूँ?"

जब उसने यह कहा, तो उसके नेत्र चमकने लगे। वह और भी पास आ गई।

"तुम साधारण भिक्षुक नहीं हो, जो केवल पैसे के लिए बाँसुरी बजाते हैं या गाना गाते हैं।"—उसने कहा।

"मैं उनसे भी गया-बीता हूँ।"—भास्कर ने उत्तर दिया।

"कोई दुर्भाग्य × × ×?"

"क्या पूछती हो!"

वह कुछ देर तक सोचती रही। फिर बोली—बोलो, तुम गाना भी गाते हो?

"हाँ।"

"अच्छा?"

"यह मैं कैसे कह सकता हूँ!"—उसने लज्जा से शिर नवा कर कहा।

"गाकर बता तो सकते हो?"

"गाना ही पड़ेगा?"

"यदि चाहो तो?"

भास्कर ने पहले गले को साफ़ किया, फिर गाना आरम्भ कर दिया :—

खोज रहा तू क्या जीवन में?
किसके लिए कर रहा विचरण—
बता, विश्व के विस्तृत वन में?
झूठी जग की सारी माया।
कैसा अपना और पराया?
अरे खोज कर पाले पहले,
अपने ही को अपने मन में।
खोज रहा तू क्या जीवन में?

भास्कर ने गाना बन्द किया। बाला अभी तक उसकी ओर देख रही थी, उसी उल्लास और मनोयोग से, जो एक भक्त के हृदय में अपने देवता के लिए होता है। गाना समाप्त होते ही वह बोली—तुम्हारा नाम क्या है?

"भास्कर!"

"भास्कर! यदि तुम्हें मैं सङ्गीत का भास्कर कहूँ तो?"

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"सुधाबाला।"

"कोई आश्चर्य नहीं, यदि तुम्हारी बातों में इतना माधुर्य भरा है। परन्तु इससे मेरे सङ्गीत के मूल्य में अन्तर नहीं पड़ता।"

"शायद! परन्तु क्या तुम इसका वास्तविक मूल्य देखना चाहते हो?"

"बहुत देख लिया है।"

"गलियों में? इस प्रकार मनुष्यों की भीड़ में?"

भास्कर बिना उत्तर दिए उसकी ओर देखता रहा।

"परन्तु गलियों में तुम अपना मूल्य नहीं लगा सकते।"

"फिर?"

"किसी थिएटर में।"

"थिएटर में मैं?"

"क्यों नहीं!"

"परन्तु किस प्रकार?"

"मेरे साथ आओ।"

सुधा ने भास्कर का हाथ पकड़ लिया और एक ओर को उसे ले जाने लगी। भास्कर बिना कुछ कहे, बिना कुछ पूछे, एक छोटे बालक की भाँति सुधा के पीछे हो लिया, मानो उसकी चेतनशक्ति का हरण सुधा ने कर लिया था।

३

घर पहुँच कर सुधा ने भास्कर को एक कुर्सी पर बैठाया।

"यह मेरा घर है।"—उसने भास्कर से कहा।

"तुम कौन हो?"—भास्कर ने हँस कर पूछा।

"सुधा, और कौन।"

"तुम मायाविनी हो!"

"अच्छा, मेरी माया पीछे देखना। पहले भोजन करने की बात बताओ।"

"भोजन तो मैं × × ×"

"× × × करके आया हूँ। यही न ?"—सुधा ने उसका वाक्य पूरा किया।

"करके तो नहीं आया, परन्तु × × ×"

"× × × करूँगा नहीं। यही न ?"

"हाँ !"

"मैं जानती हूँ, तुम ऐसा क्यों कह रहे हो। परन्तु तुम भूखे हो।"

"नहीं।"

"भूख छिप नहीं सकती। जिस समय तुम गा रहे थे, उसी समय तुम्हारे स्वर में शिथिलता थी। मैं सब समझती हूँ। तुम सङ्गीत-प्रेमी हो, हम लोग भी सङ्गीत-प्रेमी हैं। तुम इस घर को अपना घर समझो। हाथ-पैर धोओगे ?"

"हाँ !"—भास्कर ने सङ्कोच के साथ कहा।

सुधा ने उसके हाथ धुलाए और भोजन का थाल लाकर सामने रख दिया। भोजन को सामने देख कर भास्कर का सारा सङ्कोच दूर हो गया। वह भूखा था, इस बात का उसे स्मरण हो आया। उसने एक साँस में भोजन समाप्त कर दिया।

भोजन कर चुकने के बाद भास्कर में एक नई स्फूर्ति आ गई। वह सुधा से बोला—तुम्हारी इस दयालुता का बदला मैं किस प्रकार चुका सकूँगा ?

"बदले की इसमें क्या बात है ? यह तो संसार के चलने का उपाय है। कभी शायद तुम ही मेरे काम आओ। सारे जीवन में एक यही बात तो याद रखने के योग्य है—जहाँ तक हो सके दूसरों का दुःख बटाओ। तुम सङ्गीतज्ञ हो, तुम इसे भली-भाँति समझ सकते हो। यही मेरे पिता का मूलमन्त्र है, इसी की शिक्षा मुझे उन्होंने दी है।"

"पिता यहीं हैं ?"

"पास के कमरे में बैठे हैं।"

"सङ्गीत के प्रेमी हैं ?"

"गुरुदास का नाम नहीं सुना ?"

"सङ्गीत के सुप्रसिद्ध कलाविद् ?"

"हाँ !"

"वह तुम्हारे पिता हैं ! अब मैं समझा। क्या उनके दर्शन न कराओगी ?"

"वह स्वयं तुम्हें देखने चले आएँगे। एक बार अपना गाना फिर गा दो।"

"उनके सामने ?"

"उन्हीं के सामने गाने से तो काम बनेगा।"

"अच्छा।"

सुधा हारमोनियम के स्वर ठीक करने लगी। भास्कर ने हारमोनियम के साथ अपना गला मिलाया और फिर गाने लगा। उस समय उसकी सारी शक्तियाँ गाने में भाग ले रही थीं। उसके स्वर में एक अपूर्व लालित्य आ गया था। गले के साथ वह भाव-प्रदर्शन में भी कमाल कर रहा था। साथ ही उसे मार्गदर्शिका सुधा मिली थी, जो हारमोनियम को बजाने में अपनी सारी पटुता का प्रयोग कर रही थी। उसने—"अरे खोज कर पाले पहले अपने ही को अपने मन में" लाइन गाकर समाप्त की ही थी कि देखा कि सुधा के पिता द्वार पर खड़े मुसकुरा रहे थे। सुधा ने भास्कर की ओर इशारा करके धीरे से कहा—'पिता जी !' भास्कर ने उनके चरणों का स्पर्श किया। सुधा ने उसका परिचय कराया।

"यदि तुम कुछ परिश्रम करो, तो अच्छे गायक बनोगे। तुम्हारे पास अद्भुत स्वर है और तुम उसका प्रयोग करना जानते हो।"—सुधा के पिता भास्कर की ओर देख कर बोले। भास्कर शिर नीचा किए हुए खड़ा था, उसने कुछ कहा नहीं। सुधा ने अपने पिता से पूछा—"थिएटर के योग्य ?"

"क्यों नहीं ? यहीं के थिएटर के योग्य नहीं, किसी भी स्थान के थिएटर के योग्य।"

"देखा, भास्कर !"—सुधा ने भास्कर की ओर देख कर कहा। भास्कर ने कृतज्ञता-भरी दृष्टि से आँसू बहाते हुए एक बार सुधा की ओर देख भर लिया।

भास्कर उसी दिन से सुधा के परिवार का एक सदस्य हो गया।

४

सुधा के पिता के प्रयत्न से भास्कर को वैज्ञानिक सङ्गीत का पूर्ण ज्ञान करने में देर न लगी। अब वह जहाँ बाँसुरी बजाने में सिद्धहस्त था, वहाँ गाने में भी अत्यन्त प्रवीण हो गया था। सुधा उसका उत्साह बढ़ाती रहती थी।

अन्त में वह दिन आया, जिसकी प्रतीक्षा सुधा और भास्कर कर रहे थे। सुधा के पिता ने स्थानीय थिएटर में भास्कर का सङ्गीत कराने का प्रबन्ध किया। भास्कर का नाम तो चारों ओर हो ही गया था। थिएटर का हॉल दर्शकों से खचाखच भर गया। आज भास्कर अपना प्रदर्शन करने से पूर्व अपना मूल्य ले रहा था, फिर भी लोगों को स्थान मिलना कठिन था। सङ्गीत प्रारम्भ होने से पूर्व भास्कर और सुधा, दोनों, पर्दे के पीछे खड़े थे। दोनों के नेत्रों में हर्ष के आँसू थे। सुधा ने रोली से भास्कर के ललाट पर तिलक किया और ऊपर से अक्षत लगा दिए। भास्कर ने सुधा का हाथ अपने हाथों में ले लिया और रोने लगा।

"अधीर क्यों हो रहे हो, भास्कर?"—सुधा ने उसे थपथपा कर पूछा।

"अधीर न होंगे? इतना गौरव, इतनी प्रतिष्ठा, यह सब मैं सहन नहीं कर सकता।"

"सहन नहीं कर सकते? क्यों नहीं? तुमने यह सब कुछ अपने बल पर प्राप्त किया है। आज बड़े सौभाग्य से यह दिन आया है, परन्तु वह सौभाग्य तुम्हारे लिए अनधिकार चेष्टा नहीं है।"

"यह ठीक है, सुधा, परन्तु वह दिन? ओफ़, उस दिन को अभी नहीं भूला हूँ। जब उस दिन की तुलना इस दिन से करता हूँ, तो मुझे विश्वास नहीं होता कि यह सब सत्य हो सकता है। परन्तु जब तुम्हारी ओर देखता हूँ, तो इस पर विश्वास होने लगता है × ×।"

"क्यों?"

"क्योंकि यह सब तुम्हारी कृति है।"

"मेरी?"

"हाँ, तुम्हारी! जो कुछ मेरे पास है, वह सब तुम्हारा है।"

"सब?"

"सब, और यदि उससे भी कुछ अधिक हो, तो वह।"

"तुम भी?" सुधा ने उसके नेत्रों की ओर देखा। भास्कर ने भी सुधा के नेत्रों की ओर देखा। दोनों ने एक-दूसरे का अर्थ समझ लिया। भास्कर ने धीरे से सुधा को अपनी ओर खींचते हुए कहा—"सबसे पहले।"

सुधा ने भास्कर की छाती के ऊपर अपना शिर रख लिया।

"मैं इतना भाग्यवान हो सकूँगा?"—भास्कर ने पूछा।

"यह मत पूछो, भास्कर! क्या अब तक समझे नहीं हो? जिस दिन तुम्हारा प्रथम गान सुना था, उसी दिन से × × ×।"

"मेरी सुधा!"—कह कर भास्कर ने उसे अपने हृदय से लगा लिया और बोला—"आज मैं परम भाग्यशाली हूँ। मेरे पास सङ्गीत की कला है, नाम है, गौरव है और सबसे बढ़ कर हो तुम! आज मेरे स्वर में सौगुना माधुर्य हो जायगा; आज मेरे गले में वह शक्ति आएगी, जो मैंने कभी भी अनुभव नहीं की; आज मेरी बाँसुरी वे स्वर निकालेगी, जो कभी किसी को सुनने को नहीं मिले।"

और दस मिनट बाद उसका स्वर सौगुना माधुर्य बखेर रहा था, उसका गला अपूर्व शक्ति का प्रदर्शन कर रहा था, उसकी बाँसुरी दर्शकों को मन्त्र की नाईं मुग्ध कर रही थी। आज सुधा के कहने से वह अपना वही गाना गा रहा था, जो उसने सुधा को प्रथम भेंट के अवसर पर सुनाया था। आज उसे इस गाने के अर्थ में कुछ अपूर्व विलक्षणता दिखाई देती थी। आज उसका वास्तविक अर्थ उसकी समझ में आ रहा था। अब तक वह न जाने किसकी खोज करता रहा—व्यर्थ खोज तथा असफल खोज। आज सुधा को पाकर वह अपने मन में अपने ही को पा गया था!

५

कुछ दिनों के अनन्तर सुधा के पिता का देहान्त हो गया। परन्तु उसके पूर्व सुधा और भास्कर विवाह-बन्धन में बँध चुके थे। यद्यपि भास्कर का नाम अपने ज़िले में काफ़ी हो चुका था, परन्तु नाम बढ़ने के साथ ही साथ उसकी और सुधा की आकांक्षाएँ भी बढ़ने लगीं। अब उनके हृदय में इस इच्छा ने घर कर लिया कि किसी प्रकार सङ्गीत के गढ़ बम्बई में भी भास्कर का नाम चमक जाय। उनकी यह महत्वाकांक्षा थी कि एक दिन भास्कर के सङ्गीत का प्रदर्शन बम्बई के 'रॉयल ओपेरा हाउस' में हो, उसका नाम बिजली से प्रकाशित बड़े-बड़े शब्दों में थिएटर के सामने लगा हो तथा उसका गुणगान और उसके चित्र बम्बई के सभी प्रसिद्ध पत्रों में पाए जायँ।

उनकी यह आकांक्षा तो थी, परन्तु उसके पूर्ण होने के लिए साधनों की आवश्यकता थी। सबसे अधिक प्रसिद्ध कलाविदों ही को वहाँ स्थान मिलता था। ज़िले के नाम से वहाँ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता था। वहाँ तो मार्ग बनाने की आवश्यकता थी। थिएटर के अधिकारियों को यह दिखाने की आवश्यकता थी कि भास्कर वास्तव में एक श्रेष्ठ कलाविद था। और यह कार्य बिना रुपए के हो नहीं सकता था। भास्कर अभी तक इतना रुपया नहीं कमा पाया था कि सारा व्यय करके इस कार्य के लिए भी रुपया बचा सकता। परन्तु सुधा ने उसकी इस कठिनाई को सरल कर दिया। वह भास्कर को निराश देख कर एक दिन बोली—तुम निराश क्यों होते हो, मैं तुम्हें रॉयल ओपेरा हाउस तक पहुँचाऊँगी।

"पहुँचाओगी, सुधा?"

"हाँ।"

"किस प्रकार?"

"इस प्रकार।"—कह कर सुधा ने उसके सामने एक पोटली रख दी।

"इसमें क्या है?"—भास्कर ने पूछा।

"खोल कर देखो।"—सुधा ने उत्तर दिया। भास्कर ने पोटली को खोला, उसमें रुपए थे।

"रुपए?"—उसने कहा।

"गिनो।"

भास्कर ने रुपए गिने, पूरे पाँच सौ थे।

"ये कहाँ से लाई हो?"

"हमारे हैं।"

"हमारे?"

"हाँ, पिता जी की यह अन्तिम भेंट थी।"

"तब तो ये तुम्हारे हुए।"

"मैं तुम्हारी हूँ न?"

"हो, प्रिये! परन्तु यह धन तुम्हारा है। तुम इस प्रकार इसे मेरे ऊपर व्यय नहीं कर सकती हो।"

"क्यों नहीं? तुम्हारे सामने संसार में मेरा क्या हो सकता है। जो कुछ भी मेरा कहला सकता है, वह पहले तुम्हारा है।"

"परन्तु मान लो कि यह रुपया व्यय हो गया और मुझे फिर भी सफलता न मिली?"

"इससे क्या होता है? दोनों मिल कर सड़कों पर गाएँगे और भीख माँगेंगे!"

भास्कर को अपना वह दिन याद आ गया। "तुम देवी हो, मेरी सुधा!"—कह कर उसने सुधा को अपने हृदय से लगा लिया।

६

बम्बई पहुँचते ही सुधा ने भास्कर के सङ्गीत का प्रदर्शन करने के लिए पूरा प्रबन्ध कर लिया। एक छोटा सा थिएटर एक रात्रि के लिए किराए पर लिया। प्रवेश-शुल्क बहुत कम रक्खी और नगर में भली-भाँति विज्ञापन करा दिया। अब वह उस रात्रि की प्रतीक्षा करने लगी, जब भास्कर को बम्बई के सामने अपनी कला का प्रदर्शन करने का प्रथम अवसर मिलना था। उस अवसर की सफलता अथवा विफलता पर उन दोनों के जीवन की आकांक्षाएँ, सफलता तथा सुख सब निर्भर थे। उसने भास्कर को रिहर्सल बड़ी संलग्नता से कराया। इस प्रकार पूरा प्रबन्ध कर लेने के बाद वह रात्रि आई। टिकटें सब बिक चुकी थीं। रुपयों को गिन कर सुधा हर्ष से नाचने लगी। तीसरी घण्टी बज चुकी थी। हारमोनियम सुधा स्वयं ही बजाने वाली थी। भास्कर की ओर देख कर वह बोली—

"यह अवसर बार-बार नहीं मिलेगा, प्यारे! आज अपनी सारी कला का ज़ोर लगा देना। ईश्वर चाहेगा तो ओपेरा हाउस वाले कल ही आकर बात करेंगे।"

भास्कर ने एक हलकी सी थपकी सुधा के गाल पर मार कर कहा—यह मेरी सफलता नहीं है, पागल, यह तुम्हारी सफलता है। तुम्हारे बिना मैं क्या कर सकता था? तुमने मुझे गर्त से निकाल कर × × ×

वह बात को पूरी न कर पाया था कि सुधा ने अपनी अँगुलियाँ उसके होठों पर रख कर कहा—"न, न, ये बातें कभी न कहना, नहीं तो मैं नरक में घसिटती फिरूँगी।" कुछ देर तक दोनों ने निःशङ्क होकर एक-दूसरे की ओर देखा और अपने काम पर चले गए।

भास्कर को आशातीत सफलता मिली थी, इसमें कोई सन्देह नहीं। जब बाँसुरी बजाई थी तब भी; और जब गाना गाया था तब भी; दर्शकों ने उसे बार-बार वही दुहराने की प्रार्थना की थी। गाना समाप्त

होने के बाद सुधा और भास्कर दोनों वार्तालाप कर रहे थे कि थियेटर के चपरासी ने आकर कहा—कोई आपसे मिलना चाहता है।

"मुझसे ?"—भास्कर ने पूछा।

"हाँ, यह कार्ड है।"

भास्कर ने वह कार्ड ले लिया। एक बहुत ही सुन्दर काग़ज़ पर छपा हुआ तथा सुगन्ध से तर कार्ड को देख कर भास्कर को आश्चर्य हुआ। इस पर लिखा हुआ था—बेगम सुलताना।

"एक स्त्री ?"—सुधा ने कार्ड देख कर पूछा।

"हाँ।"—भास्कर ने उत्तर दिया।

"वह क्या चाहती है ?"

"मिलना चाहती होगी।"

"किस लिए ?"

"शायद उससे आगे के लिए कुछ सहायता मिले"

"मिलोगे उससे ?"

"क्या हर्ज है ?"

"स्त्री है।"

"पागल न बनो। स्त्री है तो क्या कर लेगी ? तुम भी तो स्त्री हो।"

"सभी एक सी नहीं होतीं।"

"परन्तु मैं तो वही हूँ।"

"मुझे भय मालूम होता है।"

"चिन्ता न करो। मैं अभी आता हूँ।"

भास्कर कुछ देर बाद बाहर से आ गया। उसके मुख पर हर्ष के चिन्ह थे।

"एक ख़ुशख़बरी, सुधा !"—वह ज़ोर से बोला।

सुधा उधर दौड़ी आई। उसके मुख पर उत्सुकता के चिह्न थे।

"हाँ ?"—उसने पूछा।

"हाँ।"

"क्या है ?"

"ओपेरा में गाना ठीक हो गया !"

"ठीक हो गया ? ओह, भास्कर, मैं कितनी प्रसन्न हूँ।"

"और एक बात है !"

"क्या ?"

"कल शाम को हम दोनों उसके यहाँ दावत के लिए निमन्त्रित हैं।"

"निमन्त्रित !"—सुधा के मुख के भाव बदल गए।

"हाँ।"

"कैसी स्त्री है वह ?"

"बहुत धनवान !"

"यह मेरा मतलब नहीं था।"

"फिर ?"

"उसका चरित्र कैसा है ?"

"चरित्र ? चरित्र के विषय में हमें इतनी चिन्ता की आवश्यकता नहीं। हमारी आकांक्षा पूरी हो जाए, फिर बस !"

७

भास्कर और सुधा, दोनों बेगम के यहाँ निमन्त्रण पर गए। मलाबार हिल पर बेगम का बड़ा शानदार बङ्गला था। बेगम विधवा थीं, दूसरा निकाह नहीं किया था। बच्चा कोई था नहीं। आयु भी तीस से अधिक नहीं थी। देखने में ख़ासी ख़ूबसूरत थीं। इन सबके अतिरिक्त उनके पास अतुल सम्पत्ति थी। सङ्गीत से प्रेम होने के कारण समाज में सर्वत्र उनकी पहुँच थी।

दावत के बाद बेगम का जो व्यवहार भास्कर के साथ रहा, वह सुधा को सह्य न था। सुधा यह नहीं देख सकती थी कि वह एक ओर अकेली खड़ी रहे और भास्कर बेगम के साथ एक ओर अकेला बैठे। वह उसकी पत्नी थी। उसने भास्कर को अपनी ओर बुलाया।

"मैं अब अधिक यहाँ ठहरना नहीं चाहती।"—सुधा बोली।

"क्यों ?"—भास्कर ने पूछा।

"मैं इस वातावरण को अच्छा नहीं समझती।"

"इसमें ऐसी कौन सी बात है ?"

"तुम्हारी आँखें नहीं हैं और कान नहीं हैं, तो तुम यहाँ रहो। मैं नहीं रह सकती। और × × × मेरे सर में दर्द भी हो रहा है।"

"तुम भूल रही हो कि आज हमें एक स्वर्ण-सुयोग मिल रहा है। आज यहाँ हमें नगर के सम्माननीय व्यक्ति

मिलेंगे। एक प्रकार से हमारा प्रवेश यहाँ के सभ्य समाज में हो जायगा। हमारी जन्म भर की अभिलाषाएँ पूरी हो जायँगी। इस समय तो हमारा कर्तव्य है कि बेगम को ख़ुश रक्खें। और × × × वह इतनी बुरी भी नहीं है कि जितना तुम उसे समझती हो।"

"यदि ऐसा है, तो तुम यहाँ ठहरो। मुझे जाने दो।"

"अभी से ऐसी ईर्ष्या?"

"मुझे यहाँ से जाने दो, बस!"—सुधा ने तड़प कर कहा। इतने ही में बेगम वहाँ आ गईं।

"क्या बात है, भास्कर?"—उन्होंने पूछा।

"मेरी स्त्री के सिर में दर्द हो रहा है। मैं घर जा रहा हूँ।"

"घर जाने की क्या ज़रूरत है? यहीं डॉक्टर बुलवा देती हूँ।"

"डॉक्टर की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। घर जाकर थोड़ा आराम करना काफ़ी होगा।"

"फिर तुम्हारे जाने की क्या ज़रूरत है? मैं इन्हें अपनी कार में भेजे देती हूँ।"

"अकेली चली जाओगी, सुधा?"—भास्कर ने पूछा।

सुधा ने कुछ कहा नहीं, केवल सिर हिला कर स्वीकृति दे दी।

❀ ❀ ❀

अन्त में रॉयल ओपेरा हाउस के सामने बिजली के अक्षरों में यह लिखा दिखाई दे ही गया—

Prof. Bhaskar's musical night. Wonderful Indian Music-Vocal & Instrumental. Supported by Mrs. Sudha Bhaskar.

अर्थात्—

आज रात्रि को प्रोफ़ेसर भास्कर का भारतीय सङ्गीत। श्रीमती सुधा भास्कर भी स्टेज पर सहायता देंगी।

उस दिन का प्रदर्शन शान से समाप्त हुआ। स्टेज पर काम ज्योंही समाप्त हुआ, सुधा माला का प्रबन्ध करने लगी। उसने माला बनाई, भास्कर के ऊपर बखेरने के लिए फूल लिए और विङ्ग में आई। परन्तु वहाँ भास्कर का पता नहीं था। उसे केवल इतना ही पता चला कि भास्कर बेगम की कार में बैठ कर कहीं गया है। उसका हृदय टूट गया। इस महान सफलता के बाद अपनी स्त्री से बात भी न की और बेगम के साथ चला गया! वह इतनी प्यारी हो गई कि सुधा को सूचना देना तक भी उचित न समझा गया। उसने माला को तोड़ कर एक ओर फेंक दिया, फूलों को पैरों से कुचल डाला और रोते-रोते एक टैक्सी लेकर अपने निवास-स्थान पहुँची।

उस सन्ध्या के लिए उसने बड़ी तैयारियाँ की थीं। रसोइए से उस दिन विशेष प्रकार के भोजन बनवाए थे, जो एक मेज़ पर सजे हुए रक्खे थे। उसने भोजनों की ओर देखा भी नहीं। एक कुर्सी पर बैठ कर वह रोने लगी। इतने ही में नौकर ने एक पुर्ज़ा दिया। वह भास्कर का लिखा हुआ था। सुधा ने पढ़ा—

"मैं अचानक ही बेगम द्वारा घेर लिया गया। उन्होंने मेरी सफलता के उपलक्ष में उसी समय कुछ मित्रों को निमन्त्रित किया। मैं उनके साथ हो लिया। उस सफलता की ख़ुशी में मुझे तुम्हें सूचना देने की सुधि भी न रही। मैं एक घण्टे बाद आ रहा हूँ। प्रतीक्षा करना। भास्कर!"

इस पत्र को पढ़ कर सुधा का क्रोध और भी बढ़ गया, परन्तु फिर भी वह प्रतीक्षा करती रही। एक घण्टा बीता, दो बीते, तीन बीते, इसी प्रकार कई घण्टे बीते, परन्तु भास्कर न आया। कुर्सी पर बैठे-बैठे ही सुधा की आँख लग गई।

प्रातःकाल जग कर वह जब नहा-धो ली, तो भास्कर आया। उसके पैर लड़खड़ा रहे थे। वस्त्र अस्त-व्यस्त हो रहे थे। मुख से मदिरा की गन्ध आ रही थी। वह आकर एक कुर्सी पर बैठ गया। सुधा ने थोड़ा सा जल उसके शिर पर तथा मुख पर डाला।

"सो अब तुम यहाँ तक आ पहुँचे!"—सुधा ने भास्कर से कहा।

"कहाँ तक?"

"शराब पीने तक।"

"शराब?"

"हाँ।"

"परन्तु मैंने नहीं पी थी।"

"फिर यह गन्ध कैसी आ रही है ?"

"यह बेगम ने पिलाई होगी।"

"चलो, अब चद्दर कर सो रहो।"

"कै बजे हैं ?"

"सात।"

"तो मुझे नौ बजे जगा देना।"

"क्यों ?"

"दस बजे बेगम की कार यहाँ आएगी।"

"बेगम की कार ?"—सुधा उछल पड़ी।

"हाँ।"

"क्यों ?"

"मुझे लेने के लिए।"

"फिर उसी नरक में ?"

"ऐसा न कहना। बेगम को मुझसे एक आवश्यक कार्य है।"

"मैं जानती हूँ क्या आवश्यक कार्य है।"

"क्या जानती हो ?"

"वह तुम्हें मुझसे छीनना चाहती है। ओह, भास्कर चेतो, देखो, समझो ! क्या तुम नहीं देख सकते कि यह स्त्री चरित्रहीना है ? इसका कार्य तुम जैसे नवयुवकों को विलासिता का पाठ पढ़ा कर नष्ट कर देना है। ईश्वर के लिए तुम अब भी सँभल जाओ। तुमने नाम कमा लिया है। अब तुम्हें किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं है।"—सुधा ने यह कह कर भास्कर का हाथ पकड़ लिया।

भास्कर ने उसका हाथ एक ओर करके कहा—"सुधा, मैं तुम्हारी ये व्यर्थ की बातें अब नहीं सुनूँगा। जब से हम लोग बम्बई आए हैं, तब से तुम्हारा व्यवहार बिलकुल बदल गया है। सन्देह और ईर्ष्या से तुम घुली जा रही हो। तुम समझती हो कि मैं तुम्हारा दास हूँ, जो कुछ तुम कहो, वही करूँ; जहाँ तुम चाहो, वहीं जाऊँ। मैं तङ्ग आ गया हूँ इन सब बातों से। तुम समझती हो कि तुमने मुझे यह सब यश, यह सब गौरव प्रदान किया है। परन्तु तुम नहीं जानती हो कि इस सबका श्रेय बेगम को है।"

"परन्तु मैं तुम्हें उसके पास नहीं जाने दूँगी।"

"नहीं जाने दोगी ! देखना है, किस तरह। मैं अभी उसके यहाँ जा रहा हूँ और फिर × × × फिर कभी तुम्हारे पास नहीं आऊँगा।"—वह यह कह कर तेज़ी से बाहर निकल गया। सुधा 'भास्कर-भास्कर' चिल्लाती रही, परन्तु भास्कर तब तक वहाँ से चला जा चुका था।

७

मदिरा का दौर चल रहा था। एक कमरे में अकेले भास्कर और बेगम बैठे थे। बेगम ने भास्कर से गाना गाने को कहा। उस समय भास्कर को केवल अपना वह गाना याद आया, जो उसने सुधा के सामने पहले-पहल गाया था। वह गाने लगा :—

> खोज रहा तू क्या जीवन में ?
> किसके लिए कर रहा विचरण—
> बता, विश्व के विस्तृत वन में।

ये लाइनें गाते ही भास्कर के सामने सुधा का चित्र खिंच गया। जब उसे सुधा प्रथम बार मिली थी, तब से उसके वियोग के दिन तक के दृश्य उसके नेत्रों के सामने नाचने लगे। ओफ़, उसने क्या कर डाला था ? जिस सुधा ने उसके लिए इतना किया, उसे यश की चोटी तक पहुँचाया, उसे ऊपर उठने का अवसर दिया, उसके लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया, उसी सुधा को उसने इस निर्दयता से, इस अमानुषिकता से ठुकरा दिया ! और वह भी एक ऐसी स्त्री के लिए, जिसकी मैत्री का कोई आदर नहीं था, जिसके अपनापन में कोई सार नहीं था, जिसके प्रेम का कोई मूल्य नहीं था ! कुछ ही दिनों में वह पतन की किस श्रेणी तक जा पहुँचा था। वह मेज़ पर सर रख कर फूट-फूट कर रोने लगा।

"क्या हो गया ?"—बेगम ने पूछा।

भास्कर उठा और चलते हुए कहने लगा—मैं जा रहा हूँ।

"जा रहे हो ?"

"हाँ !"

"कहाँ ?"

"सुधा के पास।"

"सुनो, मूर्ख !"

"नहीं, बेगम अब मैं मूर्ख नहीं हूँ, अब तक था। मुझे ऐसा विदित हो रहा है कि सुधा मेरे प्रत्येक ज्ञान-

तन्तु पर अपने पैरों से आघात पहुँचा रही है। मैंने उसके प्रति घोर अन्याय किया है। अब मैं उसका प्रतिकार करने जा रहा हूँ।"

वह तेज़ी से वहाँ से निकल कर घर आया। सुधा वहाँ नहीं थी। चारों ओर खोजा, उसका पता नहीं था। नौकर आया, भास्कर ने उसकी ओर देखा।

"चली गईं।"—नौकर ने कहा।

"कब?"

"उसी समय।"

"कहाँ?"

"घर।"

"कुछ कह गई हैं?"

"यह लिख कर रख गई हैं।"

नौकर ने एक छोटा सा काग़ज़ का टुकड़ा भास्कर के हाथों में रक्खा। उस पर लिखा था :—

अरे, खोज कर पा ले पहले,
अपने ही को अपने मन में।

उसने घड़ी देखी; अभी गाड़ी मिल सकती थी। वह स्टेशन की ओर दौड़ा। गाड़ी में वह बैठा ही था कि वहाँ बेगम आ गई।

"सुधा के पास चल दिए?"

"हाँ।"

"बम्बई के इस जीवन को छोड़ कर? वहाँ कहाँ पाओगे, इतना नाम और × × × इतना जीवन का आनन्द?"

"मैं अब इस जीवन से अलग हो चुका, बेगम! न मैं नाम चाहता हूँ, न जीवन का आनन्द!"

"फिर वहाँ क्या करोगे?"

"अपने को अपने ही मन में खोजूँगा!"

गाड़ी उसी समय चल पड़ी। बेगम उसके वाक्य पर हँसने लगी, परन्तु भास्कर धीरे-धीरे गा रहा था—

अरे, खोज कर पा ले पहले,
अपने ही को अपने मन में।

गणिका

[श्री० भुवनेश्वरसिंह जी 'भुवन']

चञ्चल मन है, चञ्चल चितवन,
चञ्चल नव-नव अनुराग-कथन।
मुस्कान चपल, चञ्चल-क्रन्दन,
जैसे बुद-बुद—जैसे जीवन॥
अन्तर जलती ज्वाला भीषण,
पर तू बाहर से मलय-पवन!

श्रावण-घन-सीकर रस-वर्षण,
तन-मन कर लेती आकर्षण।
पर अन्त दुखद सर्वस्व-हरण,
जब गिर पड़ती हो, बिजली बन॥
है गरल-सुधा से पूर्ण वचन,
नयनों में मादक सम्मोहन।

तू मूर्तिमान माया-कानन,
जिसमें छल-कौशल हिंसक-जन।
ये बाल-जाल द्रुम-पत्र सघन,
अन्तस्तल है, नीरव-निर्जन॥
फूले हैं, राग-विराग सुमन,
जिनमें अन्तर्हित कीट-व्यसन।

तू, कला, कल्पना, प्रकृति-रतन,
सुन्दर तन, उच्छृङ्खल यौवन,
है, गति-विहीन असफल जीवन,
अवगुण ही गुण, गुण ही दूषण॥
प्रतिबिम्बित है समाज-साधन,
जिसमें तू वह उज्ज्वल दर्पण।
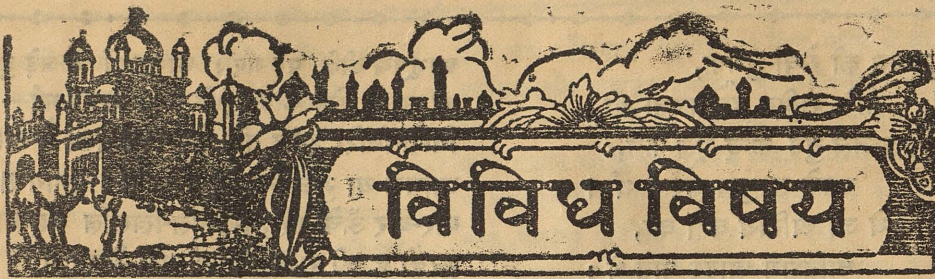
हिन्दी-शकुन्तला

संसार-प्रसिद्ध प्रेम-कथाओं में महाकवि कालिदास-कृत शकुन्तला अग्रगण्य है। मूलग्रन्थ संस्कृत-साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति है। और इस सुन्दर ग्रन्थ का अनुवाद भी संसार की सभी उन्नत भाषाओं में हो चुका है। सभी जानते हैं कि वाग्विलासिता, उपमा और अलङ्कार में कालिदास की बराबरी करने वाला कोई कवि नहीं। यूरोप के महाकवि गेटे (Go e) का कथन है—

"Would'st thou the earth and heaven in one sole name combine ?
I name thee, O Shakuntala, and all at once is said."

'शकुन्तला' कितना प्यारा नाम है, इसके विचार मात्र से कवि-शक्ति के स्रोत का उमड़ना स्वाभाविक ही है।

अनुवाद में मूलग्रन्थ का आनन्द लाना सहज नहीं। मूलग्रन्थ के अनुवाद-स्वरूप अथवा भाव तथा कथा लेकर हिन्दी-साहित्य में कई सुन्दर रचनाएँ हुई हैं। यहाँ हम अपने रसास्वादन का क्षेत्र परिमित करने के लिए केवल स्वर्गीय राजा लक्ष्मणसिंह जी कृत "अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक" (सन् १८८२ ई०) तथा श्री० मैथिलीशरण जी गुप्त कृत "शकुन्तला" (सम्वत् १९७४) को समक्ष रक्खेंगे।

एक बार कौशिक मुनि ने घोर तपस्या की, जिससे इन्द्र को अपना आसन छिन जाने का भय हुआ। फलतः मुनि का तप भ्रष्ट करने के लिए इन्द्र ने मेनका नाम की अप्सरा को उनके पास भेजा। मेनका अपने कार्य में सफल हुई और फल-स्वरूप शकुन्तला का जन्म हुआ। मेनका शकुन्तला को प्रसव करते ही, उसे छोड़ कर इन्द्र-लोक को उड़ गई। इतने में वहाँ कण्व ऋषि आ निकले और दया करके शिशु को अपने आश्रम को ले गए। मालिनी नदी के किनारे सुन्दर तपोवन में महात्मा कण्व का आश्रम था।*

आश्रम में वृद्ध तपस्विनी गौतमी ने शकुन्तला को बड़े लाड़-प्यार से पाला। शकुन्तला बड़ी होने लगी। साथ ही उसकी सुन्दरता दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी। फलतः कण्व को उसके लिए योग्य वर की चिन्ता हुई। शकुन्तला आश्रम में आनन्द से रहती, वल्कल वस्त्र पहनती और अनसूया तथा प्रियम्वदा नाम की दोनों सखियों सहित आश्रम के वृक्षों और पौधों को सींचा करती, और—

रखती थी प्रेमार्द्र सभी को,
वह अपने व्यवहारों से;
पशु-पक्षी भी सुख पाते थे,
उसके शुद्धाचारों से।
सीमा-रहित अनन्त गगन सा,
विस्तृत उसका प्रेम हुआ;
औरों का कल्याण कार्य ही,
उसका अपना क्षेम हुआ।
हिंसक पशु भी उसे देख कर,
पैरों में पड़ जाते थे;
मुँह में हाथ दाब कर धीरे,
मीठी थपकी पाते थे!

* यह पुण्य-स्थान वर्तमान ज़िला बिजनौर में मालिनी नदी के किनारे लेखक के ग्राम से कुछ दूर है। वर्त्तमान समय में वहाँ वन के स्थान में नगर बसा है, मालिनी नदी भी कुछ सूख-सी गई है। —लेखक

गुरुजन की सेवा-शुश्रूषा,
भक्ति सहित वह करती थी ;
शीतल-जल-युत कन्द-मूल-फल,
उनके सम्मुख धरती थी ।
आते थे जो अतिथि वहाँ वह,
अतिशय आदर पाते थे ;
मुक्त कण्ठ से उसके सद्गुण,
गाते गाते जाते थे ।

—मैथिलीशरण गुप्त

एक बार कण्व मुनि अपना आश्रम शकुन्तला को सौंप कर तीर्थ-यात्रा को गए। इसी समय एक दिन राजा दुष्यन्त आखेट करते-करते आश्रम के समीप आ निकले। उन्होंने शकुन्तला को आश्रम के वृक्ष सींचते देखा और देखते ही उसके रूप-लावण्य पर आसक्त हो गए और छिप कर उसे देखने लगे। उसी समय एक भ्रमर ने शकुन्तला को तङ्ग करना आरम्भ किया। राजा लक्ष्मणसिंह ने उस समय का वर्णन आसक्त दुष्यन्त से इस प्रकार कराया है—

उतही ते मोरति दृगन आवत अलि जिहिं ओर।
सीखति है मुग्धा मनो भय मिस भृकुटि मरोर॥

जिस ओर भ्रमर जाता है, उधर से शकुन्तला आँखें मोड़ लेती है। मानो डरने के बहाने मुग्धा नायिका भौं मरोड़ना सीखती हो।

शकुन्तला ने सखियों से रक्षा चाही, किन्तु वे हँसी से बोलीं कि रक्षा का भार राजा पर है, वही तुझे भ्रमर से बचाएगा। ऐसा सुन्दर अवसर पाकर दुष्यन्त तुरन्त प्रकट हुआ। सखियाँ उसे देख कर चौंक पड़ीं, और शकुन्तला उस पर मुग्ध हो गई। परन्तु कार्यवश इस भेंट का शीघ्र ही अन्त हो गया।

शकुन्तला और दुष्यन्त दोनों ही एक-दूसरे से मिलने के लिए व्याकुल हो गए। दुष्यन्त ने इसके लिए राजमाता का, हस्तिनापुर वापस आने का आदेश टाल दिया। अपने बदले अपने सहचर माढव्य को भेज दिया और स्वयं शकुन्तला से मिलने की आशा में आश्रम के निकट डेरे डाल कर पड़ गया। यहाँ तक कि शकुन्तला के विरह में दुष्यन्त दुबला हो गया, जिससे शरीर के आभूषण ढीले पड़ गए। आभूषणों में जड़े हुए रत्नों की आभा शोक के आँसुओं से फीकी पड़ गई—

निशि-निशि आँसू ताप के, परत भुजा पै आय।
मानिक या भुजबन्द के, फीके भए बनाय॥
बार-बार ऊँचे करूँ, खिसलि-खिसलि यह जात।
मुरवी हू की गूथि पै, नेक नहीं ठैरात॥

—राजा लक्ष्मणसिंह

इसी प्रकार, दुष्यन्त के विरह में शकुन्तला की भी बुरी दशा थी। वह भी आहार, निद्रा भूल कर दिन-रात दुष्यन्त की ही चिन्ता में निमग्न रहने लगी। दोनों सखियों ने जब शकुन्तला की यह दशा देखी तो रोगोपचार के लिए उसे एक कुञ्ज में ले गईं। वहाँ यह निश्चय हुआ कि दुष्यन्त को प्रेम-पत्र द्वारा निमन्त्रण दिया जाए। शकुन्तला को यह सङ्कोच था कि कहीं दुष्यन्त उसके प्रेम का अनादर न करे। परन्तु सखियों के अनुरोध से उसने कमल के कोमल पत्तों पर नखों से लिखा—

प्रियवर, मैं तव हृदय की, नहीं जानती बात।
सन्तापित करता मुझे, कुसमायुध दिन-रात॥

—मैथिलीशरण गुप्त

अर्थात्—"मैं तुम्हारे हृदय की तो नहीं जानती, किन्तु मुझे कामदेव दिन-रात तपाता है। देखिए, कुमुदिनी चन्द्रमा को चाहती है, किन्तु उसे चन्द्रमा के मन के भावों का ज्ञान नहीं होता।"

दुष्यन्त भी शकुन्तला से मिलने की आशा में कुञ्ज-कुञ्ज फिरा करता था। जिस समय यह पत्र लिखा जा रहा था, उस समय वह उसी कुञ्ज के निकट आ पहुँचा। पत्र सुन कर वह तुरन्त प्रकट होकर बोला—

केवल तोहि तपावही, मदन अहो सुकुमारि।
भस्म करत पै मो हियो, तू चित देखि विचार॥

—राजा लक्ष्मणसिंह

अर्थात्—"प्रिये तेरे हृदय को तो काम केवल तपाता ही है, परन्तु मेरे हृदय को तो जला कर राख किए डालता है। तेरे लिए मेरा प्रेम, मेरे लिए तेरे प्रेम से कहीं अधिक है।"

अकस्मात् दुष्यन्त को वहाँ आया देख, सब बड़ी प्रसन्न हुईं; किन्तु यह मिलन अधिक समय तक न रह सका! क्योंकि कुछ देर बाद ही वृद्धा तपस्विनी गौतमी

शकुन्तला के शरीर का वृत्तान्त पूछने के लिए कुञ्ज में आ पहुँची। फलतः दुष्यन्त एक वृक्ष के पीछे छिप गए। गौतमी शकुन्तला और उसकी दोनों सखियों को उस कुञ्ज से अन्यत्र लिवा ले गई।

समय मिलने पर शकुन्तला और दुष्यन्त का गन्धर्व रीति से विवाह हो गया और शकुन्तला गर्भवती हुई। शीघ्र ही दुष्यन्त को राज-काज के लिए अपनी राजधानी जाना पड़ा। शकुन्तला ने विह्वल होकर फिर मिलने की अवधि पूछी। दुष्यन्त ने अपनी नामाङ्कित अँगूठी देकर कहा—

प्रति दिन तू मेरा एक-एक नामाक्षर—
गिनती रहना हे प्रिये ! सुनिश्चय रख कर।
जब तक सब अक्षर धन्य गणय हों तेरे—
लेने आवेंगे तुझे योग्य जन मेरे॥

—मैथिलीशरण गुप्त

दुष्यन्त के चले जाने पर विचार-मग्न शकुन्तला चित्र-लिखित सी बैठी थी। इतने में भ्रमण करते हुए दुर्वासा ऋषि कण्वाश्रम में आ निकले। वे शकुन्तला के निकट गए, किन्तु उसके विचारों की लड़ी न टूटी। क्रोधी दुर्वासा ने इसे अपना निरादर समझा और तुरन्त अभिशाप दिया कि जिसकी चिन्ता में मग्न होकर तूने मेरा अतिथि-सत्कार नहीं किया, वह तुझे पूर्व-जन्म की कथा की भाँति एकदम भूल जायगा ! शकुन्तला निश्चल रही; उसने यह अभिशाप भी न सुना। किन्तु निकट ही उसकी सखियाँ थीं, जो तत्काल दौड़ी हुई वहाँ आईं। वे पैरों पर पड़ कर दुर्वासा से क्षमा माँगने लगीं। क्रोध शान्त होने पर दुर्वासा बोले—"मेरे शाप का असत्य होना असम्भव है, किन्तु उसका फल कम हो सकता है। अच्छा 'आवेगी सुधि मुद्रिका निरख के उद्भ्रान्त दुष्यन्त को'।" इतना कह कर वे वहाँ से चले गए।

कुछ दिनों के बाद जब महात्मा कण्व यात्रा से लौटे, तो यज्ञ के समय आकाशवाणी द्वारा उन्हें मालूम हो गया कि दुष्यन्त के साथ शकुन्तला का गन्धर्व-विवाह हो गया है और शकुन्तला गर्भवती भी है। सुयोग्य वर मिलने से कण्व को हर्ष हुआ। उन्होंने उसी समय शकुन्तला की विदा की तैयारी आरम्भ कर दी। उसे हस्तिनापुर पहुँचाने के लिए ऋषि के दो शिष्य शारङ्गव और शारद्वत मिश्र तथा गौतमी नियुक्त किए गए। तपस्विनियों ने शकुन्तला के लिए स्नान-उबटन और शृङ्गार आदि का प्रबन्ध किया। वनदेवियों ने वृक्षों के शाखारूपी हाथों द्वारा माङ्गलिक स्वेत साड़ी, आभूषण, महावर के लिए लाख आदि दिए।

शकुन्तला की विदाई सभी को दुःख देने वाली थी। वन के जीव, वन-वृक्ष, सखियाँ और आश्रम के अन्यान्य निवासी सभी उसके वियोग में व्याकुल थे।

शकुन्तला ने वृक्षों से विदा माँगी। क्योंकि वृक्ष वनवासियों के बन्धु हैं। उन्होंने कोकिलों द्वारा विदा दी—

आज्ञा देत पयान की, ये तरुवर बनराय।
वनवासिन के बन्धु जन, कोयल शब्द सुनाय॥

—राजा लक्ष्मणसिंह

वनदेवियों ने वर दिया—तुम्हारा मार्ग सुखद हो, शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु बहे, स्थान-स्थान पर जलाशय मिलें, शीतल छाया रहे और पृथ्वी कमल के समान कोमल हो जाए।

शकुन्तला के बिछुड़ने से—

त्यागी थे मुनि कण्व, उन्हें भी करुणा आई,
होती है बस सुता धरोहर, वस्तु पराई।

—मैथिलीशरण गुप्त

इधर-उधर टहल कर कण्व ऋषि कहने लगे—

आज शकुन्तला जायगी, मन मेरो अकुलात।
रुकि आँसू गदगद गिरा, आँखिन कछु न लखात॥
मोसे बनवासीन को, इतौ सतावत मोह।
तौ गेही कैसे सहे, दुहिता प्रथम बिछोह॥

—राजा लक्ष्मणसिंह

चलने के समय कण्व ने शकुन्तला को शुभाशीर्वाद के साथ कुल-बधुओं योग्य निम्न उपदेश दिया—

गुरुओं की सम्मान-सहित शुश्रूषा करियो,
सखी-भाव से हृदय सदा सौतों का हरियो।
करे यदपि अपमान मान मत कीजो पति से,
हूजो अति सन्तुष्ट स्वल्प भी उसकी रति से॥
परिजन को अनुकूल आचरण से सुख दीजो,
कभी भूल कर बड़े भाग्य पर गर्व न कीजो।

गुरुजन की सेवा-शुश्रूषा,
भक्ति सहित वह करती थी ;
शीतल-जल-युत कन्द-मूल-फल,
उनके सम्मुख धरती थी।
आते थे जो अतिथि वहाँ वह,
अतिशय आदर पाते थे ;
मुक्त कण्ठ से उसके सद्गुण,
गाते गाते जाते थे।

—मैथिलीशरण गुप्त

एक बार कण्व मुनि अपना आश्रम शकुन्तला को सौंप कर तीर्थ-यात्रा को गए। इसी समय एक दिन राजा दुष्यन्त आखेट करते-करते आश्रम के समीप आ निकले। उन्होंने शकुन्तला को आश्रम के वृक्ष सींचते देखा और देखते ही उसके रूप-लावण्य पर आसक्त हो गए और छिप कर उसे देखने लगे। उसी समय एक भ्रमर ने शकुन्तला को तङ्ग करना आरम्भ किया। राजा लक्ष्मणसिंह ने उस समय का वर्णन आसक्त दुष्यन्त से इस प्रकार कराया है—

उतही ते मोरति दृगन आवत अलि जिहिं ओर।
सीखति है मुग्धा मनो भय मिस भृकुटि मरोर॥

जिस ओर भ्रमर जाता है, उधर से शकुन्तला आँखें मोड़ लेती है। मानो डरने के बहाने मुग्धा नायिका भौं मरोड़ना सीखती हो।

शकुन्तला ने सखियों से रक्षा चाही, किन्तु वे हँसी से बोलीं कि रक्षा का भार राजा पर है, वही तुझे भ्रमर से बचाएगा। ऐसा सुन्दर अवसर पाकर दुष्यन्त तुरन्त प्रकट हुआ। सखियाँ उसे देख कर चौंक पड़ीं, और शकुन्तला उस पर मुग्ध हो गई। परन्तु कार्यवश इस भेंट का शीघ्र ही अन्त हो गया।

शकुन्तला और दुष्यन्त दोनों ही एक-दूसरे से मिलने के लिए व्याकुल हो गए। दुष्यन्त ने इसके लिए राजमाता का, हस्तिनापुर वापस आने का आदेश टाल दिया। अपने बदले अपने सहचर माढव्य को भेज दिया और स्वयं शकुन्तला से मिलने की आशा में आश्रम के निकट डेरे डाल कर पड़ गया। यहाँ तक कि शकुन्तला के विरह में दुष्यन्त दुबला हो गया, जिससे शरीर के आभूषण ढीले पड़ गए। आभूषणों में जड़े हुए रत्नों की आभा शोक के आँसुओं से फीकी पड़ गई—

निशि-निशि आँसू ताप के, परत भुजा पै आय।
मानिक या भुजबन्द के, फीके भए बनाय॥
बार-बार ऊँचे करूँ, खिसलि-खिसलि यह जात।
मुरवी हू की गूथि पै, नेक नहीं ठैरात॥

—राजा लक्ष्मणसिंह

इसी प्रकार, दुष्यन्त के विरह में शकुन्तला की भी बुरी दशा थी। वह भी आहार, निद्रा भूल कर दिन-रात दुष्यन्त की ही चिन्ता में निमग्न रहने लगी। दोनों सखियों ने जब शकुन्तला की यह दशा देखी तो रोगोपचार के लिए उसे एक कुञ्ज में ले गईं। वहाँ यह निश्चय हुआ कि दुष्यन्त को प्रेम-पत्र द्वारा निमन्त्रण दिया जाए। शकुन्तला को यह सङ्कोच था कि कहीं दुष्यन्त उसके प्रेम का अनादर न करे। परन्तु सखियों के अनुरोध से उसने कमल के कोमल पत्तों पर नखों से लिखा—

प्रियवर, मैं तव हृदय की, नहीं जानती बात।
सन्तापित करता मुझे, कुसमायुध दिन-रात॥

—मैथिलीशरण गुप्त

अर्थात्—"मैं तुम्हारे हृदय की तो नहीं जानती, किन्तु मुझे कामदेव दिन-रात तपाता है। देखिए, कुमुदिनी चन्द्रमा को चाहती है, किन्तु उसे चन्द्रमा के मन के भावों का ज्ञान नहीं होता।"

दुष्यन्त भी शकुन्तला से मिलने की आशा में कुञ्ज-कुञ्ज फिरा करता था। जिस समय यह पत्र लिखा जा रहा था, उस समय वह उसी कुञ्ज के निकट आ पहुँचा। पत्र सुन कर वह तुरन्त प्रकट होकर बोला—

केवल तोहि तपावही, मदन अहो सुकुमारि।
भस्म करत पै मो हियो, तू चित देखि विचार॥

—राजा लक्ष्मणसिंह

अर्थात्—"प्रिये तेरे हृदय को तो काम केवल तपाता ही है, परन्तु मेरे हृदय को तो जला कर राख किए डालता है। तेरे लिए मेरा प्रेम, मेरे लिए तेरे प्रेम से कहीं अधिक है।"

अकस्मात् दुष्यन्त को वहाँ आया देख, सब बड़ी प्रसन्न हुईं; किन्तु यह मिलन अधिक समय तक न रह सका! क्योंकि कुछ देर बाद ही वृद्धा तपस्विनी गौतमी

शकुन्तला के शरीर का वृत्तान्त पूछने के लिए कुञ्ज में आ पहुँची। फलतः दुष्यन्त एक वृक्ष के पीछे छिप गए। गौतमी शकुन्तला और उसकी दोनों सखियों को उस कुञ्ज से अन्यत्र लिवा ले गई।

समय मिलने पर शकुन्तला और दुष्यन्त का गन्धर्व रीति से विवाह हो गया और शकुन्तला गर्भवती हुई। शीघ्र ही दुष्यन्त को राज-काज के लिए अपनी राजधानी जाना पड़ा। शकुन्तला ने विह्वल होकर फिर मिलने की अवधि पूछी। दुष्यन्त ने अपनी नामाङ्कित अँगूठी देकर कहा—

प्रति दिन तू मेरा एक-एक नामाक्षर—
गिनती रहना हे प्रिये! सुनिश्चय रख कर।
जब तक सब अक्षर धन्य गण्य हों तेरे—
लेने आवेंगे तुझे योग्य जन मेरे॥

—मैथिलीशरण गुप्त

दुष्यन्त के चले जाने पर विचार-मग्ना शकुन्तला चित्र-लिखित सी बैठी थी। इतने में भ्रमण करते हुए दुर्वासा ऋषि कण्वाश्रम में आ निकले। वे शकुन्तला के निकट गए, किन्तु उसके विचारों की लड़ी न टूटी। क्रोधी दुर्वासा ने इसे अपना निरादर समझा और तुरन्त अभिशाप दिया कि जिसकी चिन्ता में मग्न होकर तूने मेरा अतिथि-सत्कार नहीं किया, वह तुझे पूर्व-जन्म की कथा की भाँति एकदम भूल जायगा! शकुन्तला निश्चल रही; उसने यह अभिशाप भी न सुना। किन्तु निकट ही उसकी सखियाँ थीं, जो तत्काल दौड़ी हुई वहाँ आईं। वे पैरों पर पड़ कर दुर्वासा से क्षमा माँगने लगीं। क्रोध शान्त होने पर दुर्वासा बोले—"मेरे शाप का असत्य होना असम्भव है, किन्तु उसका फल कम हो सकता है। अच्छा 'आवेगी सुधि मुद्रिका निरख के उद्भ्रान्त दुष्यन्त को'।" इतना कह कर वे वहाँ से चले गए।

कुछ दिनों के बाद जब महात्मा कण्व यात्रा से लौटे, तो यज्ञ के समय आकाशवाणी द्वारा उन्हें मालूम हो गया कि दुष्यन्त के साथ शकुन्तला का गन्धर्व-विवाह हो गया है और शकुन्तला गर्भवती भी है। सुयोग्य वर मिलने से कण्व को हर्ष हुआ। उन्होंने उसी समय शकुन्तला की विदा की तैयारी आरम्भ कर दी। उसे हस्तिनापुर पहुँचाने के लिए ऋषि के दो शिष्य शारङ्गरव और शारद्वत मिश्र तथा गौतमी नियुक्त किए गए। तपस्विनियों ने शकुन्तला के लिए स्नान-उबटन और श्रृङ्गार आदि का प्रबन्ध किया। वनदेवियों ने वृक्षों के शाखारूपी हाथों द्वारा माङ्गलिक श्वेत साड़ी, आभूषण, महावर के लिए लाख आदि दिए।

शकुन्तला की विदाई सभी को दुःख देने वाली थी। वन के जीव, वन-वृक्ष, सखियाँ और आश्रम के अन्यान्य निवासी सभी उसके वियोग में व्याकुल थे।

शकुन्तला ने वृक्षों से विदा माँगी। क्योंकि वृक्ष वनवासियों के बन्धु हैं। उन्होंने कोकिलों द्वारा विदा दी—

आज्ञा देत पयान की, ये तरुवर बनराय।
वनवासिन के बन्धु जन, कोयल शब्द सुनाय॥

—राजा लक्ष्मणसिंह

वनदेवियों ने वर दिया—तुम्हारा मार्ग सुखद हो, शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु बहे, स्थान-स्थान पर जलाशय मिलें, शीतल छाया रहे और पृथ्वी कमल के समान कोमल हो जाए।

शकुन्तला के बिछुड़ने से—

त्यागी थे मुनि कण्व, उन्हें भी करुणा आई,
होती है बस सुता धरोहर, वस्तु पराई।

—मैथिलीशरण गुप्त

इधर-उधर टहल कर कण्व ऋषि कहने लगे—

आज शकुन्तला जायगी, मन मेरो अकुलात।
रुकि आँसू गदगद गिरा, आँखिन कछु न लखात॥
मोसे बनवासीन को, इतौ सतावत मोह।
तौ गेही कैसे सहे, दुहिता प्रथम बिछोह॥

—राजा लक्ष्मणसिंह

चलने के समय कण्व ने शकुन्तला को शुभाशीर्वाद के साथ कुल-वधुओं योग्य निम्न उपदेश दिया—

गुरुओं की सम्मान-सहित शुश्रूषा करियो,
सखी-भाव से हृदय सदा सौतों का हरियो।
करे यदपि अपमान मान मत कीजो पति से,
हूजो अति सन्तुष्ट स्वल्प भी उसकी रति से॥
परिजन को अनुकूल आचरण से सुख दीजो,
कभी भूल कर बड़े भाग्य पर गर्व न कीजो।

इसी चाल से स्त्रियाँ सुगृहिणी-पद पाती हैं,
उलटी चल कर वंश-व्याधियाँ कहलाती हैं ॥
मेरा यह उपदेश कभी तू भूल न जाना,
शील-सुधा से सींच जगत को स्वर्ग बनाना ॥

—मैथिलीशरण गुप्त

यही भाव राजा लक्ष्मणसिंह जी के अनुवाद में है—

शुश्रूषा गुरुजन की कीजो ।
सखी-भाव सौतिन में लीजो ॥
भरता यदपि करे अपमाना ।
कुपित होइ गहियो जनि माना ॥
मिठ भाषिनि दाखिन सङ्ग रहियो ।
बड़े भागि पै गर्व न लहियो ॥
या विधि तिय गेहिनि पद पावें ।
उलटी चल कुल-दोष कहावें ॥

शकुन्तला भी कण्व-विछोह से व्याकुल हो उठी । इसलिए कण्व ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—जब तू रानी होकर गृह-कार्यों से अवकाश न पाएगी और शर्मिष्ठा के समान पुत्रवती होगी, तो मुझसे अलग होने का दुःख भूल जायगी ।

शकुन्तला ने आतुर होकर पूछा—अब मेरा इस आश्रम में फिर कब आना होगा ?

कण्व बोले—तेरा पति अपने पुत्र को राज्य सौंप कर तेरे साथ फिर इस आश्रम में आएगा ।

गौतमी, दोनों मिश्र तथा शकुन्तला को पास के जलाशय तक पहुँचा कर आश्रमवासी लौट आए । उसी समय दुष्यन्त की नामाङ्कित अँगूठी सखियों ने शकुन्तला की उँगली में पहिना दी और कह दिया कि इसे दुष्यन्त को दिखा दीजियो । परन्तु मार्ग में शकुन्तला ने एक जगह तीर्थाचमन किया और उसी समय वह अँगूठी उसकी अँगुली से निकल कर जल में गिर गई । परन्तु उसे इसकी ज़रा भी ख़बर न हुई ।

अस्तु, शकुन्तला को लिए हुए गौतमी तथा दोनों मिश्र राजा दुष्यन्त के दरबार में पहुँचे । राजा ने ऋषियों का यथोचित स्वागत किया । परन्तु दुर्वासा के शापवश शकुन्तला को बिलकुल न पहचाना । इसलिए उसे स्वीकार करने से साफ़ इन्कार कर दिया । अन्त में ऋषि-मण्डली शकुन्तला को छोड़ कर तथा यह कह कर चली आई कि—

अतः बन्धुजन यही चाहते—लोकाचार समझ कर—
पति के स्नेह बिना भी प्रमदा रहे प्रिय के घर ।

—मैथिलीशरण गुप्त

निराश्रया शकुन्तला अपने भाग्य की बुराई करती हुई जा रही थी । मार्ग में से एक अप्सरा शकुन्तला को उड़ा कर आकाश में ले गई । यह समाचार पाकर दुष्यन्त को आश्चर्य हुआ ।

× × ×

जलाशय में गिरी हुई राजा दुष्यन्त नामाङ्कित मुद्रिका को एक मछली निगल गई । उसे किसी धीवर ने जाल में फँसाया और जब उसे चीरा तो पेट से एक क़ीमती अँगूठी निकली । अन्त में वह राजा दुष्यन्त के सामने लाई गई । बस, उसे देखते ही दुर्वासा का शाप दूर हो गया । राजा को शकुन्तला की याद आ गई और वह उसके विरह से व्याकुल हो उठा और अपनी राजधानी में यह घोषणा कर दी कि :—

पापियों को छोड़ कर सुन लें सभी,
जिस स्वजन का हो वियोग जिसे कभी ।
वह प्रजा दुष्यन्त को जाने वही,
और उसके स्थान में माने वही ॥

राजा दुष्यन्त देवराज इन्द्र का सखा था । इन्द्र ने अपने सारथी को भेज कर राजा को अपने पास बुलाया । क्योंकि कालनेमि वंश के दानवों के एक प्रबल दल को परास्त करने के लिए इन्द्र को राजा की सहायता की आवश्यकता थी । अस्तु, दानवों को जीत कर राजा दुष्यन्त इन्द्र के रथ पर चढ़े हुए अपनी राजधानी की ओर लौट रहे थे । कश्यप ऋषि का आश्रम निकट ही था, इसलिए ऋषि के दर्शनार्थ थोड़ी देर के लिए उतर पड़े । आश्रम के मार्ग में दुष्यन्त ने एक बालक को देखा । वह खेलने के लिए एक सिंहनी के बच्चे को, जिसने आधा ही दूध पिया था, घसीट रहा था ।

आधो पीयो मातुथन, जो शावक मृगराज ।
ताहि घसीटत केश गहि, यह शिशु खेलन काज ॥

—राजा लक्ष्मणसिंह

एक तपस्विनी बालक को बरजती थी, किन्तु वह मानता न था और सिंहनी के बच्चे का मुँह खोल कर उसके दाँत देखने का यत्न कर रहा था। दुष्यन्त को ऐसा पराक्रमी बालक देख कर अचरज हुआ। बालक में चक्रवर्तियों के लक्षण थे। अन्त में दुष्यन्त की आज्ञा मान कर बालक ने सिंहनी के बच्चे को छोड़ दिया। पता लगाने पर कुछ देर में दुष्यन्त को मालूम हुआ कि बालक पुरुवंशी है और उसकी माता का नाम शकुन्तला है। तपस्विनियों ने पिता का नाम बताने से इन्कार कर दिया। क्योंकि अकारण ही पत्नि का त्याग करने वाले का नाम कौन ले? बालक के जात-कर्म के समय कश्यप ऋषि ने एक 'अपराजित' नाम का गण्डा उसके गले में डाल दिया था और जिसे अगर बालक के माता-पिता के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति बालक को उठा ले, तो वह गण्डा साँप बन कर उसे डस लेता था। परन्तु राजा दुष्यन्त पर गण्डे का कुछ प्रभाव न पड़ा। यह समाचार सुन कर शकुन्तला वहाँ आई। दोनों ने एक-दूसरे को पहचाना। दुष्यन्त ने शकुन्तला के चरणों में गिर कर क्षमा-याचना की। इसी समय कश्यप ऋषि ने भी आकर दर्शन दिए और दुर्वासा के शाप का भेद खोल दिया। इससे शकुन्तला का मनोमालिन्य मिटा, वह दुष्यन्त की निर्दोषिता जान गई। दुष्यन्त को भी, यह जान कर कि विस्मृति का कारण शाप था, शान्ति मिली। अपने ऊपर का क्रोध और ग्लानि दूर हुई। राजा धर्मपत्नी-परित्याग के अपवाद से बच गया। कश्यप ऋषि ने शकुन्तला, उसके लड़के सर्वदमन और दुष्यन्त को आशीर्वाद सहित विदा किया।

कियो पशू सब बस यहाँ 'सर्वदमन' भौ नाम।
प्रजा भरण कर होयगो, फेरि 'भरत' अभिराम॥

—सुमतिप्रसाद जैन, एम० ए०, एल-एल० बी०

* * *

बाल-शिक्षा

संसार में प्रत्येक कार्य शक्ति द्वारा हुआ करता है। परन्तु वह शक्ति कहाँ से प्राप्त होती है, अथवा उसका उत्स किधर है? इस प्रश्न का उत्तर तो विचारशील व्यक्ति ही दे सकते हैं। पर हम देखते हैं कि हर एक शक्ति का स्रोत कहीं न कहीं हमारे शरीर में ही होता है। उस शारीरिक शक्ति को ही उचित रीति से उद्बुद्ध करना प्रत्येक मनुष्य का कार्य है। जितने भी राष्ट्रीय विद्यालय हैं, उनका भी यही कार्य होना चाहिए। पाशविक शक्ति और मनुष्य-शक्ति में केवल इतना ही अन्तर है कि पहिली अशिक्षित शक्ति है और दूसरी शिक्षित। मनुष्य यद्यपि पशु से कम शक्तिशाली होता है, परन्तु पशुबल के ऊपर मनुष्य का अधिकार इसीलिए होता है कि वह शिक्षित शक्ति द्वारा नाना प्रकार के दाँव-पेच से पशुबल के ऊपर विजयी हो जाता है। शक्ति को शिक्षित करने का दूसरा कारण यह भी है कि उसका उपयोग अर्थशास्त्र के उच्च सिद्धान्तानुसार हो। प्रायः देखा जाता है कि जङ्गल में रहने वाली जातियाँ अशिक्षित शक्ति के ही कारण अभी तक कष्टसाध्य जीवन व्यतीत कर रही हैं। उनको जलाने के लिए लकड़ी भी अधिक परिश्रम से प्राप्त होती है। वे बेचारे सारे दिन मिहनत कर अपना जीवन उतनी सुगमता से नहीं व्यतीत कर सकते, जितनी सुगमता से हम २-४ घण्टे मिहनत करके शिक्षित शक्ति द्वारा पेट भरने से कहीं अधिक पैदा कर लेते हैं। यह शिक्षित शक्ति का ही फल है कि एक भारतवासी की आमदनी ४६) प्रति व्यक्ति है, और एक अमेरिकन और अङ्गरेज़ की आमदनी ३००) और ४००) के लगभग है।

अपनी इतने साल की उन्नति का जब हम हिसाब लगाते हैं, तो पता लगता है कि हमारी आमदनी अभी अन्य देशों के मुक़ाबिले बहुत ही कम है। इतने शिक्षित समय में भी हमारे यहाँ प्रति वर्ष नवयुवक विभिन्न विषयों से अपनी-अपनी शक्तियों को शिक्षित कर निकलते हैं। परन्तु फिर भी देश की दरिद्रता बढ़ती ही चली जाती है। बेचारे नवयुवक विश्वविद्यालय की ऊँची-ऊँची डिगरियाँ प्राप्त कर हाथ पर हाथ रक्खे बैठे रहते हैं। न तो इस दुर्दशा की तरफ़ राष्ट्र ही ध्यान देता है, और न माता-पिता ही ध्यान देते हैं। जब हम इस विषय पर अधिक ध्यान देते हैं, तब पता चलता है कि हमारी शिक्षा-प्रणाली किसी स्थान पर अवश्य अपूर्ण है। वह स्थान विशेषतः हमारी बाल्यावस्था ही है। उस अवस्था में अपने बच्चों को किस तरह से शिक्षित

करना चाहिए, यह गम्भीर प्रश्न है। और इसी पर कुछ प्रकाश डालना इस लेख का उद्देश्य है।

महाभारत में एक स्थल पर लिखा है—"नास्ति माताः समः गुरू।" अर्थात् माता के समान कोई गुरू नहीं है, इसलिए हमको यह विवेचन करना चाहिए कि शिक्षा का भार हमारे माता-पिताओं के ऊपर कितना अधिक है। यह निःसन्देह सत्य है कि बालक का सारा शरीर एक बहुत सूक्ष्म माँ और बाप के भावरूप का परिणाम है, अर्थात् उसका बहुत सा भावी चरित्र माता और पिता के दर्शन करने के पहिले निर्माण हो जाता है और भविष्य के बहुत से कार्य इसी के अनुसार हुआ करते हैं। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि हम सन्तान की अभिलाषा के पहिले अपना चरित्र-गठन उचित रीति से कर लें।

बच्चे का बहुत सा कार्य उसकी स्वाभाविक वृत्तियों द्वारा हुआ करता है और इन वृत्तियों की रचना अधिकांश परम्परागत होती चली आ रही है। यह स्वाभाविक वृत्तियाँ मुख्यतः अनुकूल (Homogeneous), प्रतिकूल (Heterogeneous) हुआ करती हैं। स्पष्टतया बहुत से बच्चे सीधे स्वभाव के हुआ करते हैं और बहुत से उलटे स्वभाव के। यद्यपि मनोविज्ञान कहता है कि उलटे स्वभाव वाले बच्चे ही विशेषतः उन्नतिशील और तेजस्वी होते हैं। जो माँ-बाप आन्तरिक शक्तियों से अपरिचित हैं, वे ही ऐसे बच्चों से घबरा जाते हैं, और उनको दण्ड इत्यादि देते हैं। परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि कितने ही अंशों में बच्चों की वृत्तियाँ हमारे ज्ञान से अधिक विश्वासपात्र होती हैं, इसलिए हमको बच्चों की वृत्तियों के ऊपर अधिक ध्यान देना चाहिए। इसका पाठक यह मतलब न लगा लें कि बच्चे के कार्य में कोई हस्तक्षेप ही न किया जाय। जिस प्रकार बाग़ के वृक्ष बिना माली के कहीं टेढ़े और कहीं जङ्गली पौधे अच्छे पौधों को दबा लेते हैं, अगर माली होता है तो वह काट-छाँट कर उपयोगी पौधों को ही समृद्धिशाली बनाने की चेष्टा करता है, ठीक इसी प्रकार माता-पिताओं को भी बच्चे की उन्हीं वृत्तियों को सुधारना चाहिए, जिनसे हानि होने की सम्भावना हो और जो वृत्तियाँ अच्छी हों, उनको बढ़ने के लिए उत्तेजित करते रहना चाहिए। साथ ही साथ यह भी ध्यान रहना चाहिए कि बच्चे में हम और अच्छे-अच्छे गुणों का समावेश किस प्रकार कर सकते हैं।

इस स्थल पर हमें स्मरण रखना चाहिए कि हमको ज्ञानक्षेत्र में अपने बच्चों को उसी स्थान से शिक्षा शुरू करनी है, जिस स्थान पर हमारे पूर्वजों ने उसे छोड़ा है। इसी लक्ष्य को सामने रखते हुए हम शिक्षा के आदर्श को पूर्णतया समझ सकते हैं। शिक्षा के आदर्श का सबसे बड़ा मूल्य यही है कि हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ अनेकानेक प्राकृतिक पदार्थों का आस्वादन कर सकें और उनके अन्दर जाकर उनकी सत्ता का प्रदर्शन कर सकें। इस सिद्धान्त का साक्षात्कार हमको वर्तमान युग के चमत्कार से मालूम पड़ सकता है। जिस प्रकार विद्युत्-शक्ति के चमत्कार से कुछ व्यक्ति अपरिचित थे और उससे अपना कार्य लेना नहीं जानते थे। आज वही शक्ति हमको पानी से प्राप्त होती है और सैकड़ों नगर उससे देदीप्यमान होते हैं। पानी से विद्युत्-शक्ति को उपलब्ध करना हमारी ज्ञानेन्द्रियों का ही कार्य है। अस्तु, अब हमको यह अन्वेषण करना चाहिए कि हमारे बच्चों की ज्ञानेन्द्रियाँ कैसे प्रबल हो सकती हैं। बच्चा हर दशा में बहुत ही निर्बल होता है, वह किसी पदार्थ को स्पष्ट रूप से ४-६ सेकेण्ड से अधिक नहीं देख सकता। उसकी रसना इतनी कमज़ोर होती है कि वह बहुत से पदार्थों का आस्वादन नहीं कर सकती। उसकी श्रोतेन्द्रियाँ कदापि अच्छे और बुरे स्वर के अन्तर को स्पष्टतया पहचान नहीं सकतीं। उसकी नाक सुगन्ध और दुर्गन्ध को नहीं पहचान सकती। परन्तु वे अपना बहुत सा कार्य स्पर्श-शक्ति द्वारा ही कर लेते हैं। इसका साक्षात् प्रमाण यही है कि वह हर एक वस्तु को अपने हाथ से स्पर्श कर सन्तुष्ट हो जाते हैं। इसलिए हमको चाहिए कि बच्चे की स्पर्श-शक्ति को पहले समृद्धिशाली होने दें। बच्चे का ज्ञान साधारण से विविध की तरफ़ चलता है। वह हमारी तरह एक वस्तु के भिन्न-भिन्न भागों का ज्ञान एकाएक नहीं प्राप्त कर सकता। उदाहरणार्थ हम तस्वीर के हरएक भाव को आसानी से देख सकते हैं। परन्तु बच्चा ऐसा नहीं कर सकता। वह तस्वीर के मनोरञ्जक भाव को थोड़े समय के लिए देख सकता है, पर उसके कोई ज्ञानरूप चेतन नहीं हो सकते। यह दशा छः-सात वर्ष की अवस्था तक रहती है।

माता-पिता को चाहिए कि जहाँ तक हो सके, बच्चे की प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय को पृथक्-पृथक् ढङ्ग से शिक्षित करें। और वह शिक्षा भी इतनी मनोरञ्जक हो कि बच्चे को उससे कभी घृणा उत्पन्न न हो जाय। जैसे, बच्चे को दृष्टि-शिक्षा देनी है, तो उनको चाहिए कि विविध रङ्गों से बच्चे को परिचय करावें और वे रङ्ग भी किसी स्थान पर गहरे और किसी स्थान पर हलके हों। अगर सुविधा हो तो बच्चे से स्वयं काग़ज़ पर हलके और गहरे रङ्ग के दृश्य खिंचवाने चाहिए। लेकिन यह कार्य छोटा बच्चा कदापि नहीं कर सकता। इसके लिए बच्चे की अवस्था ४-५ साल की अवश्य होनी चाहिए और यह कार्य भी बच्चे के खेल-स्वरूप होना चाहिए। इसी प्रकार बच्चे की जिस तरफ़ रुचि हो, उसी कार्य का विधान करना चाहिए। बच्चे का मनोरञ्जन अधिक से अधिक हर समय होना चाहिए। अगर हमको स्वर-परिचय कराना है, तो हमको चाहिए कि स्वर को कभी धीमा और कभी ऊँचा करें। बहुत अच्छा हो कि हम बच्चे को भिन्न-भिन्न पशु-पक्षियों की बोलियों से परिचित करावें। स्वर-शिक्षा के लिए अधिकतर सङ्गीत-कला का स्वर-भेद ही उचित समझा गया है। इसी प्रकार हम नाक को भी नाना प्रकार की चीज़ों को सुँघा कर उनके स्वभाव से परिचित करा सकते हैं। यद्यपि बच्चा हरएक पदार्थ के अन्तर को स्पष्टतया दूसरों पर प्रगट नहीं कर सकता, परन्तु यह अन्तर किसी न किसी दशा में अर्द्धचेतन मस्तिष्क (Sub-conscious mind) के ऊपर अङ्कित अवश्य हो जाता है। साथ ही साथ मस्तिष्क में ज्ञानकूप (Neurones) बन जाते हैं और जब भविष्य में उन्हीं ज्ञानकूपों से मिलता-जुलता पदार्थ दृष्टिगोचर होता है, उस समय पुराने ज्ञानकूपों में और नए ज्ञानकूपों में सहयोग हो जाता है और वह सहयोग इतना बलवान हो जाता है कि बच्चे को उस पदार्थ के पूर्ण स्वरूप का आभास हो जाता है। इस तरह बच्चे के ज्ञानकूप ६ साल तक अधिक से अधिक बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए। परन्तु यह प्रयत्न उसी समय सफल हो सकता है, जबकि हम बच्चे को नित्य-प्रति नए-नए पदार्थों से परिचित करावें। बच्चा कभी इस तरफ़ अधिक मिहनत नहीं कर सकता। क्योंकि उसके ज्ञानकूपों की झिल्लियाँ (Tissues) एक घण्टे के अन्दर ही कार्य करने में बहुत पतली हो जाती हैं और बच्चे को थकावट होने लगती है। इसलिए पतली झिल्लियों को फिर स्वस्थ होने के लिए हमको उन्हें आराम देना चाहिए। यह आराम या तो निद्रा से या विषय-परिवर्तन से मिल सकता है। विषय-परिवर्तन से मेरा मतलब किसी अन्य पदार्थ की तरफ़ या किसी अन्य विषय की तरफ़ बच्चे को लगा देना है, जिससे पुराने विषय के ज्ञानकूपों की झिल्लियों को स्वस्थ होने का अवकाश मिल जाय। ज्ञानकूपों की झिल्लियों के बनने की पूर्ण व्याख्या स्थानाभाव के कारण हम इस लेख में नहीं कर सकते।

जैसा कि ऊपर सङ्केत किया गया है, बच्चे का खेलना-कूदना उतना ही स्वाभाविक है, जितना कि उसके जीवन के लिए खाना। प्रकृति देवी ने बाल्यावस्था खेलने-कूदने ही के लिए बनाई है। जो बच्चे कम खेलते-कूदते हैं, वे या तो रोगी हैं, या उनके शारीरिक अवयवों में किसी बात की बड़ी भारी कमी है। जो बच्चे नीरोग होते हैं, वे अधिक से अधिक खेलना पसन्द करते हैं। खेलने-कूदने का एक बड़ा भारी कारण यह भी है कि बच्चा नाना प्रकार की हरकतों द्वारा अपने शारीरिक अवयवों को हृष्ट-पुष्ट और सुडौल बनाता है। अमेरिका, जर्मनी और फ़्रान्स आदि पाश्चात्य देशों में डॉक्टरी परीक्षा करने के बाद, ७-८ साल के बच्चे को शिक्षित करने के लिए ज़्यादा ज़ोर दिया जा रहा है और यह शिक्षा भी प्रेममूर्ति स्त्री द्वारा ही देने का प्रयत्न हो रहा है। इस विषय में फ़्रान्स का तत्ववेत्ता रूसो बहुत ही आगे बढ़ कर लिखता है कि बच्चे का शिक्षा-काल कम से कम १२ वर्ष की अवस्था के बाद ही शुरू होना चाहिए। लेकिन इस देश में स्वार्थपरता ने हम लोगों को इतना जकड़ लिया है कि शिक्षा के बहाने कभी-कभी तो बच्चे का सर्वस्व हरण कर लिया जाता है। उसको ५-६ वर्ष के अन्दर ही शिक्षा के कोल्हू का बैल बन जाना पड़ता है। उसको शिक्षालय के कड़े से कड़े नियमों को ६-७ साल की अवस्था में ही पालन करना पड़ता है, जब कि उसको अधिक से अधिक स्वतन्त्रता देकर प्रकृति से क्रीड़ा करने का समय होता। पाठकों को स्मरण रखना चाहिए कि ६-७ साल के बच्चे को २-३ घण्टे तक पढ़ना ही पर्याप्त है, और ये २-३ घण्टे की शिक्षा भी स्कूलों की अपेक्षा प्रकृति की गोद में देना

ही अच्छा है। इसका जीता-जागता उदाहरण बोलपुर का शान्ति-निकेतन पाठकों के सामने मौजूद है।

बच्चों को अनेक प्रकार के गुणों से विभूषित करना शिक्षा के आदर्श के अन्तर्गत ही आता है और जीवन में सफलता गुणों से ही मिलती है। यह गुण बच्चा मुख्यतः दूसरों के अनुकरण से सीख सकता है। अनुकरण शिक्षा के सम्बन्ध में भी बहुत उपयोगी होता है। मनुष्य जो कुछ भी करता है, वह अपनी आदत के ही द्वारा करता है। एक पाश्चात्य तत्ववेत्ता यों लिखता है कि मनुष्य के ६० प्रतिशत कार्य आदतों द्वारा ही पूरे होते हैं (90 per cent of our activities are the outcome of our habits) और यह बुरी-भली आदतें मुख्यतः हमारे पूर्वजों द्वारा मिलती हैं। इसलिए केवल इतना ही विवेचन करना शेष है कि हम बच्चों को अच्छे गुणों और अच्छी आदतों से किस तरह सम्पन्न कर सकते हैं? बच्चों में मुख्यतः निम्न-लिखित प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं—(१) डरने, भागने और छिपने की, (२) उत्सुकता, (३) घृणा, (४) हठ, (५) स्वावलम्बन, (६) छोटापन, (७) सामाजिकता, (८) दया, (९) अधिकार, (१०) निर्माण। यह प्रवृत्तियाँ स्पर्श-मण्डल के ऊपर अधिक निर्भर रहती हैं और उपर्युक्त अनुकूल और प्रतिकूल विभाग वाले बच्चे इन्हीं प्रवृत्तियों और स्पर्श-मण्डल के अनुसार अपना शेष जीवन व्यतीत करते हैं। उपर्युक्त कुछ प्रवृत्तियाँ अवश्य ही कुछ ऐसी हैं, जिनका दुरुपयोग बुरे स्पर्श-मण्डल या कुसङ्गत में अवश्य हो सकता है। जैसे हम घृणा की प्रवृत्ति को लेते हैं; जिस बच्चे में अधिकार प्राप्त करने की प्रवृत्ति तीव्र हो, अगर वह बच्चा लालची और घमण्डी प्रवृत्ति वाले व्यक्ति की सङ्गत करेगा तो बहुत सम्भव है कि उसकी यह अच्छी प्रवृत्ति भी कुमार्ग में पदार्पण करे और बच्चे का भी लालची और घमण्डी होना स्वाभाविक है। अगर हम चाहते हैं कि इस प्रवृत्ति वाला बच्चा अच्छे मार्ग को ग्रहण करे, तो हमें चाहिए कि बच्चे की सङ्गत उन्हीं व्यक्तियों के साथ करावें, जो अधिकार पाए हुए भी विनीत हों, और सञ्चय भी उस चीज़ का करें, जैसे विद्या और अच्छे गुण, न कि धन का। क्योंकि धन, विद्या और अच्छे गुण का परिणाम है। अगर किसी बच्चे में डरने और भागने की प्रवृत्ति है, तो ऐसी स्थिति में हमको चाहिए कि बच्चे को ऐसे स्पर्श-मण्डल में रक्खें या ऐसे व्यक्तियों का साथ करावें, जो बुरे कर्मों से डरते हों। यह 'Law of substitution' के अनुसार होता है।

आदतें उपरोक्त सङ्केतानुसार स्पर्श-मण्डल और प्रवृत्तियों का प्रतिफल हैं। एक कार्य को बार-बार करने का नाम ही आदत है और गुण उस भाव को कह सकते हैं, जिसके द्वारा हमारा कल्याण हो सके। नवीन गुण और आदतें अपनाना यद्यपि उतना कठिन नहीं है, जितना कि हम लोगों ने समझ रक्खा है। लेकिन कुछ कठिन अवश्य है। आदतें और गुण अनुकरण द्वारा सुगमता से आ जाते हैं, और अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता। इसलिए माता और पिताओं का यह मुख्य कर्तव्य है कि उनको सन्तान की अभिलाषा करने के पहले अच्छे गुण और अच्छी आदतों से सम्पन्न होना चाहिए। क्योंकि माता और पिता ही बच्चे के लिए सब से उत्तम स्पर्श-मण्डल हो सकते हैं। दूसरे उचित स्पर्श-मण्डल को ढूँढ़ना और प्राप्त करना कठिन है। बच्चा सब से पहले माँ-बाप का अनुकरण करता है। हमको यह भी अवश्य मानना पड़ेगा कि बच्चा समझने पर अपनी बहुत सी आदतें सुधार सकता है। लेकिन यह बहुत कम देखा जाता है। इससे यही उत्तम हो सकता है कि कठिनता को प्रारम्भिक अवस्था में ही जीत लेना चाहिए और अच्छी आदतों का समावेश उसकी कच्ची अवस्था में ही कर देना चाहिए।

जिन माता और पिताओं में कुछ अच्छे गुण और अच्छी आदतों का प्रभाव हो, उनको चाहिए कि वे बच्चों को शाम को सोने से पहले अच्छी आदतों और गुणों वाले व्यक्तियों की कथा सुनाया करें। कारण यह है कि हमारा अर्द्धचेतन मस्तिष्क (Sub-conscious mind) उस समय अधिक शान्त अवस्था में होता है। उस समय उसमें ग्रहण-शक्ति (Receptive power) अधिक होती है। विशेषतः जो कुछ अर्ध-चेतन मस्तिष्क को इस समय प्राप्त होता है, उसको वह तुरन्त ही इच्छाशक्ति (Volitional or conational power) को अर्पण कर देता है। जिससे कि विचार शीघ्रता से कार्यरूप में परिणत हो जाते हैं। हम प्रायः देखते हैं कि जो कुछ हम सोते समय निर्णय करते हैं,

प्रातःकाल पहला हमारा वही कार्य होता है। अच्छी आदतों और गुणों का सन्तान के अन्दर समावेश करने का सबसे अच्छा यही समय है।

—रामसहाय शर्मा

* * *

आध्यात्मिक शिक्षा

भारत में आध्यात्मिक शिक्षा की परम आवश्यकता है। क्योंकि आत्मोन्नति के लिए धार्मिक विषयों का यह एक प्रधान अङ्ग है। अध्यात्म-प्रेमी पाठकों की जानकारी के लिए इस विषय सम्बन्धी आवश्यक एवं उपयोगी अथच विशेष रूप से ध्यान देने योग्य बातें इस लेख में बतलाई जाती हैं।

इस लेख की बातें विशेष रूप से ध्यान देने योग्य क्यों हैं? इसका कारण यह है कि एक तो इनकी सहायता से यह बात स्पष्टतया समझ में आ जायगी कि म की एकाग्रता के द्वारा विचार को मार्ग दिखलाने और इसे बलिष्ठ बनाने से इसकी गूढ़ शक्ति कितनी महान हो जाती है। दूसरे इनसे यह भी विदित हो जायगा कि भौतिक और अलौकिक नियमों में आपस का क्या सम्पर्क है। दीप्तबल (Radiant Energy) और विचार-क्षेत्रों के कार्यों का उल्लेख करने के पहले यह समझ लेना अच्छा होगा कि दीप्तबल किसे कहते हैं और क्षेत्र क्या चीज़ है?

पहले गति से भिन्न बल का अर्थ समझिए। बल एक परिभाषा है। इसका प्रयोग किसी ऐसे पिण्ड (या वस्तु) के साथ होता है, जो चलते-चलते जब किसी दूसरी वस्तु के साथ टकराता है, तब वह भी फिरने लगती है। पहली वस्तु की दूसरी को हिला देने की शक्ति बल कहलाती है। इसका अन्दाज़ा उस गति से होता है, जोकि यह पैदा कर सकता है।

दीप्तबल एक परिभाषा है, जिसका प्रयोग किसी ऐसे पिण्ड या वस्तु के साथ होता है, जिसमें इस प्रकार का बल हो, जोकि वायु-मण्डल, या उस वस्तु को चारों ओर से घेरने वाले माध्यम को दिया जा सके। जिस वेग से यह बल दूसरे स्थान में भेजा जाता है, उसका सारा दारोमदार माध्यम की बल को भेजने की क्षमता पर है; स्वयं बल पर कुछ नहीं।

इस प्रकार विचार के परमाणुओं और आकाश-रूपी माध्यम में पूर्ण सहानुभूति है। फलतः विचार की लहरों को ले जाने के लिए आकाश एक आदर्श माध्यम है।

स्मरण रहे कि कोई वस्तु या पिण्ड जो दीप्तबल बखेर रहा है, प्रकृति के दूसरे पिण्डों में भी गति पैदा कर सकता है। विचार के थरथराने वाले धर्म के विषय में हमारे कथन का यह एक आवश्यक भाग है। ऐसी तरङ्ग-गतियों को आकाश सीधी रेखाओं में भेजता है। इनकी यात्रा की दूरी की तो कोई सीमा नहीं। वे अनियत हद तक चल सकती हैं। परन्तु जिस बात पर पाठकों को मैं ले जाना चाहता हूँ और जिसकी मैं व्याख्या करना चाहता हूँ, उसे वैज्ञानिक परिभाषा में क्षेत्र कहते हैं। क्षेत्र के विस्तार का सारा दारोमदार पिण्ड की शक्ति या बल पर है। इसमें जितनी अधिक शक्ति होगी, उतने ही अधिक विस्तृत क्षेत्र में इसका बल बँटा होगा। सोचिए कि संसार के बड़े-बड़े मस्तिष्क किस प्रकार अपने प्रभाव का अनुभव कराते हैं। या विचारिए कि सूर्य का बल उस विस्तृत शून्यमय स्थान में, जोकि उसके और हमारी पृथ्वी के बीच है, किस प्रकार फैल रहा है।

विचार-बल के लिए सब से उत्तम दृष्टान्त सूर्य-रूपी चुम्बक का ही सम्भव है। इस दृष्टान्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि उत्पादक चुम्बक (Inducing magnet) या बिजली की धारा के बिना चुम्बक-क्षेत्र हो नहीं सकता। प्रत्येक चुम्बक के दो "ध्रुव" होते हैं। यह परिभाषा चुम्बक के दोनों सिरों के लिए प्रयुक्त होती है। इनमें से एक सिरा 'धन-ध्रुव' और दूसरा 'ऋण-ध्रुव' कहलाता है। पाठकों में से कई एक चुम्बक-शास्त्र से अनभिज्ञ होंगे। इसलिए इसकी थोड़ी सी व्याख्या कर देने से उन्हें विषय को समझने में सहायता मिल जायगी। साधारण चुम्बक या चुम्बक-पत्थर एशिया माईनर के अन्तर्गत मगनेशिया और भू-मण्डल के दूसरे भागों में पाया जाता है। इसमें इसपात और लोहे के टुकड़ों को अपने पास खींचने या आकृष्ट करने और सदा उत्तर तथा दक्षिण दिशाओं को दिखलाते रहने का गुण है। इसपात के टुकड़ों को चुम्बक पत्थर

पर रगड़ने से वे कृत्रिम चुम्बक बन जाते हैं। इससे लोहा चुम्बक पत्थर के गुण ग्रहण कर लेता है। १६०० ईसवी में डॉक्टर गिलबर्ट ने मालूम किया था कि लम्बे आकार वाले चुम्बक में आकर्षण-शक्ति उसके दोनों सिरों पर वास करती प्रतीत होती है। इन दोनों प्रदेशों का नाम 'ध्रुव' रक्खा गया था। इसलिए चुम्बक का ध्रुव, पृथ्वी के ध्रुवों के सदृश, चुम्बक के बिन्दुओं में से एक बिन्दु होता है। इनमें से एक ध्रुव तो उत्तर की ओर, दूसरा दक्षिण की ओर रहता है। प्रायः ध्रुव सदा सिरों पर होते हैं। चुम्बक का वह भाग, जो दोनों ध्रुवों के बीच होता है, अपेक्षाकृत कम आकर्षण-शक्ति रखता है। यह उतने ज़ोर से आकर्षित नहीं करता और दोनों ध्रुवों के मध्य में तो आकर्षण बिलकुल ही नहीं होता।

चुम्बक-शास्त्र का पहला सिद्धान्त यह है कि "एक जैसे चुम्बकीय ध्रुव एक-दूसरे से परे भागने पर भिन्न-भिन्न चुम्बकीय ध्रुव एक दूसरे को आकृष्ट करते हैं।" अतः उत्तर की ओर रहने वाले दो ध्रुव प्रबल रूप से एक-दूसरे से परे भागेंगे। परन्तु ऐसे दो ध्रुव, जिनमें से एक उत्तर की ओर रहता है और दूसरा दक्षिण की ओर अर्थात् एक धन-ध्रुव और दूसरा ऋण-ध्रुव, एक दूसरे को आकृष्ट करेंगे।

पृथ्वी स्वयं एक चुम्बक है। इसमें दो ध्रुव हैं। एक उत्तर की ओर रहता है और दूसरा दक्षिण की ओर। मनुष्य भी एक चुम्बक है। वास्तव में प्रकृति के सब भिन्न-भिन्न रूप और नाना आकार चुम्बकों के बने हुए हैं। प्रत्येक परमाणु और अणु में उत्तर और दक्षिण ध्रुव विद्यमान हैं।

मानव-मस्तिष्क के भी धनात्मक और ऋणात्मक रूप हैं। इसका धन-ध्रुव बड़े मस्तिष्क में और ऋण-ध्रुव छोटे मस्तिष्क में है।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि दीप्तबल को बाँटने के लिए किसी वस्तु या प्रकृति के पिण्ड का होना परमावश्यक है। जब तक क्षेत्र बनाने के लिए—यह क्षेत्र चाहे चुम्बक का हो, चाहे बिजली का; चाहे रासायनिक हो, चाहे यान्त्रिक ; और चाहे यह विचार-क्षेत्र हो—कोई वस्तु या शक्ति न हो, तब तक कोई क्षेत्र नहीं हो सकता।

विचार-क्षेत्र की दशा में बल का सोता और क्षेत्र को उत्पन्न करने वाली शक्ति या प्रकृति का पिण्ड मस्तिष्क होता है। निर्बल और असङ्गठित मस्तिष्क में यह क्षेत्र दुर्बल रहता है और इसका प्रभाव भी बहुत परिमित स्थान तक ही होता है। परन्तु जितनी ज़्यादा आकर्षण-शक्ति होगी, जितना अधिक बलवान और सङ्गठित मस्तिष्क होगा, उतनी ही अधिक सीमा तक इसकी किरणें बिखरेंगी, उतना ही अधिक विस्तृत इसका क्षेत्र होगा और उतने ही अधिक चिरस्थायी इसके परिणाम होंगे। विचार-शक्ति या मन जब किसी मनुष्य में उत्पन्न हो, तब उसे समझ लेना चाहिए कि वह कोई बड़ा आदमी बनने वाला है। उसका यह बड़प्पन उसके परिश्रम और उसकी शासक-बुद्धि के अनुरूप होगा।

इस प्रकार के श्रेष्ठ पुरुषों में ईसा, बुद्ध, शेक्सपीयर, बोडीशिया आदि महात्माओं के नाम हैं, जिनमें गुण तो भिन्न-भिन्न थे, पर उनमें प्रत्येक में युग-युगान्तर तक बना रहने वाला बल पैदा करने के लिए यथेष्ट शक्ति थी।

जब मनः संयोग (टेलीपेथी) या चिकित्सा के उद्देश्य से दो मस्तिष्क इकट्ठे कार्य कर रहे हों, तब उनमें से एक का धनात्मक और दूसरे का ऋणात्मक होना आवश्यक है। परस्पर की सहानुभूति के द्वारा वे आकाश पर दबाव डालते हैं और विचार-क्षेत्र इस प्रकार कार्य करते हैं कि वे उपर्युक्त अवस्थाओं के नीचे दब कर इकट्ठे और संयुक्त हो जाते हैं। उनके ऐसा करने से आकर्षण पैदा होता है। वे अपने बल का परिवर्त्तन या बदला कर लेते हैं। यह बदला सदा ज़्यादा वेग वाले से कम वेग वाले की ओर होता है। इस प्रकार एक मनुष्य सञ्चारक (Transmitter) का और दूसरा ग्राहक (Reciever) का काम करता है। इनमें से एक धनात्मक है और दूसरा ऋणात्मक, नहीं तो आकृष्ट करने के स्थान में वे एक-दूसरे से दूर भागें, क्योंकि सदृश चुम्बकीय ध्रुव एक-दूसरे से दूर भागेंगे, पर एक धन-ध्रुव और दूसरा ऋण-ध्रुव एक-दूसरे को आकर्षित करेंगे। इसी प्रकार सदृश मन एक दूसरे से दूर भागते और असदृश मन एक-दूसरे को आकर्षित करते हैं। दूसरे

पर रगड़ने से वे कृत्रिम चुम्बक बन जाते हैं। इससे लोहा चुम्बक पत्थर के गुण ग्रहण कर लेता है। १६०० ईसवी में डॉक्टर गिलबर्ट ने मालूम किया था कि लम्बे आकार वाले चुम्बक में आकर्षण-शक्ति उसके दोनों सिरों पर वास करती प्रतीत होती है। इन दोनों प्रदेशों का नाम 'ध्रुव' रक्खा गया था। इसलिए चुम्बक का ध्रुव, पृथ्वी के ध्रुवों के सदृश, चुम्बक के बिन्दुओं में से एक बिन्दु होता है। इनमें से एक ध्रुव तो उत्तर की ओर, दूसरा दक्षिण की ओर रहता है। प्रायः ध्रुव सदा सिरों पर होते हैं। चुम्बक का वह भाग, जो दोनों ध्रुवों के बीच होता है, अपेक्षाकृत कम आकर्षण-शक्ति रखता है। यह उतने ज़ोर से आकर्षित नहीं करता और दोनों ध्रुवों के मध्य में तो आकर्षण बिलकुल ही नहीं होता।

चुम्बक-शास्त्र का पहला सिद्धान्त यह है कि "एक जैसे चुम्बकीय ध्रुव एक-दूसरे से परे भागने पर भिन्न-भिन्न चुम्बकीय ध्रुव एक दूसरे को आकृष्ट करते हैं।" अतः उत्तर की ओर रहने वाले दो ध्रुव प्रबल रूप से एक-दूसरे से परे भागेंगे। परन्तु ऐसे दो ध्रुव, जिनमें से एक उत्तर की ओर रहता है और दूसरा दक्षिण की ओर अर्थात् एक धन-ध्रुव और दूसरा ऋण-ध्रुव, एक दूसरे को आकृष्ट करेंगे।

पृथ्वी स्वयं एक चुम्बक है। इसमें दो ध्रुव हैं। एक उत्तर की ओर रहता है और दूसरा दक्षिण की ओर। मनुष्य भी एक चुम्बक है। वास्तव में प्रकृति के सब भिन्न-भिन्न रूप और नाना आकार चुम्बकों के बने हुए हैं। प्रत्येक परमाणु और अणु में उत्तर और दक्षिण ध्रुव विद्यमान हैं।

मानव-मस्तिष्क के भी धनात्मक और ऋणात्मक रूप हैं। इसका धन-ध्रुव बड़े मस्तिष्क में और ऋण-ध्रुव छोटे मस्तिष्क में है।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि दीप्तबल को बाँटने के लिए किसी वस्तु या प्रकृति के पिण्ड का होना परमावश्यक है। जब तक क्षेत्र बनाने के लिए—यह क्षेत्र चाहे चुम्बक का हो, चाहे बिजली का; चाहे रासायनिक हो, चाहे यान्त्रिक; और चाहे यह विचार-क्षेत्र हो—कोई वस्तु या शक्ति न हो, तब तक कोई क्षेत्र नहीं हो सकता।

विचार-क्षेत्र की दशा में बल का सोता और क्षेत्र को उत्पन्न करने वाली शक्ति या प्रकृति का पिण्ड मस्तिष्क होता है। निर्बल और असङ्गठित मस्तिष्क में यह क्षेत्र दुर्बल रहता है और इसका प्रभाव भी बहुत परिमित स्थान तक ही होता है। परन्तु जितनी ज़्यादा आकर्षण-शक्ति होगी, जितना अधिक बलवान और सङ्गठित मस्तिष्क होगा, उतनी ही अधिक सीमा तक इसकी किरणें बिखरेंगी, उतना ही अधिक विस्तृत इसका क्षेत्र होगा और उतने ही अधिक चिरस्थायी इसके परिणाम होंगे। विचार-शक्ति या मन जब किसी मनुष्य में उत्पन्न हो, तब उसे समझ लेना चाहिए कि वह कोई बड़ा आदमी बनने वाला है। उसका यह बड़प्पन उसके परिश्रम और उसकी शासक-बुद्धि के अनुरूप होगा।

इस प्रकार के श्रेष्ठ पुरुषों में ईसा, बुद्ध, शेक्सपीयर, बोडीशिया आदि महात्माओं के नाम हैं, जिनमें गुण तो भिन्न-भिन्न थे, पर उनमें प्रत्येक में युग-युगान्तर तक बना रहने वाला बल पैदा करने के लिए यथेष्ट शक्ति थी।

जब मनः संयोग (टेलीपेथी) या चिकित्सा के उद्देश्य से दो मस्तिष्क इकट्ठे कार्य कर रहे हों, तब उनमें से एक का धनात्मक और दूसरे का ऋणात्मक होना आवश्यक है। परस्पर की सहानुभूति के द्वारा वे आकाश पर दबाव डालते हैं और विचार-क्षेत्र इस प्रकार कार्य करते हैं कि वे उपर्युक्त अवस्थाओं के नीचे दब कर इकट्ठे और संयुक्त हो जाते हैं। उनके ऐसा करने से आकर्षण पैदा होता है। वे अपने बल का परिवर्त्तन या बदला कर लेते हैं। यह बदला सदा ज़्यादा वेग वाले से कम वेग वाले की ओर होता है। इस प्रकार एक मनुष्य सञ्चारक (Transmitter) का और दूसरा ग्राहक (Reciever) का काम करता है। इनमें से एक धनात्मक है और दूसरा ऋणात्मक, नहीं तो आकृष्ट करने के स्थान में वे एक-दूसरे से दूर भागें, क्योंकि सदृश चुम्बकीय ध्रुव एक-दूसरे से दूर भागेंगे, पर एक धन-ध्रुव और दूसरा ऋण-ध्रुव एक-दूसरे को आकर्षित करेंगे। इसी प्रकार सदृश मन एक दूसरे से दूर भागते और असदृश मन एक-दूसरे को आकर्षित करते हैं। दूसरे

शब्दों में यों कहिए कि बलवान मन निर्बल मन को और निर्बल मन बलवान मन को आकृष्ट करता है।

—ज्ञानमल्ल हंसराज जैन

❀ ❀ ❀

भारतीय संस्कृति और उसकी महत्ता

किसी पदार्थ की वास्तविक स्थिति अथवा सत्ता तभी तक मानी जाती है, जब तक उस वस्तु का वास्तविक गुण उसमें स्थित रहता है। जैसे अग्नि का वास्तविक गुण ताप तथा प्रकाश है और यही उसका जीवन है। इसके विनाश होते ही उसकी सत्ता का भी लोप हो जाता है। एक सिंह जो अपनी वीर-वृत्ति परित्याग कर सर्कस के खिलाड़ियों के आतङ्क में आकर भेड़ और बकरियों के साथ खेलने लगता है, वह सिंह नहीं रह जाता; उसकी सिंहवृत्ति अजावृत्ति में परिणत हो जाती है। ठीक यही दशा हमारे वैयक्तिक तथा समष्टिक जीवन की भी है। मनन-शक्ति जिसमें हो, वह मनुष्य और जो इससे हीन हो, वह मनुष्याकार में एक पार्थिव पदार्थ के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। अस्थि, मांस और मज्जा की समष्टि का नाम मनुष्य नहीं, क्योंकि सृष्टि के और भी जन्तु—कुत्ते और गधे आदि भी—इन्हीं के योग से बने हैं। यदि यह कहा जाय कि क्या कुत्ते और गधे उस भगवान की विभूति नहीं हैं? और अगर वही बन कर जीवन व्यतीत कर दिया जाय तो क्या हानि है? इसका उत्तर यही है कि हम किसी भी जीवनावस्था में क्यों न रहें, हमको उस योनि अथवा अवस्था के गुण-विशेष को धारण करना ही पड़ेगा, तभी हम उसकी संज्ञा प्राप्त करने के अधिकारी बन सकेंगे।

उपर्युक्त कथन से यह निष्कर्ष निकला कि प्रत्येक वस्तु की सत्ता उसके गुण-विशेष पर ही निर्भर होती है। इस गुण का ही दूसरा नाम जीवन या सार-तत्त्व है, जो भिन्न-भिन्न वस्तुओं में भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। जल में इसी का नाम शैत्य तथा द्रवता, अग्नि में ताप तथा प्रकाश, वायु में चाञ्चल्य, जीवधारियों में अहङ्कार, मनुष्य में विचार तथा आचार और समाज में इसी का नाम संस्कृति है। इन गुणों के विलीन होने से उक्त वस्तुओं की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं रह जाती। या यों कहिए कि गुणों के साथ ही साथ उनका भी पराभव हो जाता है।

इस लम्बी भूमिका का तात्पर्य यह है कि किसी भी समाज अथवा देश की स्थिति अथवा अस्थिति, उत्थान या पतन, उसकी चिर-सञ्चित तथा सुव्यवस्थित संस्कृति पर ही निर्भर होती है। विचारशील जातियाँ अपना सर्वस्व लुटा कर भी अपनी संस्कृति की रक्षा करती हैं। क्योंकि जिस प्रकार प्राण के निकल जाने पर शरीर का कुछ भी मूल्य नहीं रह जाता, उसी प्रकार संस्कृति के मिट जाने पर जाति का भी कुछ मूल्य नहीं रहता।

विश्व के इतिहास में यह बात निर्विवाद है कि आर्य-संस्कृति सर्वोत्कृष्ट रही है। इसका कारण यह है कि आर्य-संस्कृति-निर्माताओं के कल्पना-राज्य में समता का भाव और विषमता का अभाव था। जिस प्रकार सूर्य अपनी रश्मियाँ चर-अचर सब पर अवैषम्य भाव से डालता है, बालक तथा सुकुमार उष्णता से घबरा उठते हैं, परन्तु हृष्ट-पुष्ट मनुष्य निरन्तर अपने कार्य करते रहते हैं, फिर भी सूर्य पर पक्षपात का दोष नहीं लगता है। ठीक यही साम्य-वृत्ति आर्य-नियामकों की थी।

आर्य-संस्कृति में सत्य के लिए प्रियता का परिधान था। नीरस तर्कवाद की विस्तृत मरुभूमि में भक्ति-भाव का शीतल निर्झर प्रवाहित था। भौतिकवाद (Materialism) की धधकती हुई भीषण ज्वाला को शान्त करने के लिए अध्यात्मवाद (Spiritualism) की पुनीत जाह्नवी की उपासना तथा उसमें मज्जन का आदेश दिया और साथ ही साथ कि कहीं उस जाह्नवी के हिमवत सुशीतल जल में सतत स्नान करने के कारण लोग शीताङ्ग होकर अकर्मण्य न बन जायँ, अतएव उष्णाङ्ग बनाने के लिए भौतिकवाद की उपासना का निर्देश किया। अर्थात् इन दोनों विद्याओं को वेद के निम्नलिखित आदेशानुसार समान अधिकार दिए।

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदो अभयँ्सः।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥

अर्थात् जो विद्या (अध्यात्म विद्या) और अविद्या (भौतिक विद्या) दोनों को जानता है, वह अभय है। क्योंकि भौतिक विद्या के बल से इस संसार-सागर को

पार कर जायगा या इहलोक में सुख प्राप्त करेगा और आध्यात्म विद्या से अमृत पद अर्थात् मोक्षपद को प्राप्त कर लेगा या यों कहो कि परलोक बना लेगा। अतः पूर्ण शान्ति प्राप्त करने के लिए दोनों विद्याओं के पढ़ने का आदेश किया।

इस तरह काञ्चनवत् शोधित तथा सुव्यवस्थित पुनीत आर्य-संस्कृति के किन-किन अवयवों का वर्णन कहाँ तक किया जाय? सब एक से एक उत्तम तथा विशद गुण-युक्त हैं। यही संस्कृति हम आर्यों की जान है। यह नहीं तो हम नहीं; यह दृढ़ हम भी सुदृढ़। इसके बदले में चाहे समस्त भूमण्डल का साम्राज्य क्यों न हस्तगत हो जाय, दिक्पालगण चाहे बन्दी बन कर हमारी विशद विरुदावलि के गायक क्यों न बन जायँ; इहलोक से पर-लोक तक की निविड़ तमोराशि को नाश करने वाली चन्द्रोज्वला पुण्य प्रख्याति अप्रयास ही क्यों न मिल जाय; चञ्चला अचला बन कर सर्वदा को क्यों न अङ्क-शायिनी बन जाय तथा हिमालय से भी उच्च परकीय सभ्यता, महार्णव से भी गम्भीर भावुकता हमको क्यों न अपना ले, फिर भी इसका मूल्य हमारी संस्कृति के सामने कुछ भी नहीं है। क्यों? इसलिए कि संस्कृति हमारी जान है और जान का मूल्य भौतिक पदार्थों से कहीं अधिक होता है।

हमारा गौरव तो तब है जब हम आर्य-संस्कृति के अनुगामी होते हुए उक्त सौख्यों का उपभोग करें। अपना रङ्ग दूसरों पर चढ़ा दें, न कि उनके रङ्ग में स्वयं रँग जायँ। पाश्चात्य बन कर श्रेष्ठता प्राप्त की तो क्या महत्व? क्योंकि इस महत्वाकांक्षा की जन्मदात्री हमारी पुरातन संस्कृति फल प्राप्त होने के पूर्व ही विलीन हो गई। अब इस श्रेष्ठता-प्राप्ति का गर्व किस पर किया जाय?

कुछ उदार भाव रखने वाले सज्जनों को उक्त भाव रूढ़िवाद में जकड़े ज्ञात होंगे, परन्तु यदि निष्पक्ष भाव से विचार किया जाय तो वे अत्यन्त विस्तृत तथा उदार सिद्ध होंगे। हमारी वैदिक संस्कृति का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य यही रहा है कि सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करने में सर्वदा उद्यत रहो। गुण जहाँ भी कहीं हों, उनको विश्व-नियन्ता की विभूति समझ कर ग्रहण करो, परन्तु उसमें लिप्त होकर अपने आपको न भुला दो।

नींव जितनी ही गहराई और दृढ़ता से डाली जायगी, मन्दिर उतना ही दृढ़ और चिरस्थायी रहेगा। संसार के विशाल राष्ट्र इसी संस्कृति रूपी नींव पर खड़े होते हैं और उसके निर्बल पड़ जाने से वे ऐसे नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं कि उनके भग्नावशेष भी ढूँढ़े नहीं मिलते हैं। जो जाति अपनी संस्कृति की रक्षा करती है, उसकी रक्षा संस्कृति भी करती है और जो उसकी अवहेलना करती है वह उसके अस्तित्व ही को मिटा देती है। जो राष्ट्र इस तत्व को जानते हैं, वे विपत्ति-घन-मण्डल को दिवाकर की भाँति छिन्न-भिन्न करके संसार को आलोकित कर देते हैं। जो जातियाँ विजेताओं के आतङ्क में आकर उनकी सभ्यता तथा उनके आचार-विचारों को अङ्गीकार कर लेती हैं, उनकी स्वतन्त्र सत्ता का लोप होकर केवल नाम ही नाम रह जाता है। जैसे, रोम और यूनान, जिनकी विश्व-विजयिनी पताका कभी गगन-मण्डल में फहराती थी। परन्तु ज्योंही उन्होंने अपनी संस्कृति के रक्षण में प्रमाद से काम लिया, त्योंही उनका पतन हुआ। जो जाति शत्रुओं से पदाक्रान्त होने पर भी दूरस्थ भविष्य में उत्थान की पतली किरण पर दृष्टि लगाए हुए विजेताओं को अपना सर्वस्व देकर भी स्वसंस्कृति की रक्षा करती है, वह एक न एक दिन अवश्य ही अपने उन्नति-पथ की तमोराशि को विच्छिन्न कर पुनः गौरवमयी हो जाती है।

किन्तु यह समय बड़ा दुर्धर्ष है। परतन्त्रता के आक्रमण अभी तक भूमि, धन आदि बाह्य पदार्थों पर हुए थे। हम उनको अपनी प्रतिभा के बल से हटाते रहे। परन्तु अब की बार उसका आक्रमण बुद्धि पर हुआ है, जिसके कारण से रोम-रोम में उसके कीटाणु प्रविष्ट कर गए हैं। इसका उपचार खद्दर धारणादि बाह्य औषधियों से होना दुस्तर प्रतीत होता है। इसके लिए तो कोई ऐसा विरेचक क्वाथ चाहिए जिससे आन्तरिक स्वच्छता प्राप्त हो और बुद्धि का विकार दूर हो, जिससे हम अपनी संस्कृति की रक्षा कर सकें।

—बाबूलाल प्रेम

❁ ❁ ❁

विश्व-भारती का नारी-विभाग

जिन लोगों ने महर्षि देवेन्द्रनाथ का चरित्र पढ़ा होगा, उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास के इस कथन की यथार्थता का अनुभव अवश्य किया होगा कि 'बाढ़इ पूत पिता के धर्मा'। सचमुच ही विश्वकवि रवीन्द्रनाथ के अनेक गुण आपके पूज्य पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ की देन हैं। स्वयं कवि ने भी इस बात को एकाधिक बार स्वीकार किया है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम भाग में देश में एक विचित्र जड़ता छाई हुई थी। सामाजिक बन्धन इतने कठोर और सुदृढ़ थे कि उनके जाल को तोड़ कर किसी महान आत्मा का विकास असम्भव था। राजा राममोहनराय ने सर्व-प्रथम इस भीषण अवस्था का अनुभव किया था। महर्षि देवेन्द्रनाथ राजा राममोहनराय के दाहिने हाथ थे! उन्होंने भी इसका अनुभव किया और इसके प्रति-कार में राजा राममोहनराय का हाथ बँटाया। उन्हीं महर्षि ने रवीन्द्रनाथ की विशाल आत्मा के भावी विकास का रास्ता भी साफ़ कर दिया था।

उन्हीं महर्षि देवेन्द्रनाथ ने अपने ध्यान और उपासना के लिए कलकत्ते से प्रायः सौ मील की दूरी पर एक शान्तिमय स्थान चुना था, जिसे उन्होंने 'शान्ति-निकेतन' नाम दिया था। यह स्थान आजकल के ई० आई० रेलवे के बोलपुर स्टेशन से क़रीब दो मील दूर है। यह बड़ा ही उजाड़ और जन-शून्य स्थान था। दूर तक केवल मैदान ही मैदान दिखाई पड़ता था, बीच में केवल दो सप्तपर्णी के वृक्ष वर्तमान थे। उन्हीं वृक्षों के नीचे महर्षि के ध्यान की वेदी थी। आज भी, उस स्थान पर उनके दिव्य अनुभव, जो पत्थर पर खुदे हुए हैं, उस पुरानी स्मृति को जगा देते हैं :—

तिनि आमार प्राणेर आराम,
मनेर आनन्द, आत्मार शान्ति।

अर्थात्—"वे हमारे प्राणों के आराम, मन के आनन्द और आत्मा की शान्ति हैं।"

महर्षि के स्वर्गवास के बाद उनके कनिष्ठ पुत्र कविवर रवीन्द्रनाथ ने यहाँ एक विद्यालय की स्थापना की। देश की प्रचलित नवीन शिक्षा-प्रणाली से, जो ज़बर्दस्ती उसके गर्दन पर लाद दी गई थी, असन्तुष्ट होकर ही कवि ने इस विद्यालय का सूत्रपात किया था। यह सन् १९०१ की बात है। उस समय केवल दो विद्यार्थियों को लेकर ही कार्य आरम्भ किया गया था। परन्तु इन तीस वर्षों में उस स्थान की कायापलट हो गई है। जो निर्जन स्थान कभी डाकुओं और ठगों का अड्डा था, वह आज फल-पुष्पों से सुशोभित सुन्दर उपवन बन गया है, देश-देशान्तर के बालक-बालिकाओं के आनन्द-कल्लोल का स्थान है और संसार भर के मनीषियों की तत्त्व चिन्ता का सङ्गम-स्थल हो गया है। वह छोटा सा विद्यालय आज 'विश्व-भारती' के विशाल रूप में परिणत है, एक नया ही संसार वहाँ सृष्ट हो गया है! अन्य विश्वविद्यालयों की तरह वहाँ भव्य-भवन नहीं बने हैं—अध्ययन-अध्यापन का काम उन्मुक्त आकाश के नीचे, खुली हवा, वृक्षों की शीतल छाया में ही हो जाते हैं। परन्तु विद्या के लिए जिस शान्त वातावरण की आवश्यकता है, वह यहाँ पूर्ण मात्रा में वर्तमान है।

विद्यालय की स्थापना के समय कवि ने उसके आदर्श के बारे में कहा था—

"हमारी आदर्श संस्था वृक्षों की छाया में, उन्मुक्त वायु-मण्डल में शहरों से दूर स्थित होगी। जहाँ शिक्षक अध्यापन भी करेंगे और अपना अध्ययन भी जारी रक्खेंगे और विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते हुए एक शान्त और कोलाहल-रहित वातावरण में बढ़ेंगे।"

कवि के इस आदर्श को विश्व-भारती ने सदा ध्यान-पथ में रक्खा है। यहाँ के छात्र और छात्रियाँ जिस शान्त और कोलाहल-रहित वातावरण में प्रकृति के साथ हिल-मिल जाती हैं, वह सचमुच अनुपम है। इस स्थान पर विश्व-भारती के अन्य विभागों की चर्चा न करके हम अपने पाठकों को उसके नारी-विभाग का परिचय कराना चाहते हैं।

क्या बालक और क्या बालिका, विश्व-भारती की शिक्षा का लक्ष्य ही यह है कि उन्हें यह सुयोग दिया जाय कि मानव-प्रकृति के किसी अंश के सङ्कुचित हुए बिना ही स्वतन्त्र रूप से उनका स्वाभाविक और सम्पूर्ण विकास हो। इसीलिए विश्व-भारती के प्रतिष्ठाता स्त्री-शिक्षा के लिए एक ऐसा क्षेत्र प्रस्तुत कर रहे हैं, जहाँ उनकी जिज्ञासा-वृत्ति, उनकी बुद्धि, उनका सौन्दर्य-बोध

और उनकी सेवा-भावना सब ओर से उद्बुद्ध होकर उन्हें अपने आपको प्रकाशित करने में सहायता दे। भारतवर्ष में ऐसी कोई भी संस्था नहीं है, जहाँ स्त्रियों को उतने साधन और सामग्री प्राप्त हों, जितने यहाँ प्राप्त हैं। छोटी उमर से लेकर बड़ी उमर तक की लड़कियों को प्रारम्भिक से लेकर उच्चकोटि तक की शिक्षा का यहाँ बड़ा सुन्दर प्रबन्ध है। शुरू से अन्त तक यहाँ बालक-बालिकाएँ, एक ही वृक्ष की छाया में, एक ही शिक्षक या शिक्षयित्री से विद्याभ्यास करती हैं, एक ही स्थान पर भोजन करती हैं और एक ही उन्मुक्त वायु-मण्डल में साँस लेती हैं। नीचे एक-एक करके सभी विभागों का परिचय दिया जाता है।

१—शिशु-विभाग

शान्ति-निकेतन में लड़कियों के लिए जो छात्रावास है, उसका नाम है 'नारी-भवन'। इसी 'नारी-भवन' के एक ख़ास अंश में एक पृथक् मेट्रन के तत्वावधान में शिशु-विभाग की लड़कियों के रहने का प्रबन्ध है। इस विभाग में ६ से लेकर १२ वर्ष तक की लड़कियाँ ली जाती हैं। यह अवस्था उनके शारीरिक और मानसिक विकास की है, इसीलिए उनके खेल-कूद और तन्दुरुस्ती का बहुत ख़्याल रक्खा जाता है। बँगला, हिन्दी, अङ्गरेज़ी, हिसाब, भूगोल, इतिहास आदि पाठ्य विषयों के अतिरिक्त सङ्गीत, नृत्य, चित्र-विद्या, लकड़ी के काम, मिट्टी की कारीगरी (Clay-modelling) और सिलाई आदि की शिक्षा की अति सुन्दर व्यवस्था है।

२—स्कूल और कॉलेज-विभाग

इन विभागों में कलकत्ता विश्वविद्यालय के मैट्रिक, आई० ए० और बी० ए० परीक्षाओं के लिए छात्रियाँ तैयार की जाती हैं। पर यह बात सम्पूर्णतया उनकी इच्छा पर निर्भर है कि वे उक्त विश्वविद्यालय की परीक्षा की तैयारी करें या न करें। जो परीक्षा की तैयारी न करके किसी विशेष विषय का अनुशीलन स्वतन्त्र रूप से करना चाहें, उनके लिए भी विश्व-भारती की ओर से प्रबन्ध है। पाठ्य विषय के अतिरिक्त, सङ्गीत, चित्र-कला, सिलाई, बुनाई प्रभृत्ति हाथ के कामों में जिनकी अभिरुचि हो, उनके लिए भी हर तरह की सुविधा दी जाती है।

लड़कियों के तत्वावधान के लिए एक महिला वार्डन और एक मेट्रन हैं। पर वे अपनी परिचालना के लिए यथासम्भव अपना प्रबन्ध आप करती हैं। इस प्रकार उन्हें स्वायत्त शासन के प्रति सम्मान और जवाबदेही का अभ्यास डलवाया जाता है। इसके अतिरिक्त रन्धन-शाला में यथायोग्य सहायता देना, बच्चों की देख-भाल और रोगियों की शुश्रूषा प्रभृति कार्य-भार देकर उनकी शिक्षा को पूर्ण करने की चेष्टा की जाती है।

३—कला-भवन

जिन छात्रियों की रुचि केवल सङ्गीत या चित्र-कला की शिक्षा की ओर ही हो, उनके लिए कला-भवन में बड़ा उत्तम प्रबन्ध है। इस विभाग के अध्यक्ष हैं, श्री० नन्दलाल बसु, जो अपनी कला-चातुरी के लिए संसार में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। इस विभाग के छात्र-छात्रियों को, यदि वे चाहें तो, अन्य विषय के अध्ययन की सुविधा भी दी जाती है। इस विभाग के अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का अन्दाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि अब तक इसने यूरोप, अमेरिका और एशिया के अन्य देशों (जापान, चीन, जावा आदि) से छात्र-छात्रियों को आकृष्ट किया है।

४—विद्या-भवन (रिसर्च-डिपार्टमेण्ट)

कला-भवन की भाँति इस विभाग ने भी यथेष्ट अन्तर्राष्ट्रीय महत्व प्राप्त किया है। अब तक अमेरिका, इङ्गलैण्ड, फ़्रान्स, डेनमार्क, स्कैण्डिनेविया, ऑस्ट्रिया, जर्मनी, रूस, चीन, जापान, लङ्का, जावा, मङ्गोलिया, तिब्बत प्रभृत्ति दूर-दूर देशों के विद्वान और छात्र समय-समय पर इसकी ओर आकृष्ट हुए हैं और उनका सहयोग प्राप्त होता रहा है। इस विभाग में उन छात्र और छात्रियों के अध्ययन का प्रबन्ध है, जो किसी ख़ास विषय का अनुसन्धान और अनुशीलन करना चाहते हैं। सम्प्रति इस विभाग में निम्न-लिखित विषयों की गवेषणा का प्रबन्ध है :—

(१) संस्कृत भाषा और साहित्य, (२) पालि भाषा और साहित्य, (३) प्राकृत अपभ्रंश भाषाएँ और उनका साहित्य, (४) बँगला और साहित्य, (५) हिन्दी भाषा और साहित्य, (६) अरबी, उर्दू, फ़ारसी साहित्य, (७) प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति

(८) मध्य युग में भारतीय साधना की धारा (सन्त-साहित्य), (९) दर्शन, (१०) जरथुस्ट्रियन (पारसी) अध्ययन, (११) बाल-मनोविज्ञान (१२), जैन-दर्शन और शास्त्र ।

५—शिल्प विभाग

अर्थकर शिल्प की शिक्षा ग्रहण करने की इच्छुक बालिकाएँ निम्न-लिखित शिल्पों को सीख सकती हैं :—

बुनाई, दस्तकारी, छपाई, सिलाई, जिल्दसाज़ी, लाह के काम, चमड़े के काम, काठ पर खुदाई और बैटिक वर्क ।

६—ग्राम-सङ्गठन और सेवा-विभाग

पश्चिमी देशों में जो स्त्रियाँ समाज-सेवा का व्रत लेना चाहती हैं, उनके लिए उन देशों में शिक्षा का विशेष प्रबन्ध है । हमारे देश की स्त्रियों में सेवा-भावना की नई लहर आई तो है, पर दुर्भाग्यवश यहाँ कोई ऐसी संस्था नहीं है, जहाँ वे समुचित शिक्षा प्राप्त कर सकें । सम्भवतः महाराष्ट्र में ऐसी एक संस्था है । विदेशों में सभी स्त्रियाँ तो जा नहीं सकतीं और जो आ भी सकती हैं, वे भारतीय समस्याओं का कुछ भी ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकतीं । फलतः ऐसी अभिरुचि रखने वाली महिलाओं के लिए विश्व-भारती के अन्तर्गत श्रीनिकेतन में बड़ा ही उत्तम प्रबन्ध है । यहाँ पर देशी और विदेशी विद्वानों की देख-रेख में ग्राम-सङ्गठन और उनके नष्ट स्वास्थ्य के उद्धार की चेष्टा की जा रही है । ग्रामीण स्त्री-पुरुष और बालकों की शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक और आर्थिक अवस्थाओं को लेकर महिलाएं ग्रामीण अवस्था का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं । श्रीनिकेतन की विद्वन्मण्डली की वक्तृता और आलोचना-प्रत्यालोचनाओं में योग देकर वे उक्त विषय का सैद्धान्तिक (थियोरिटिकल) ज्ञान भी प्राप्त कर सकती हैं । इस प्रकार की अभिरुचि रखने वाली महिलाओं के लिए श्रीनिकेतन में एक पृथक् छात्री-निवास बनवाया गया है ।

७—व्यायाम

लड़कियों के शारीरिक व्यायाम का भी प्रबन्ध है । लाठी, छुरा आदि के अतिरिक्त जापानी मल्लविद्या जु-जुत्सू के सिखाने का भी प्रबन्ध है । इसके सिवा फुटबॉल, बॉलीबाल आदि मैदान सम्बन्धी खेलों की व्यवस्था भी है ।

इस प्रकार विश्व-भारती में स्त्री-शिक्षा का सर्वाङ्गीण प्रबन्ध है । इसके प्रतिष्ठाता का ध्यान सदा इस विषय पर रहता है कि पढ़ाई केवल पुस्तकों की ही न हो और न शिक्षा के भार से मानव-प्रकृति की कोमल वृत्तियाँ दबा कर नष्ट कर दी जायँ ।

—हज़ारीप्रसाद द्विवेदी

* * *

वीर्यपात से बचने का उपाय

नैसर्गिक अवस्था के सिवा अन्य समयों में वीर्यपात होना अस्वाभाविक और हानिकारक है । पन्द्रह वर्ष से तीस वर्ष की अवस्था वाले पुरुषों को प्रायः यह बीमारी होती है । यद्यपि यह कोई प्राणघातक रोग नहीं है, तथापि नवयुवक इस रोग से उद्विग्न होकर जीवन से निराश हो जाते हैं । जिससे पूछिए वही इस रोग की एक दवा बता देता है । रोगी तो चिन्तित रहते ही हैं, अतएव जिसने जो कहा उसी को प्रयोग में लाने लगते हैं । अधूरे वैद्यों को हाथ दिखाइए वे चरक और सुश्रुत के लच्छेदार श्लोकों का उच्चारण कर रोगी के सामने बीसों प्रकार के प्रमेह का नक़शा खींच देते हैं । रोगी को विश्वास हो जाता है कि रोग बड़ा भयानक है और उसका मस्तिष्क चक्कर खाने लगता है । अधूरे वैद्य रोग के कारण को न ढूँढ़ कर, भङ्ग-धतूरा-मिश्रित बाजीकरण औषधि दे देते हैं, जिससे रोगी को लाभ के बदले हानि ही होती है । डॉक्टरों के यहाँ तो वीर्यपात कोई रोग ही नहीं है, अतएव वे ब्रोमाइड इत्यादि शान्तिजनक (Sedative) अथवा फ़ॉस्फ़ेट इत्यादि मिश्रित कोई पौष्टिक (Tonic) दवा देकर ऐसे रोगियों से अपना पिण्ड छुड़ा लेते हैं । कोई ख़ून की जाँच कराता है, कोई पेशाब की और कुछ धनिक व्यक्ति कलकत्ता, बम्बई आदि बड़े शहरों में चिकित्सा के लिए चले जाते हैं । परन्तु अन्त में, अधिकांश रोगी चिकित्सा के सब द्वारों को खटखटा कर, हतोत्साह होकर घर बैठे रहते हैं और कुछ दिनों में बिना चिकित्सा के ही

८

विस्मयजनक लाभ अनुभव करते हैं। कुछ लोगों को पेशाब के पहले या पीछे कुछ उजला सा पदार्थ निकलता है, जिसे देख कर वे अत्यन्त चिन्तित हो जाते हैं। यह उजला पदार्थ या तो 'यूरिक एसिड' (Uric Acid) रहता है या फ़ौस्फ़ेट। इसके लिए विशेष चिन्ता की आवश्यकता नहीं है। कुछ लोग सूज़ाक के पीब को भी वीर्य ही समझते हैं।

वीर्य बनने का स्थान और उसके बाहर निकलने के पथ

वीर्य अण्डकोष के दोनों गाँठों (Glands) में बनता है और वहाँ से वीर्यवाहिनी नली (Ductus deferens) के द्वारा, पेट में (Abdomen) होते हुए, वीर्यस्थली (Seminal Vesicle) की नली से संयुक्त होकर, मूत्र-नली (Vrethra) में चला जाता है। प्रत्येक गाँठ के लिए विभिन्न नलियाँ हैं। वीर्य बन कर वीर्यस्थली में जमा रहता है और काम पड़ने पर बाहर निकलता है। वह न तो समूचे शरीर में बनता है, न समूचे शरीर में रहता ही है।

रोग के कारण

(१) क़ब्ज़ियत—वीर्यपात का क़ब्ज़ियत से घनिष्ठ सम्बन्ध है। क़ब्ज़ियत होने पर अवश्य ही वीर्यपात होता है। क्योंकि क़ब्ज़ियत होने से पुरीष वीर्यस्थली के पीछे, अँतड़ी से निचले हिस्से (Rectum) में जमा हो जाता है। पुरीष के जमा हो जाने से वीर्यस्थली पर दबाव पड़ता है, और दबाव पड़ने से, वीर्य उससे बाहर निकल पड़ता है। इसके सिवा पुरीष इकट्ठा होने से, जननेन्द्रियों की नसें (Lumber centre) विक्षुब्ध हो जाती हैं, फलतः वीर्यपात हो जाता है।

(२) भोजन सम्बन्धी दुर्व्यवहार—(क) लाल मिर्च और खटाई आदि चटपटे पदार्थों का अधिक खाना, (ख) मिठाई, खोआ, खीर, रबड़ी इत्यादि गुरु पाक पदार्थों का अत्यधिक खाना, (ग) मांस, मछली और अण्डे का अत्यधिक भोजन, ऐसे पदार्थों के भोजन से क़ब्ज़ियत और जननेन्द्रियों में उत्तेजना होती है, (घ) मिल के आटे और मैदे की बनी रोटी और पूरी का खाना, इससे भी क़ब्ज़ियत होती है, (ङ) भोजन में हरे पदार्थ की कमी। हरे पदार्थ क़ब्ज़ियत को दूर करते हैं।

(३) बुरी आदतें—(क) अत्यधिक स्त्री-संयोग। स्त्री-संयोग पुरुषों की नैसर्गिक प्रवृत्ति है, किन्तु इस प्रवृत्ति का लोग दुरुपयोग करते हैं। स्त्री-संयोग का मुख्य अभिप्राय सन्तान-जनन है। इस विषय में हम लोगों को प्रकृति से शिक्षा लेनी चाहिए। स्त्रियाँ एक महीने में एक बार रजस्वला होती हैं। रजस्वला होना, गर्भाशय को वीर्यवपन के लिए तैयार करना है। इसलिए महीने में एक बार स्त्री-संयोग करना प्रकृति के अनुकूल प्रतीत होता है। पशु-पक्षी भी गर्भ-धारण के ही लिए संयोग करते हैं। किन्तु हम जितने ही सभ्य और शिक्षित होते जाते हैं, उतने ही काम-लिप्सा की तृप्ति के लिए अनेकों उपाय के आविष्कार करते हैं। यही कारण है कि हम लोग स्वास्थ्य के सब नियमों को जानते हुए भी अधिक रोगी और निर्बल रहते हैं। कितने पुरुष स्त्री-संयोग से सन्तुष्ट न होकर, हस्तक्रिया और पुरुष-प्रसङ्ग (Sodomy) से अपनी काम-लिप्सा तृप्त करते हैं। ऐसे पुरुषों के स्वास्थ्य और शरीर कब तक ठहर सकते हैं। अत्यधिक स्त्री-संयोग और अस्वाभाविक मैथुन से वीर्य की जनन-शक्ति क्षीण हो जाती है और तनिक भी उत्तेजना से वीर्य-स्खलन हो जाता है। फलतः स्त्री-संयोग के लिए एक निश्चित नियम बना लेना श्रेयस्कर है। (ख) गन्दे उपन्यासों का पढ़ना। (ग) स्त्रियों का सतत ध्यान। (घ) हस्त-क्रिया और पुरुष-प्रसङ्ग। (ङ) पाख़ाना-पेशाब का रोकना। (च) व्यायाम अथवा शारीरिक परिश्रम की कमी। (छ) आलस्य और बेकारी।

(४) निर्बलता—निर्बल पुरुषों को वीर्यपात की शिकायत बहुधा रहती है। क्योंकि उनकी नसें शिथिल रहती हैं, अतएव तनिक आहार-विहार के विपर्यय से वीर्य-स्खलन हो जाता है। शरीर स्वस्थ और सशक्त होने से स्वयं यह शिकायत दूर हो जाती है।

चिकित्सा

वीर्यपात की चिकित्सा के लिए साधारणतः किसी वैद्य या डॉक्टर के यहाँ जाने की आवश्यकता नहीं रहती, स्वयं आहार-विहार के नियमों को निश्चित रूप

से अनुसरण करने से और मनोवृत्ति को शुद्ध रखने से यह रोग दूर हो जाता है। क़ब्ज़ियत को सदा दूर रखने का ध्यान रखना चाहिए। सवेरे आधा सेर ताज़ा पानी पीना, चना भिगो कर जलपान करना, चक्की के आटे की रोटी खाना, हरी तरकारी खाना, रात में सोने के पहले कम से कम आधा सेर गरम दूध पीना और ताज़े फल खाना, क़ब्ज़ियत को दूर करने के अमूल्य उपाय हैं। धनिक व्यक्ति केवल दूध और फलाहार करें तो सब से उत्तम होगा। खटाई, मिर्च, मिठाई और मांस-मछली का खाना निश्चय रूप से छोड़ देना चाहिए। गन्दे उपन्यासों का पढ़ना और बुरी आदतों को छोड़ देना चाहिए। यथाशक्ति किसी तरह का व्यायाम करना चाहिए। जिनसे किसी तरह का व्यायाम न हो सके, उन्हें सवेरे और शाम को कम से कम एक मील पैदल घूमना चाहिए। ठण्ढे पानी से अथवा नदी या तालाब में सवेरे स्नान करना लाभदायक होगा। सदा अल्पाहार करने का ध्यान रखना चाहिए और रात को आधा खाना अथवा केवल दूध पीकर रहना श्रेयस्कर होगा। बिना संयम के किसी तरह की दवा खाना लाभदायक नहीं होगा। स्त्री-संयोग और सहवास, कुछ दिन के लिए छोड़ देना लाभदायक होगा।

—रामचरित्र कुँवर, एल० एम० पी०

बाल-विवाह का दुष्परिणाम

[मुन्शी रामजीमल कपूर, सम्भली 'राम']

हो गईं अनक़ा[1] हमारी देश की सब ख़ूबियाँ,
हैं हमीं और आप इस गुलज़ार के बादे-ख़िज़ाँ[2]।
किस तरह सरसब्ज़ हों अब इस चमन की डालियाँ,
कमसिनी में कर रहे हैं हिन्द वाले शादियाँ।

जब ज़रा बढ़ने लगा मासूम बच्चा शीरख़्वार,[3]
फ़िक्र शादी में हुए माँ-बाप उसके बेक़रार।

अलग़रज़ शादी हुई, बारात भी रुख़सत हुई,
आगई दुलहिन नई घर में बड़ी ज़ीनत[4] हुई।
शादमाँ[5] नौशा[6] हुआ माँ-बाप को फ़रहत[7] हुई,
अब ज़रा सुनिएगा जो तालीम की हालत हुई ?

उस नई दुलहिन के जो नौशाह को दर्शन हुए,
इल्म से नफ़रत हुई स्कूल से बदज़न[8] हुए!

जब बढ़े कुछ उम्र में तालीम के क़ाबिल हुए,
छोड़ कर तालीम को बीबी पे वह मायल[9] हुए।
शब को कमरे में दुल्हन के शौक़ से दाख़िल हुए,
अलग़रज़ हम-बिस्तरी के ऐश सब हासिल हुए।

सामने बीबी के अब बेकार माँ और बाप हैं,
बीबी है, ख़िल्वत[10] है, और चश्मा लगाए आप हैं !!

अब न है तालीम से मतलब न पढ़ने का ख़याल,
है उन्हें एक दम को भी स्कूल का जाना मोहाल।
कर रहे हैं मश्क़ उसकी जो हैं जोरू के सवाल,
अब उन्हें जुग़राफ़िया है अपने जोरू का जमाल[11]।

कमसिनी की शादियों का हाल मैं कब तक कहूँ,
जिससे पूछो वह यह कहता है मिडिल में फ़ेल हूँ !!

१—ग़ायब, २—पतझड़ की हवा, ३—दुधमुँहा, ४—शोभा, ५—ख़ुश, ६—दूल्हा, ७—आनन्द, ८—नज़र फिर जाना, ९—प्रेमी, १०—एकान्त, ११—सौन्दर्य।

जानिबे तालीम रुग़बत[१२] किस तरह अब हो जनाब,
अब तो उनकी दर्स[१३] में है वस्ले-बीबी की किताब !
सामने बीबी के है स्कूल जाने से हिजाब[१४],
किस तरह अब हों भला वे इम्तेहाँ में कामयाब ?
कहते हैं बीबी से, अब जो कुछ भी हैं, वह आप हैं,
मेरी आँखों में समाते ही नहीं माँ-बाप हैं !

ज़ोफ़[१५] से यह हाल है दीखे नहीं है रात में,
चल दिए शब को बिला लकड़ी लिए गर हाथ में ।
गिर गए घर से निकलते ही ज़रा सी बात में,
जिस तरह दीवार कच्ची गिर पड़े बरसात में !
जिस्म से ताक़त गई चेहरे से ज़ेबाई[१६] गई,
दर्दे सर पैदा हुआ आँखों से बीनाई[१७] गई !

हो गई बरबाद उनकी तन्दुरुस्ती इस क़दर,
दस्त जारी हैं कभी और है कभी दर्दे-कमर ।
क़ब्ज़ मेदे में कभी है और कभी है दर्दे-सर,
रोज़मर्रह हैं खड़े दर पर तबीबो डॉक्टर ।
मुज़तरिब[१८] माँ-बाप हैं देखा जो यह हाले-पिसर,
यह न सोचा कमसिनी के ब्याह का यह है असर !

वक़्त से पहले जवानी का मज़ा जाता रहा,
अब यह ताक़त ही नहीं, ज़रिया जो था औलाद का ।
ढूँढ़ते फिरते हैं अब औलाद होने की दवा,
बाप-माँ भी माँगते हैं रात-दिन यह ही दुआ !
पर इधर को ख़्याल है माँ-बाप का मुतलक़ नहीं,
नख़्ल[१९] भी बेतुख़्म[२०] के दुनिया में होता है कहीं ?

वह शमा क्योंकर जले जिसमें न हो रौग़न भरा,
जिसकी हो बुनियाद कम वह नख़्ल हो क्योंकर हरा ?
वह चमन में किस तरह गुञ्चा[२१] शिगुफ़्ता[२२] हो भला,
दूर जिसकी हो गई हो ताक़ते नशवोनुमा ।
दौलतेज़ाती को अपनी हरकतों से खो चुके,
आने वाली ताक़तों से हाथ अपने धो चुके !

और तो सब तर्ज़ बदला आपका ऐ हमनशीन,
कमसिनी की शादियों की रस्म को बदला नहीं ।
ख़ुद बने औलाद के हक़ में हो मारे[२३] आस्तीं,
यह सितम औलाद पर कोई भी करता है नहीं ।
रहम करना चाहिए अब आपको औलाद पर,
ख़ूब हो शादी करो तुम बाद एफ़-ए के अगर ।

कमसिनी की शादियों से है मुनासिब इजतिनाब[२४],
जिस क़दर हैं नुक़्स इसमें मुझसे सुनिएगा जनाब ।
हालते तालीम हो जाती है लड़कों की ख़राब,
देखते मुतलक़[२५] नहीं रुग़बत से तालीमी किताब ।
जिस्म को कमज़ोर करती हैं, ऐसी शादियाँ,
होती है औलाद भी पैदा नहीफ़ो-नातवाँ[२६] ।

ख़्वाबे-ग़फ़लत से उठो ऐ हमदमो हुशियार हो,
है नहीं अब वक़्त सोने का ज़रा बेदार हो !
कमसिनी के ब्याह से गर आपको इन्कार हो,
तो तुम्हारे देश का मादूम[२७] यह इदबार[२८] हो ।
यह जहालत हिन्द से ऐ 'राम' उस दम दूर हो,
नज़्म यह मेरा जो अहले हिन्द को मन्ज़ूर हो !

१२—इच्छा, १३—पाठ, १४—लज्जा, १५—दुर्बलता, १६—शोभा, १७—दृष्टि, १८—बेचैन, १९—पौदा, २०—बीज, २१—कली, २२—खिलना, २३—आस्तीन का साँप, २४—परहेज़, २५—बिल्कुल, २६—कमज़ोर, २७—दूर, २८—दुर्भाग्य ।

मिस पेशेन्स कूपर

कलकत्ते के 'मदन थियेटर्स, लिमिटेड' की एक सुप्रसिद्ध सिनेमा-स्टॉर। अभारतीय होते हुए भी आपने भारतीय सङ्गीत का अच्छा अभ्यास कर लिया है।

दासू भगत

[श्री० ललितकिशोरसिंह जी, एम० एस्-सी०]

मुनियाँ जात की भङ्गिन थी। पर इतना रूप लेकर वह भङ्गिन के घर कैसे पैदा हुई थी? भगवान की विचित्र लीला है! मुनियाँ जिधर निकल जाती, उधर एक तहलका सा मच जाता था। युवक मन्त्र-मुग्ध से रह जाते। बड़े-बूढ़े कहते, 'यह गोबर में पदुम होकर पैदा हुई है।'

वह जहाँ जाती, वहीं रस के समुद्र में लहरें आने लगतीं। उसके रूप के सलोनेपन से आँखों की प्यास बढ़ती; उसकी वाणी की मिठास से मन के पर चिपकते। बातों में कभी कोई उससे जीत न सका, पर किसी को कभी हारने का खेद भी न हुआ। उसकी चञ्चलता का कोई पीछा नहीं कर सकता। उसके परिहास पर हँस देने के सिवा दूसरा चारा नहीं। उससे एक बार दो-चार होते ही आत्म-विश्वास चला जाता, संयम पर भरोसा न रहता, हाथ-पाँव ढीले पड़ने लगते थे।

वासना की डोर में बँधे कितने ही उसके चारों ओर चक्कर लगाते, पर पास न आते थे। रसिक हाथ मल-मल कर रह जाते—उनके दिल की यह कसक न जाती कि 'हाय! मुनियाँ आज भङ्गिन न होती तो कैसा होता!'

मुनियाँ का पति दासू भी विलक्षणता से ख़ाली न था। धर्म की ओर उसका अजीब झुकाव था। अपनी बिरादरी में वह 'दासू भगत' के नाम से विख्यात था। वह गले में तुलसी की माला रखता और अभक्ष्य के पास न जाता था। सब से बड़ी बात यह थी कि वह नित्य ठाकुर जी की पूजा करता था। अपने घर ही में उसने ठाकुर जी की एक तस्वीर ला रक्खी थी। उसी के सामने वह नाचता, गाता, रोता, हँसता और कभी बेसुध होकर गिर पड़ता था।

नीच जाति के लोग उसका बड़ा सम्मान करते और कुछ-कुछ डरते भी थे। पर उच्च जाति वाले, चाहे ऊपर से जैसा बर्ताव करें, भीतर से उसके आचरण से जलते थे। कोई उसे ढोंगी कहता, कोई बदमाश। कोई उसे परले सिरे का ढीठ समझता और खीझता कि 'अब भले आदमियों में वह ताब न रहा, नहीं तो एक ही दिन में दसुआ का पूजा-पाठ सब भूल जाय।'

ब्राह्मण-क्षत्रिय के गाँव में बस कर भी अब तक दासू भगत पर कोई विपत्ति न आई थी। इसका कारण मुनियाँ का प्रभाव था। एक दिन की बात है। गाँव में कहीं श्रीमद्भागवत की कथा हो रही थी। गाँव वालों का ठट्ट जमा था। दासू भी एक किनारे दुबका हुआ बैठा था। एक राजपूत युवक दासू से झुँझला कर बोला—"दूर हट कर बैठो। क्यों लोगों के बीच में धँसे पड़ते हो?" दूर तो दासू पहले ही से था,

अब और भी सरक गया। दूसरे ही दिन मुनियाँ आँखें तरेर कर उन युवक महाशय से बोली—"क्यों बाबू! अब तो देखती हूँ कि हम लोगों को गाँव ही छोड़ना पड़ेगा।" यह ताना सुन युवक झेंप गया और बोला—"यह भी कोई बात है, भक्तिन भाभी? तू तो योंही ज़रा सी बात पर खिंच बैठती है।"

और एक दिन की बात है। दासू कुएँ पर पूजा के लिए जल भरने गया था। उसी समय एक ब्राह्मण युवक ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया। कई दिन बाद जब वह युवक मुनियाँ के साथ दो बातें करने के लालच में उसके पास आया, तो मुनियाँ ने उसे बुरी तरह झिड़क दिया। तेवर बदल कर बोली—"मैं तुम सरीखे गँवार छोकरों से बातें नहीं करती। जो साधु-सन्तों का मान नहीं करता, उसे मैं आदमी नहीं समझती।" उस दिन से ब्राह्मण-कुमार के होश ठिकाने आ गए। युवक-मण्डली पर मुनियाँ का यह प्रभाव बड़े-बूढ़ों को सदा खटकता था। पर युवकों को हाथ में रखने की क्षमता उनमें न थी, इसीसे विवश थे।

मुनियाँ दासू की सेवा बड़ी श्रद्धा से किया करती थी। विशेषतः दासू के पूजा-पाठ में वह कभी त्रुटि नहीं आने देती। नित्य दोनों समय पूजा के बर्तन माँज-धोकर ठीक रखती और आप भूखी रह जाय तो रह जाय, पर ठाकुर जी के राग-भोग में कमी नहीं होने देती। दासू भी दिन भर भजन-कीर्तन में मग्न रहता था। वह सचमुच ही भजनानन्द था। जैसे उसको संसार की कुछ चिन्ता न थी, वैसे ही मुनियाँ के आचरण से भी वह उदासीन था।

इस प्रकार मुनियाँ के दिन दासू भगत के साथ बड़े चैन से कटते थे।

२

मनोहर मिश्र बड़े ही सम्पन्न व्यक्ति थे। इस अञ्चल में इनकी जैसी धाक किसी की न थी। अपने गाँव के ये एकमात्र नेता थे। इसमें कभी किसी ने इनकी स्पर्धा न की। कोई करता कैसे? एक तो ब्राह्मण, दूसरे धनी। चाहे न्यायालय में हो या यज्ञालय में, मनोहर मिश्र ही सबसे आगे रहते थे। कहीं गाँव वालों की भिड़न्त होती तो इन्हीं का जयजयकार होता। कहीं धर्म की टाँग टूटती तो इन्हीं की दुहाई दी जाती। सार यह कि गाँव भर के लोक-परलोक का भार इन्हीं के माथे था। मिश्र जी भी इस भार को बड़ी सावधानी से ढोए जाते थे।

जो सब से अच्छी वस्तु हो वह मिश्र जी की भेंट! इसी नियम के अनुसार मुनियाँ मिश्र जी के यहाँ काम करती थी। इसमें किसी को आपत्ति न थी। मुनियाँ जैसी भक्तिन का निबाह किसी और के यहाँ हो भी नहीं सकता। ज्योंही मुनियाँ ब्याह कर दासू के घर आई, मिश्र जी के यहाँ उसकी रोज़ी लग गई।

दो-चार बार की देखा-देखी में ही मुनियाँ ने मिश्र जी का मन अपनी ओर खींच लिया। मिश्र जी ने सोचा कि मुनियाँ जैसी भक्तिन से कोई गन्दा काम लेना कुरुचि का परिचय देना है। फिर क्या था? मुनियाँ से केवल बाहर-बाहर की सफ़ाई का काम लिया जाने लगा। जैसे मुनियाँ के झाड़ू के कोमल स्पर्श से मिश्र जी का घर-द्वार हँस पड़ता था, वैसे ही उसके कटाक्षों और मृदु-मुस्कान के सरस स्पर्श से मिश्र जी का हृदय भी प्रफुल्ल हो उठता था।

इसका एक विशेष कारण था। कुसंयोग से मिश्र जी की धर्मपत्नी के स्वभाव में कुसंस्कार और कुरुचि का ही अंश अधिक था। और गृहस्वामिनी होने से उनका अभिमान भी इतना बढ़ गया था कि वे पग-पग पर मिश्र जी से उलझने लगी थीं। कोई सन्तान न होने से उनका स्वभाव और भी चिड़चिड़ा हो गया था। इससे मिश्र जी के पारिवारिक जीवन में सुख नाम-मात्र को भी न था। ऐसी अवस्था में मुनियाँ का हँसता चेहरा, मीठी बोली और मृदु स्वभाव मिश्र जी को एक नई दुनिया में खींच लाए। ऐसी आनन्द की सृष्टि उनकी अनुभूति और भावना के बाहर की वस्तु थी। इस नए लोक की वायु के स्पर्श से वे आपा भूल गए। पूर्व-संस्कार मिट गया, भविष्य आँखों से ओझल हो गया। उनका हृदय बड़े वेग से मुनियाँ की ओर बढ़ा।

मुनियाँ ऐसे अवसर को कब हाथ से निकलने देती? उसने मिश्र जी के बढ़ते हुए हृदय का ऐसा स्वागत किया कि उन्हें पागल बना दिया। यह नहीं कि मुनियाँ को धन का लोभ न था—उसे गहने-कपड़े का बड़ा चाव था, श्रृङ्गार से बड़ा प्रेम था। पर मिश्र जी का जो

उसने उत्साह बढ़ाया, उसका एकमात्र कारण धन ही न था। उसे अपने रूप का बड़ा गर्व था। वह उसे दिग्विजयी बनाना चाहती थी। शिकारी को जैसे शिकार मार कर उल्लास होता है, योद्धा को जैसे शत्रु को वश करने में उत्साह होता है, वैसे ही मुनियाँ को अपने रूप की सफलता पर उल्लास और उत्साह होता था। दूसरों का हृदय मथने में उसे एक अपूर्व आनन्द मिलता। यह उसका स्वभाव सा हो गया था।

मुनियाँ के साथ रस-सम्पर्क होने पर भी मिश्र जी को सामाजिक प्रतिष्ठा का ध्यान सदा बना रहता था। इसीसे अपने कृत्यों पर उन्होंने गहरा पर्दा डाल रक्खा था। इस आवरण के अन्धकार में धीरे-धीरे कहाँ तक आगे बढ़ गए थे, इसे मुनियाँ जितना जानती थी, उतना और कोई नहीं जानता था।

२

रात को बारह बज गए हैं। चारो ओर सन्नाटा छाया हुआ है। अन्धकार का अटल राज्य है। पर मनोहर मिश्र के कमरे में रोशनी अब भी जल रही है। कमरे के बाहर चौकीदार नींद के मारे ऊँघ रहा है। भीतर एक पलँग पर मिश्र जी अस्त-व्यस्त पड़े हैं। बीच में एक मेज़ पर बोतल और ग्लास रक्खे हुए हैं। मेज़ के आसपास कुछ कुर्सियाँ पड़ी हैं। पलँग के सिरहाने एक तिपाई पर पानी की सुराही रक्खी हुई है।

मिश्र जी बड़े बेचैन से जान पड़ते हैं। पलँग से उठ कर कभी कुर्सी पर बैठते, कभी शराब ढाल कर पीते और आरामकुर्सी पर जा लेटते। ज़रा सी आहट पाते ही चौंक पड़ते और बड़ी आतुरता से द्वार की ओर निहारने लगते। फिर बड़बड़ाते हुए पलँग पर जा गिरते। पर चैन कहीं न मिलता।

जब बेचैनी बहुत बढ़ी, तो उन्होंने चौकीदार से धीरे से कहा—क्यों मोहनसिंह? अभी तक नहीं आई? तुमसे क्या कहा था?

"मुझसे तो कहा था कि तुम चलो, मैं अभी आती हूँ। हुकुम हो तो फिर जाऊँ?"

"जाओ, पर ख़ूब होशियारी से जाना।"

इतना कह मिश्र जी कुर्सी पर आ बैठे। शान्त-भाव से थोड़ी देर तक आसरा देखा। जब कोई आता दिखाई न दिया तो कुर्सी पर से उठ खड़े हुए और आप ही आप बोले—अब जान पड़ता है, नहीं आएगी। कैसा धोखा दिया।

इतना कह मेज़ के पास गए और शराब ढाल-ढाल कर पीने लगे। जब हाथ काँपने लगे, पाँवों की ताक़त जाती रही, तब मेज़ के पास से हटे। इरादा था कि पलँग पर जा लेटें। पर वहाँ तक पहुँचने के पहले ही क़ालीन पर लम्बे हो गए। कई बार उठने की चेष्टा की, पर अङ्ग-अङ्ग जवाब दे रहा था। निदान फ़र्श पर ही पड़े रहे।

मिश्र जी इसी अवस्था में थे कि कमरे का द्वार खुला और मुनियाँ भीतर आई। किवाड़ लगा कर आगे बढ़ी तो फ़र्श पर पड़े हुए मिश्र जी दिखाई दिए। वह मिश्र जी के पास गई तो देखा कि वे आँखें बन्द किए पड़े हैं। मुनियाँ के हाथ लगाते ही मिश्र जी चौंक पड़े। आँखें खोलीं और घूर-घूर कर चारों ओर देखने लगे। अन्त में मुनियाँ के मुख पर उनकी दृष्टि स्थिर हो गई। थोड़ी देर एकटक निहारने के बाद वे एकाएक उसके गले से लिपट गए और लड़खड़ाती हुई ज़बान से बोले—आ गई......आ .....गई। अब तक .... कहाँ थी...... मुनियाँ?

मुनियाँ कुछ कहा ही चाहती थी कि मिश्र जी अचेत हो गए। मुनियाँ झट उनके मुँह पर पानी के छींटे देने लगी। आँचल भिगो कर सर पोंछा। कुछ देर में मिश्र जी होश में आ गए।

होश में आते ही उन्होंने मुनियाँ का हाथ पकड़ कर अपनी छाती पर रक्खा और प्रेम-भरी निगाह से उसे निहार कर धीरे-धीरे बोले—इतनी देर कैसे हो गई मुनियाँ? और तो कभी ऐसा नहीं होता था।

मुनियाँ ने मुस्कुरा कर मिश्र जी की ओर देखा और उनके कान के पास मुँह ले जाकर बोली—आज कई छोकरे मेरा पीछा कर रहे थे। इसी से देर हो गई थी।

मिश्र जी ने घबरा कर पूछा—फिर तुमने क्या किया?

"करती क्या? आपकी बदनामी के डर से मैं आना नहीं चाहती थी। पर आपका चौकीदार जो सर पर सवार था।"

मिश्र जी चुप हो गए। थोड़ी देर बाद मुनियाँ के गाल पर हलकी सी चपत मार कर बोले—हैं, मेरी बदनामी! इसकी तू परवा न कर। जात-परजात सब मेरी मुट्ठी में हैं। ओह! गला सूख रहा है मुनियाँ, जल्दी पिला।

"क्या पानी चाहिए?"

"नहीं"—बोतल की ओर इशारा करके—"वह"।

मुनियाँ पहले ज़रा ठिठकी; फिर ग्लास में थोड़ी सी शराब ढाली और सुराही का पानी मिला कर ले आई। मिश्र जी उसे दो ही घूँट में साफ़ करके बोले—यह तो बड़ा फीका था। थोड़ा और ले आ। ज़रा गहरा चाहिए।

मुनियाँ ने ज़रा विचलित होकर कहा—अब मत पीजिए। फिर बेहोशी आ जायगी।

"अरी जल्दी क्यों नहीं देती! बिलकुल नशा उतार कर ही छोड़ेगी?"

इतना कहते हुए वे स्वयं उठने लगे। उनकी व्यग्रता देख मुनियाँ फिर ले आई। इस बार मात्रा अधिक थी। मिश्र जी का होश-हवास जाता रहा।

मुनियाँ ने मिश्र जी को जैसे-तैसे उठा कर बिस्तर पर लेटा दिया। घड़ी पर दृष्टि पड़ी तो देखा, तीन बज चुके हैं। मुनियाँ घबरा कर कमरे से बाहर हो गई। मोहनसिंह बाहर ख़र्राटे ले रहा था। मुनियाँ ने उसे जगाना अच्छा नहीं समझा, अकेली ही घर की ओर चल दी।

४

गाँव के कुछ गण्य-मान्य लोग मिश्र जी के बाहर के कमरे में उनसे मिलने को बैठे हैं। ग्यारह बज गए, पर अभी तक मिश्र जी पूजा पर से उठे नहीं। आज देह में कुछ दर्द-सा हो रहा था, जिससे बिस्तर छोड़ने में देर हो गई।

इस कमरे से लगी हुई ही पूजा की कोठरी है। इससे इन लोगों के आने की ख़बर मिश्र जी को भी हो गई। वे जैसे-तैसे पूजा समाप्त कर खड़ाऊँ खटखटाते हुए कमरे में आए और यथोचित शिष्टाचार के बाद उन लोगों के बीच जा बैठे।

उनमें से एक सज्जन की ओर मुँह फेर कर बड़ी नम्रता से मिश्र जी ने पूछा—क्यों कुञ्जबिहारी, इस समय कैसे पहुँचे? और देखता हूँ, प्रभू चाचा को भी साथ ले आए हो। बात क्या है?

कुञ्जबिहारी पाण्डे बड़ी गम्भीरता से बोले—मिश्र जी, यों तो बात कुछ नहीं है। पर सोच कर देखिए तो बड़ी गहरी बात है।

"वह बात है कौन सी?"

"मिश्र जी, बात यह है कि हम लोगों के देखते-देखते दुनिया का रङ्ग बदला जा रहा है। देखता हूँ, अब इस गाँव में भले आदमियों की इज़्ज़त बचने का कोई भरोसा नहीं रहा।"

मिश्र जी ऊब कर बोले—भई, असल बात क्यों नहीं बताते? इन सब बाहरी बातों से क्या लाभ?

"हाल यह है कि इस गाँव में जो दासू भङ्गी है, उसका साहस दिन पर दिन बढ़ता जाता है। लोग जितना उससे परहेज़ करते हैं, वह उतना ही आसमान पर चढ़ता जाता है। आए-दिन हम लोग कितनी ही बातों को तरह देते गए। इसका नतीजा यह हुआ कि कल दोपहर को गाँव के बाहर, तालाब के किनारे जो ठाकुर जी का मन्दिर है, उसमें वह घुस गया। जब पुजारी ने छेड़ा तो उनसे उलझ पड़ा।"

मिश्र जी गम्भीर होकर बोले—यह कल दोपहर की बात है?

प्रभुदत्त तिवारी ने जवाब दिया—हाँ, भाई! कल दोपहर की ही बात है। धर्म की बात में यह बढ़ाबढ़ी मुझे अच्छी नहीं लगती। (आँखों में आँसू भर कर) आज मेरे भैया होते तो भला यह कभी होने पाता। साले की देह का चमड़ा उधेड़ डालते और कहीं कुछ न होता। थाना-पुलिस उनकी मुट्ठी में रहती थी। वे दिन ही कुछ और थे। क्या करो, तुम लोग भी दीन-दुनिया देख कर चलते हो। पर बाबू, यह तो मैं कहे देता हूँ कि इतने ढीलेपन से साहिबी नहीं चलती। हरगिज़ नहीं।

मिश्र जी ने मुस्कुरा कर कहा—आपका कहना ठीक है, चाचा। पर जब तक सच्चा-सच्चा हाल न मिल जाय, तब तक कुछ कर बैठना क्या उचित होगा?

यह सुन कर एक सज्जन जो मुँह फुलाए, आँखें लाल किए कुछ पीछे बैठे थे, तिनक कर बोल उठे—तो क्या हम लोग सब के सब झूठे हैं? एक दसुआ ही सच्चा पैदा हुआ है?

"दसुआ की यहाँ कौन सी बात है? बिना पानी के मोज़े क्यों उतारते हो? मेरे कहने का मतलब यह है कि तुम लोगों में से किसी ने आँख से तो देखा नहीं, जिसने देखा है, उसे बुलाया जायगा। दासू को भी मेरा आदमी पकड़ लाएगा। फिर उसके सामने हायल-कायल होगा। क़सूर साबित होने पर सज़ा दी जायगी। वह पाँच से बाहर तो हो नहीं सकता!"

इतने में मिट्ठनसिंह एक ओर से बोल उठे—मिश्र जी, आप बुरा न मानें। मेरा तो बाहर-भीतर एक है। मैं बना कर बातें करना नहीं जानता। जब से मुनियाँ आपके यहाँ काम करने लगी है, तभी से दासू का मन बढ़ गया है। अब तो वह समझता है कि गाँव का मालिक मैं ही हूँ। मुझे तो यह मामला-मुकदमा पसन्द नहीं। आप पाँच पञ्च मुझे हुकुम दीजिए, अभी मैं अकेला जाकर उस साले की मरम्मत करके छठी का दूध याद करा दूँ।

"भाई, देखो ग़ुस्से से काम बिगड़ता है। फिर पीछे पछताना पड़ता है। जो कुछ किया जाय, समझ-बूझ कर किया जाय। भला दासू कहाँ का रुस्तम है कि गाँव भर से हेकड़ी करके निकल जायगा? मुनियाँ मेरे यहाँ काम करती है, तो मजूरी पाती है। इसका एहसान क्या? यहाँ कोई सिंहासन पर तो उसे बैठाता नहीं। भङ्गिन है, भङ्गिन का काम करती है। दासू को इसका घमण्ड हो तो देख लेना, वह भी चूर हो जायगा। पर सभी काम सहूलियत से होना चाहिए।"

मिश्र जी की बात पर कुञ्जबिहारी मिट्ठनसिंह की ओर देख कर बोले—अजी, कोरी बकवाद से क्या लाभ। मिश्र जी, आप ही बताइए न कि अब क्या हो?

मिश्र जी ने शान्त भाव से कहा—मेरी तो राय यह है कि कल आप लोग फिर इकट्ठे हों। दासू को भी बुलाया जाय। मन्दिर के पुजारी भी आएँ, जिनकी आँख देखी बात है। फिर जैसा होगा, विचार किया जायगा।

मिश्र जी का रुख़ देख, कुञ्जबिहारी ने कहा—मिश्र जी का कहना ठीक ही है। ऐसी हड़बड़ी की कौन सी बात है। कल ही सही।

सब के सब उठना ही चाहते थे कि मिट्ठनसिंह ने कहा—यह भी ठीक हो जाय कि मन्दिर का क्या होगा। मैं लटपट नहीं जानता।

मिश्र जी थोड़ा ठहर कर प्रभुदत्त जी की ओर इशारा करके बोले—यह तो प्रभू चाचा ही बता सकते हैं कि ऐसी हालत में क्या होना चाहिए।

प्रभुदत्त जी ने गम्भीर मुद्रा धारण करके कहा—"भाई, हम लोगों की चलती में तो कभी ऐसा हुआ नहीं था। पर जैसा सुना है उससे तो यही उचित जान पड़ता है कि जब तक फिर से प्राण-प्रतिष्ठा न हो ले, तब तक कोई मन्दिर में प्रवेश न करे। द्वार पर ताला लगा दिया जाय। पूजा-पाठ, राग-भोग बन्द रहे। अच्छे-अच्छे पण्डितों से स्थापना का यज्ञ कराया जाय। आसपास के दो-तीन गाँव के ब्राह्मणों की भोजन-प्रतिष्ठा हो। क्यों, यह ठीक है न कुञ्जो?" कुञ्जबिहारी ने बड़ी ही निरुत्सुकता से कहा—"भला आपकी बात और ठीक न हो?"

प्रभुदत्त तिवारी की बातों से मिश्र जी कुछ चिन्ता में पड़ गए। कुछ सोच कर उन्होंने कहा—अच्छा जैसा प्रभू चाचा कहते हैं, वैसा ही होगा। पर अभी तो मन्दिर बन्द करवा देना चाहिए।

"यह तो मैं आज ही शाम को करा दूँगा।"—इतना कह कर कुञ्जबिहारी उठ खड़े हुए। उनको उठते देख एक-एक कर सब उठ गए और सामान्य शिष्टाचार के बाद वहाँ से विदा हुए।

जब वे सब सदर सड़क पर आए तो आपस में तर्क-वितर्क होने लगा। एक ने कहा—भई, यह भी एक ही रही! जो बात कहने की थी, वह किसी के मुँह से निकली ही नहीं।

मिट्ठनसिंह ने ग़ुस्से की आवाज़ में कहा—मैंने बात छेड़ी थी। पर कुञ्जबिहारी बीच ही में कूद पड़े। मुँह की बात मुँह ही में रह गई। भला मैं क्या करता?

कुञ्जबिहारी ने झल्ला कर कहा—मुझे क्यों झूठ-मूठ बदनाम करते हो? बड़े सिंहरास के हो तो जाकर कह क्यों नहीं आते? चलो, मैं चलने को तैयार हूँ।

यह कह उन्होंने मिट्ठनसिंह का हाथ पकड़ा। मिट्ठन-सिंह ने हाथ झिटक कर कहा—"सिंहरास नहीं तो क्या मैं भी किसी के पाँवों में तेल लगाने जाता हूँ? आपही जैसे ब्राह्मणों ने तो धर्म का सत्यानास किया।" कुञ्ज-बिहारी कड़क कर बोले—"ख़बरदार! मुँह सँभाल कर बोलो, नहीं तो जीभ पकड़ कर खींच लूँगा।" "अरे!

इतना साहस ? अच्छा तो तुम मेरी जीभ खींच ही लो।"—यह कह मिट्ठनसिंह डण्डा सँभाल पैंतरा बदलने लगा। बात बढ़ चली। मारपीट की नौबत आ गई। प्रभुदत्त मामला बिगड़ता देख बीच में आ खड़े हुए और बड़ी कठिनाई से दोनों को शान्त किया।

५

"नहीं, मैं यह अन्याय नहीं सह सकती।"

"मैं कहता हूँ कि अन्याय नहीं होगा। तू क्यों घबराती है ?"

"मैं घबराती हूँ, इससे कि सारा गाँव हमारी जान का गाहक हो रहा है।"

"मेरे रहते भला कुछ हो सकता है ?"

"आप लोग सब के सब एक ही हैं।"

"तो क्या तू मुझ पर भी विश्वास नहीं करती ?"

"घर के भीतर मुनियाँ को छाती से लगाना एक बात है और भरी सभा में दासू का पच्छ लेना दूसरी बात।"

"चतुराई से दोनों किया जा सकता है।"

"चतुराई तो तब चले, जब बात छिपी हो। सारे गाँव में तो ढिंढोरा पिट गया है।"

"मैं तो ऐसा नहीं समझता।"

"आपके नहीं समझने से क्या होता है ? आपको पता है कि कल मुझे यहाँ आने में देर क्यों हुई थी ?"

"तूने कुछ बताया तो था सही।"

"वह बात झूठी थी। असल बात यह है कि कल मन्दिर की बात लेकर गाँव में जाने क्या-क्या चक्र चलता रहा। रात को कुञ्जो महाराज, मिट्ठनसिंह और कई लोगों के साथ भगत के पास आकर उसे धमकाने लगे। बोले कि 'कुसल चाहो तो कल तड़के ही मुनियाँ के साथ गाँव छोड़ कर कहीं चले जाओ, यही मालकिन का हुकुम है।' मैं यह पूछने कल आई थी कि मालिक का क्या हुकुम है ? पर आप तो कल बेहोस पड़े थे। अब आज यह साफ़-साफ़ बता दीजिए।"

सारा हाल सुन मिश्र जी चिन्ताग्रस्त हो गए। कुछ देर बाद वे आप ही आप बोले—मामला यहाँ तक बढ़ गया !

मुनियाँ ने झुँझला कर कहा—मामला बढ़ने का मुझे सोच नहीं। आप मुँह खोल कर कह दीजिए, मैं कल ही यहाँ से बिदा हो जाऊँ।

मिश्र जी सूखे हुए गले से बोले—तू कहाँ जायगी मुनियाँ ?

"जिधर पाँव उठेगा, चल दूँगी।"

"नहीं, ऐसा नहीं होने पाएगा, मुनियाँ। तुझे यहीं रहना होगा। तेरा कोई कुछ नहीं कर सकता।"—इतना कह उन्होंने मुनियाँ को खींच कर छाती से लगा लिया।

मिश्र जी की गोद में पड़ी-पड़ी मुनियाँ ने जाने कितने आँसू बहाए। मिश्र जी ने कितने ही वादे किए। उसे बार-बार दिलासा दिया। उसके आँसू पोंछे। घण्टों बाद मुनियाँ शान्त हुई। मिश्र जी ने शराब के प्याले में इहलोक-परलोक की चिन्ता डुबा दी।

* * *

जिस समय यहाँ यह लीला हो रही थी, उसी समय इसी महल के किसी दूसरे खण्ड में दूसरा ही नाटक रचा जा रहा था। मिश्र जी की धर्मपत्नी का कमरा भीतर से बन्द था। अन्दर एक तो मिश्रानी जी थीं, दूसरे थे कुञ्जबिहारी पाण्डे। इन दोनों के सम्बन्ध के इतिहास का अन्वेषण व्यर्थ है। पर इस समय ये दोनों किसी विशेष कुचक्र की चिन्ता में इकट्ठे हुए थे।

मिश्रानी जी ने कुञ्जबिहारी के कन्धे पर हाथ रख कर कहा—नहीं, कुञ्जबिहारी, मेरी बात मानो। इस अवसर को हाथ से जाने मत दो।

"मुझे तो इस काम का होना कठिन जान पड़ता है।"

"कठिन-बठिन कुछ नहीं है। सच तो यह है कि तुम कुछ करना नहीं चाहते।"

"आप भी कैसी बातें करती हैं ! भला आपकी बात मैं उठा सकता हूँ ?"

"नहीं जी, तुम्हें डर होता है कि मुनियाँ के आँखों से ओझल होते ही मिश्र जी का झुकाव मेरी ओर होगा। और तब तुम्हारा × × ×"

कुञ्जबिहारी झेंप कर बीच ही में बोल उठे—ऐसी बातों से आप जान-बूझ कर मेरा दिल दुखाती हैं ?

कुञ्जबिहारी को झेंपते देख मिश्रानी जी कुछ सीधी पड़ गईं। प्रेम-भाव से कुञ्जबिहारी का हाथ अपने हाथों

में लेकर बोलीं—तुम विश्वास मानो, कुञ्जबिहारी, अब मिश्र जी की निगाह मेरी ओर नहीं फिर सकती। सच तो यह है कि मुनियाँ के दूर होते ही मुझसे उनका दिल और भी फट जायगा। मेरा भी मतलब यह नहीं कि मिश्र जी का नेह पाकर मैं फिर से सुहागिन बनूँ। वे दिन दूर निकल गए। मैं तो मुनियाँ को अच्छी तरह कुचलना चाहती हूँ। उसे देखते ही देह में आग फुँक जाती है।

"तो आप जो कहें, मैं करने को तैयार हूँ। न करूँ तो बुरा-भला कहिए।"

"काम तो बहुत सीधा है। गाँव के बड़े-बूढ़े तो उसके नाम से खार खाते ही हैं। एक मिश्र जी ही उसके सहायक हैं, जो किसी तरह इस आँधी को दबाने का यत्न करेंगे। कहीं वे हठ कर बैठे तो उनका सामना करने का साहस किसी को न होगा। इसलिए ऐसा करना चाहिए कि वे किसी तरह रास्ते पर आ जायँ। उन्हें हठ का अवसर न मिले। यह काम तुम जैसे घाघ से ही हो सकता है।"

कुञ्जबिहारी ने ज़रा सोच कर कहा—अच्छा, यत्न करके देखूँगा।

मिश्रानी जी ने मुस्करा कर कहा—जाओ। मन लगाओगे तो पौबारह है।

कुञ्जबिहारी ने जाते-जाते मुस्करा कर जवाब दिया—आपके इशारे पर भला मैं क्या नहीं कर सकता?

६

मनोहर मिश्र के बँगले पर भीड़ लगी हुई है। गाँव भर के लोग, क्या जवान, क्या बुड्ढे, बड़ी उत्सुकता से बैठे हैं—कुछ शतरञ्जी पर, कुछ ओसारे की सीढ़ी पर और कुछ नीचे मैदान में। मनोहर मिश्र बीच में गद्दी पर विराज रहे हैं। उनके चेहरे का रङ्ग रह-रह कर बदल रहा है। कभी चिन्ता, कभी क्षोभ, कभी विरक्ति के पर्दे पलट रहे हैं। उनके आस-पास गण्यमान्य लोग—कोई आसन मारे, कोई उकडूँ, कोई हथेली पर सिर टेके चिन्ताशील सा मुँह बनाए बैठे हैं।

इधर-उधर देख, मिश्र जी बोले—प्रभू चाचा नहीं आए?

प्रभुदत्त तिवारी एक किनारे दीवार के सहारे बैठे पकी मूँछों पर ताव दे रहे थे। मिश्र जी को पूछते देख, वहीं से बोले—मैं यहाँ बैठा हूँ भैया।

"आप यहाँ आ जाइए। एक किनारे क्यों बैठे हैं?"

"मैं बड़े आराम से हूँ। यहीं से सब देखता-सुनता जाऊँगा। अब काम भी शुरू होना चाहिए। शुभस्य शीघ्रम्!"

मिश्र जी ने कुञ्जबिहारी से कहा—हाँ भाई, अब देर क्यों हो रही है? पुजारी को बुलाओ न। पहले उन्हीं से पूछा जाय।

इतने में "पुजारी जी," "पुजारी जी," "कहाँ हैं पुजारी जी" का शोर मच गया। और एक दुबला-पतला सा आदमी, नङ्गे बदन, कन्धे पर छोटा सा अँगोछा डाले, गले से मैली जनेऊ लटकाए आ खड़ा हुआ।

मिश्र जी ने पूछा—आप इस मामले में क्या जानते हैं?

पुजारी जी सहम कर बोले—मैं तो इतना ही जानता हूँ कि परसों दोपहर को मन्दिर की साँकल चढ़ा कर मैं थोड़ी देर के लिए बाहर चला गया था। मैं जब लौट कर आया तो देखता हूँ कि मन्दिर का द्वार खुला हुआ है और दासू ठाकुर जी का चरणामृत ले रहा है। मैंने पूछा कि तुम क्यों मन्दिर के भीतर घुसे, तो वह मुझसे झगड़ा करने लगा।

इतना कह कर पुजारी चुप हो गया। उसे चुप होते देख मिट्ठनसिंह ने कहा—दासू से क्या-क्या बातें हुईं, सो साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहते? यहाँ क्या कोई बाघ बैठा है, जो तुम्हें खा जायगा? अजीब आदमी हो। आधी बात कहते हो, आधी मुँह में रख लेते हो।

पुजारी धीरे से बोला—दासू कहने लगा कि 'मैं किसी साले की परवा नहीं करता।' जब मैंने कहा कि मैं अभी मिश्र जी के यहाँ जाता हूँ, तो वह मुझे मारने दौड़ा और बोला कि जाओ अपने बाप के पास। देखें वे मेरा क्या कर लेते हैं।

"मैं तो पहले ही कहता था कि इसका साहस बढ़ रहा है।" "मैं पुजारी होता तो मज़ा चखा देता।" "गाँव से रोब उठ जाने पर यही सब झेलना पड़ता है।" ऐसी ही बातें चारों ओर सुनाई पड़ने लगीं।

पुजारी के बैठने के बाद मिश्र जी ने कहा—"अब दासू से पूछना चाहिए। वह इसका क्या जवाब देता है?" दासू को पुकार हुई। वह सामने आ खड़ा हुआ। उसका मुँह सूखा हुआ था। कुञ्जबिहारी पाण्डे के पूछने पर उसकी आँखें डबडबा आईं। वह हाथ जोड़ कर बोला—"सरकार, नीचे पञ्च ऊपर परमेसर! सरकार की गद्दी के सामने, इस पञ्चवेदी में झूठ बोल कर मेरी क्या गत होगी? मेरे मुँह से एक अच्छर भी झूठ निकले तो मैं कोढ़ी होकर मरूँ। मैं मन्दिर के भीतर गया हूँ ठीक, पर चरनामृत मैंने नहीं छुआ। दोहाई ठाकुर जी की!"

"तू मन्दिर में क्यों घुसा था?"

"मैं सब कहता हूँ, सरकार। उस दिन मैं अपनी बहिन की ससुराल से आ रहा था। मन्दिर के पास पहुँचते-पहुँचते दोपहर हो गया। मेरी बहिन ने थोड़ा कलेवा साथ कर दिया था। मैंने सोचा कि घर में तो सब खा-पी चुके होंगे, सो यहीं तालाब में नहा-धोकर कुछ पानी पी लूँ। जब मैं नहा-धो चुका तो याद पड़ी कि मैंने ठाकुर जी की सेवा नहीं की। बहुत दिनों से मेरा नेम हो गया है कि मैं नित्त ठाकुर जी की सेवा करके अन्न-जल से मिलता हूँ। मन्दिर पर आँख पड़ी तो देखा कि दोनों पट्ट खुला हुआ है। सरकार, मन्दिर खुला देख कर मैं ठाकुर जी की सेवा करने का लालच दबा न सका।"

इतना कहते-कहते दासू का गला भर आया। भर्राई हुई आवाज़ में उसने फिर कहा—मैं दौड़ कर फुलवारी से फूल तोड़ लाया। मन्दिर के भीतर जा अलग से ही ठाकुर जी के चरन पर फूल चढ़ा दिया। जब मैं बाहर आ रहा था तब पुजारी जी से भेंट हुई।

"अच्छा, तो फिर पुजारी जी से तू उलझ क्यों पड़ा?"

"मालिक, पुजारी जी ब्राह्मण-देवता हैं। मैं उन्हें झूठा कैसे बनाऊँ। पर मैंने अपने जानते कोई ऐसी बात नहीं कही। मैंने इतना ही कहा कि पुजारी जी, अब तो मुझसे कसूर हो गया। आप इसके लिए चाहे जो सजा दें। आपकी जूती मेरे सिर पर है। इस पर पुजारी जी गाली-गलौज करने लगे। मेरी जीभ पर एक भी खोटी बात आई हो तो मेरे मुँह में कीड़े पड़ जायँ।"

दासू की बात पूरी होने पर उसे दूर हटा दिया गया और पञ्चों के बीच तर्क-वितर्क होने लगा। पञ्चों में से कोई भी दासू पर दया दिखाने को तैयार न था। मिश्र जी उभय-सङ्कट में पड़े हुए थे। एक ओर तो दासू को बचाना, दूसरी ओर स्वयं अपयश से बचना। वे अन्य पञ्चों से किसी तरह भी सहमत न हो सके। अन्त में कुञ्जबिहारी पाण्डे ने बीड़ा उठाया। मिश्र जी को एकान्त में ले जाकर समझाया। इधर पञ्चों को भी आगा-पीछा सुझाया। फल यह हुआ कि दासू के दण्ड के विषय में एकमत हो गया।

दासू की फिर पुकार हुई। कुञ्जबिहारी पाण्डे ने बड़ी गम्भीरता से दासू को सम्बोधन करके कहा—दासू भगत, देखो तुम्हारा क़सूर बहुत बड़ा है। इसमें क्या दण्ड नहीं हो सकता है? मान लिया तुम्हारी ही बात ठीक है। तुमने गाली-गलौज नहीं की, पुजारी का अपमान नहीं किया। पर भले आदमियों के गाँव में ठाकुर जी के मन्दिर में घुस जाना! कितने बड़े साहस का काम है!! जो हो, पञ्चों की राय है कि फिर से मन्दिर का यज्ञ करने में जितना ख़र्च बैठे, वह तुम्हें सहना पड़ेगा। दूसरे, उस यज्ञ में जो ब्राह्मण-क्षत्रिय पधारेंगे, उनका जूता सिर पर लेकर सारे गाँव की परिक्रमा करनी होगी। तीसरे, अपने यहाँ से ठाकुर जी की मूर्त्ति-ऊर्ति जो कुछ भी हो, हटाना पड़ेगा। इस गाँव में बसना हो तो भङ्गी का जो कर्म है, वही करते हुए बसो, नहीं तो गाँव छोड़ कर चले जाओ।

यह दण्ड-विधान सुन कर दासू को काठ मार गया! उसे विश्वास हो गया कि उसका घर-द्वार, जमा-पूँजी कुछ भी शेष न रहेगा। साथ-साथ अपमान भी सहना पड़ेगा। पर सब से अधिक चिन्ता और क्षोभ उसे इस बात का था कि अब भगवान के भजन में भी बाधा पड़ने की नौबत आ गई।

वह अवाक् बैठा धरती की ओर एकटक निहार रहा था। इतने में मुनियाँ पाए की आड़ में आ खड़ी हुई, और वहीं से बोली—मैं यह जानना चाहती हूँ कि क्या मालिक का भी यही हुकुम है?

मिट्ठनसिंह ने क्रोध के साथ जवाब दिया—हाँ, हाँ। यही हुकुम नहीं, तो क्या दूसरा हुकुम होगा?

"मैं उन्हीं के मुँह से सुनना चाहती हूँ।"

एक किनारे से किसी की आवाज़ आई—"अरे यह तो बड़े रोब में बोल रही है !" किसी ने कहा—"मालिक पर हुकुम चलाने आई है ।"

मामला बढ़ता देख मिश्र जी बड़ी रुखाई से बोले—मेरा भी यही हुकुम है। मैं क्या पञ्च से बाहर हूँ।

मिश्र जी के मुँह से बात निकलते ही मुनियाँ की आँखें लाल हो उठीं, भौं पर बल पड़ गए, सर पर भूत सवार हो गया। उसने तीखी आवाज़ में कहा—मैं इस पञ्चवेदी में एक ही बात का जवाब चाहती हूँ। क्या भङ्गी अछूत होता है और भङ्गिन बाभनी होती है? भङ्गी से तो ठाकुर जी तक छू न जायँ और भङ्गिन के साथ होठ में होठ मिलाने पर भी जात न जाय?

मुनियाँ का इतना कहना था कि सारी सभा में सनसनी फैल गई। कुछ नवयुवकों के बीच इशारेबाज़ी भी होने लगी; कुछ-कुछ दबी हुई हँसी की भी झलक दीख पड़ी। पर मिश्र जी के आसपास बैठे हुए लोगों में खलबली मच गई। किसी ने कहा—"इसकी ढिठाई तो देखो !" किसी ने कहा—"यह तो नङ्गी सड़क पर नाचने वाली है !" कुञ्जबिहारी पाण्डे ने तेज़ होकर दासू से कहा—"देखो दासू, तुम अपनी जोड़ू को सँभालो। नहीं तो अनर्थ हो जायगा।" दासू चौंक पड़ा—जैसे सोए से उठा हो। उसने बड़े ही कोमल स्वर में मुनियाँ से कहा—"तू घर चली जा। यहाँ तेरा क्या काम? जो कुछ होगा, मैं भुगतने को तैयार हूँ।"

"होगा क्या? कोई दुर्गति बाक़ी न रहेगी और गाँव भी छोड़ना पड़ेगा। पर सबका न्याव करने वाला ऊपर बैठा है। वह सब कुछ देखता-सुनता है। हमें जो चाहे सता ले, पर उसे कोई धोका नहीं दे सकता। मैं यही सबको बता देना चाहती हूँ।"

मुनियाँ का यह ताव भला वहाँ कौन सहता? कोई लट्ठ लेकर दौड़ा, किसी ने जूता फेंका, किसी ने गालियों की झड़ी बाँध दी। बात की बात में हङ्गामा मच गया। बड़ी-बड़ी कठिनाई से मिश्र जी ने लोगों को शान्त किया। इस काम में कुञ्जबिहारी ने उनकी बड़ी सहायता की। मिश्र जी ने अपने आदमी के साथ दासू और मुनियाँ को उनके घर पहुँचवा दिया।

सभा भङ्ग होने पर जब मिश्र जी अपने सूने कमरे में आए, तो उनको इस पार्थिव-जीवन की शून्यता प्रत्यक्ष हो उठी। उन्होंने एक बार अपने अतीत जीवन पर दृष्टि डाली। एक बार मुनियाँ की भर्त्सना पर ध्यान दिया; एक बार अपने और अपने समाज के दम्भ पर घृणा की। अन्त में अचेत होकर बिस्तर पर जा गिरे।

७

"अब इस गाँव की मोह-ममता छोड़ो।"

"कैसे छोड़ूँ? छूटती नहीं।"

"तो यहाँ क्या लेकर रहोगे? घर-द्वार चला ही गया। तुम्हारे ठाकुर जी अपना बचाव कर ही नहीं सकते, हमारा-तुम्हारा क्या करेंगे?"

दासू की आँखों में आँसू छलछला आए।

"यह मेरी जनम-भूम है, मुनियाँ! कितनी साध थी कि जहाँ जनमा हूँ, अन्तकाल वहीं की मिट्टी में मिलूँगा।"

"पर तुम्हारे मिलने से यहाँ की मिट्टी क्या भले लोगों के काम की रहेगी?"

"तू ठीक कहती है, मुनियाँ! पर कहाँ जाकर सुख मिलेगा?"

"वहाँ चलो, जहाँ बाभन-छत्री नाम के भले लोग न हों। चलो, क्रिस्तान हो जायँ, मुसलमान हो जायँ।"

"ऐसी बात जीभ पर मत ला, मुनियाँ! भगवान तेरा भला करें। तू तो मुझे मेरे ठाकुर जी से भी जुदा करना चाहती है।"

"वही ठाकुर जी न, जो भङ्गी के फूल चढ़ाने से कूड़े की तरह फेंक दिए जाते हैं?"

"वह तो बाभन-छत्रियों के ठाकुर जी हैं। (छाती पर हाथ रख कर) मेरे ठाकुर जी तो यहाँ हैं, यहाँ। तुझे छाती चीर कर कैसे दिखाऊँ, मुनियाँ?"

मुनियाँ दासू की बातों पर रो पड़ी। रोते ही रोते उसने कहा—तो बताते क्यों नहीं कि तुम्हें कहाँ ले चलूँ? तुम्हें कहाँ चल कर सुख मिलेगा?

"अभी तो यहाँ से बहिन के यहाँ चलो।"

"और वहाँ से भी निकलना पड़े तो?"

"तो किसी तीसरी जगह।"

(शेष मैटर ५४८ पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)

भारतीय नारी का बोझ

'एक व्याधि ते नर मरहिं, ये असाध्य बहु व्याधि !!'
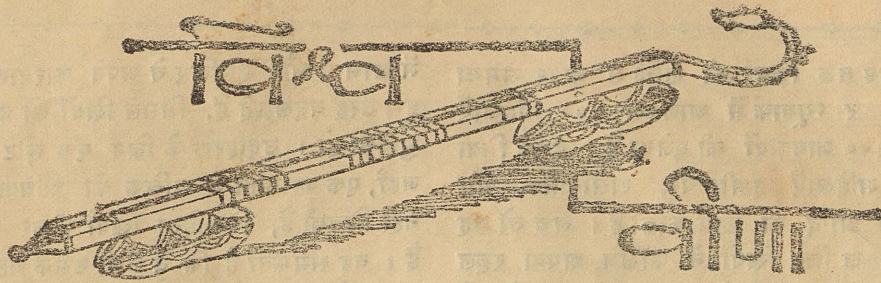
अमेरिका की स्त्रियाँ

अब तक अधिकांश पुरुषों की सम्मति यह सुनने में आती है कि स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र घर के भीतर है। हमारे देश में तो अधिकांश पुरुष स्त्रियों द्वारा स्वतन्त्र व्यवसाय या नौकरी किए जाने की कल्पना भी नहीं कर सकते और जो स्त्रियाँ ऐसा करती हैं, उनको नीची निगाह से देखा जाता है। पर समय का प्रवाह इन बातों की परवाह नहीं करता और स्त्रियाँ बराबर उन क्षेत्रों में आगे बढ़ती जाती हैं, जो कुछ समय पहले तक पुरुषों की ही मिलकियत समझे जाते थे। अमेरिका की स्त्रियों ने इस सम्बन्ध में बड़ी उन्नति की है। वहाँ के उद्योग-धन्धों में स्त्रियों की संख्या किस तेज़ी से बढ़ रही है, इसका वर्णन करते हुए अमेरिकन लेबर डिपार्टमेण्ट के 'बुलेटिन्स' में कहा गया है :—

अगर तीस-चालीस वर्ष पहले के लोग, जिनका हार्दिक विश्वास था कि सार्वजनिक उद्योग-धन्धों में स्त्रियों का भाग लेना अनुचित और हानिकारक है, वर्तमान समय में न्यूयार्क रियासत के विविध प्रकार के कारबारों में नौकरी करने वाली स्त्रियों की संख्या सुन लें, तो सम्भवतः बेहोश होकर मर जायँ। यहाँ पर लाखों स्त्रियाँ हर तरह के पेशों और कारबार में लगी हुई हैं। वे मछली पकड़ने, मोटर चलाने, पानी का नल लगाने, बिजली का काम करने, मकान बनाने, पशु चराने से लेकर क़ब्रों के पत्थर और लेख खोदने तक का काम करती हैं।

पुराने ज़माने में, जब कि फ़ैक्टरी, कारख़ाने और दफ़्तर नहीं थे, स्त्रियाँ ही घरों के भीतर संसार के उपयोग की समस्त वस्तुएँ तैयार करती थीं। खाने और पहनने के काम में जितनी चीज़ें आती हैं, वे सब स्त्रियों की सहायता से ही तैयार होती थीं। जब कारख़ानों की प्रथा का उदय हुआ और मैशीनों का आविष्कार होने लगा, तो ये काम घरों से हटा कर थोड़े से मज़दूरों द्वारा एक छोटे से कारख़ाने में होने लगे। जब उद्योग-धन्धों का अच्छी तरह विकास हो गया और घरों में होने वाला तमाम काम मैशीनों द्वारा फ़ैक्टरियों में होने लगा, तो स्त्रियाँ भी अपना घर छोड़ कर वहाँ जा पहुँचीं।

जैसे-जैसे उद्योग-धन्धों की वृद्धि हो रही है, वैसे-वैसे ही काम करने वाली स्त्रियों की माँग बढ़ती जाती है। जिस कार्य के लिए आज शारीरिक शक्ति और दीर्घ काल तक अभ्यास करने की आवश्यकता है, वही काम कल १६ वर्ष की लड़की के करने लायक़ बन सकता है। नई मैशीनों के कारण स्त्रियों को नौकर रखना आसान हो गया है, और २५ वर्ष के भीतर न्यूयार्क रियासत में नौकरी करने वाली स्त्रियों की संख्या तिगुनी हो गई है। आजकल इस एक रियासत में दस लाख से अधिक स्त्रियाँ वेतन पर काम कर रही हैं। कुछ समय पहिले तक स्त्रियाँ केवल ऐसे कामों के लिए रक्खी जाती थीं, जिनमें कुशलता की आवश्यकता नहीं पड़ती। अब भी अधिकांश स्त्रियाँ उसी प्रकार का काम करती हैं, पर हज़ारों ऐसी भी हैं, जो फ़र्नीचर, फ़ौलाद, लोहा, मिट्टी, पत्थर, काँच आदि के कारख़ानों में कुशल कारीगरों की हैसियत से काम कर रही हैं। यद्यपि साहित्य, सङ्गीत और चित्रकारी आदि के क्षेत्रों में स्त्रियाँ बहुत दिनों से काम रही हैं। न्यूयार्क रियासत में ऐसी स्त्रियों की संख्या सुन कर लोगों को आश्चर्य हुए बिना नहीं रहेगा! वहाँ की स्त्रियों में से आजकल ३,००० चित्रकार, १,००० सम्पादक और रिपोर्टर, १,००० चिकित्सक, और १०० पादरी हैं। महिला वकीलों की संख्या सन् १९१० में जितनी थी, सन् १९२० में उससे दुगनी हो गई। लेन-देन का

कारबार अब तक स्त्रियों की शक्ति से बाहर समझा जाता था, पर न्यूयार्क में आजकल ४०० महिलाएँ बैङ्कर और १०० जायदादों की एजेण्ट हैं। इसके सिवा बहुसंख्यक महिलाएँ इञ्जीनियर, रासायनिक, और नक़्शानवीस आदि का कार्य करती हैं। सच तो यह है कि आजकल जिन स्त्रियों ने कॉलेज अथवा स्कूल की डिग्री प्राप्त कर ली है, वे ३०-४० साल पहले की स्त्रियों के समान परतन्त्रता और आलस्य की ज़िन्दगी बिताना नहीं चाहतीं। वरन् वे देश के आर्थिक जीवन में सहायता देना, और सब प्रकार के व्यवसायों और धन्धों में भाग लेकर अपने कार्य-क्षेत्र को विस्तृत करना चाहती हैं।

उद्योग-धन्धों में स्त्रियों की संख्या में जो वृद्धि हुई है, उसका कारण यही नहीं है कि स्त्रियाँ इसकी इच्छुक हैं, वरन् उद्योग-धन्धों के कर्ताधर्ता भी स्त्रियों द्वारा काम कराने को बड़े उत्सुक रहते हैं। कारख़ाने वाले यह अनुभव करते हैं कि उनको स्त्रियों से काम कराने में लाभ है और इसलिए वे अपने कारबार के ढङ्ग को इस तरह बदल रहे हैं, जिससे स्त्रियों को काम करने में सुविधा हो। उदाहरण के लिए एक छोटे से क़स्बे में जहाँ, एक कारख़ाने के मालिक को अविवाहिता स्त्रियाँ नहीं मिलती हैं, विवाहिता स्त्रियाँ नौकर रक्खी जाती हैं। वह समझता है कि वे तभी उसके यहाँ काम कर सकती हैं, जब कि कारख़ाने का वक़्त ऐसा हो जिससे उनके घर-बार के काम में बाधा न पड़े। इसलिए कारख़ाना सोमवार को दोपहर के बाद खुलता है और शनिवार को दिन भर बन्द रहता है। इस तरह का दस्तूर कितनी ही फ़ैक्टरियों में देखने में आता है।

जो स्त्रियाँ कारख़ानों में जाती हैं, उनके दो ही उद्देश्य होते हैं। या तो उन्हें अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होती है या काम करने का शौक होता है। चाहे उनके बिना नौकरी किए ही घर का काम मजे में चल रहा हो, तो भी वे अनुभव करती हैं कि अगर वे भी काम करके कुछ पैदा करें तो घर की हालत और अच्छी हो सकती है। यह भाव सभी श्रेणी की स्त्रियों में पाया जाता है।

एक स्त्री ने, जो एक इञ्जिन द्वारा कपड़े धोने के बड़े कारख़ाने में काम करती है, इस विषय में प्रश्न करने पर कहा था कि "यह सच है कि मेरा पति कुटुम्ब के पालन-पोषण के लिए काफ़ी आमदनी कर लेता है, पर मैं अपने बच्चों के लिए कुछ विशेष प्रबन्ध करना चाहती हूँ। मेरी इच्छा है कि वे स्कूल में अधिक समय तक पढ़ सकें और मनोविनोद का अधिक अवसर पा सकें।" इसी तरह के विचार एक वकील महिला ने प्रकट किए थे, जो अपने पति के साथ काम करने जाती है। ये स्त्रियाँ घर को अनिवार्य भार की तरह नहीं समझतीं, वरन् वे उसे कुटुम्ब की उन्नति और विकास का केन्द्र मानती हैं।

कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी हैं, जो घर के नित्य-कर्मों को पसन्द नहीं करतीं और इससे ऊब कर नौकरी कर लेती हैं। कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि अब स्त्रियाँ दिन-प्रतिदिन अधिक संख्या में उद्योग-धन्धों और उच्च श्रेणी के पेशों में योग दे रही हैं। अब वे अपने पतियों और भाइयों के कन्धे से कन्धा भिड़ा कर काम करना चाहती हैं। स्त्रियों को नौकरी मिलने का सुयोग कभी इतना

(५४५वें पृष्ठ का शेषांश)

"ऐसे कब तक भागते-भागते फिरोगे ?"

"चाहे सारे हिन्दुस्तान की धूल छाननी पड़े, पर मेरे ठाकुर जी को कोई मुझसे अलग नहीं कर सकता, यह तू जान ले मुनियाँ। दासू झूठ नहीं बोलता।"

उसके दूसरे ही दिन ब्राह्म-मुहूर्त्त में दासू भगत ने ठाकुर जी की छोटी सी पोटली गले से बाँधी, आँखों में आँसू भर कर जन्मभूमि को बार-बार प्रणाम किया, धूल उठा कर बड़ी श्रद्धा से माथे में लगाई, और एक गठरी कन्धे पर रख राम-राम जपता हुआ उस गाँव को सदा के लिए छोड़ दिया।

मुनियाँ बड़ी दृढ़ता और गौरव के साथ माथा ऊँचा किए हुए, पूजा के सामान की पिटारी हाथ से लटकाए दासू भगत के पीछे चल दी। पीछे फिर कर एक दृष्टि उसने अपने घर पर डाली, एक दृष्टि मिश्र जी के महल पर। जिस गाँव को एक दिन उसने अपने सौन्दर्य से पागल बना डाला था, उसे आज साँप की केंचुली की भाँति त्याग कर दासू भगत के पीछे जा रही है।

धन्य मुनियाँ ! धन्य दासू भगत !!

❀ ❀ ❀

अधिक नहीं था, जितना कि आजकल है। स्त्रियों ने अपनी योग्यता और परिश्रम से सैकड़ों वर्ष के पुराने पक्षपातपूर्ण विचारों को नष्ट कर डाला है और अब वे अपने स्वाभाविक अधिकार प्राप्त कर रही हैं।

❀ ❀ ❀

रूस की औद्योगिक उन्नति

सोवियट रूस ने पिछले दस-बारह वर्षों में आश्चर्यजनक औद्योगिक उन्नति की है। इसके पहले वह भी भारतवर्ष की तरह कृषि-प्रधान देश था और शिल्प-कला सम्बन्धी वस्तुओं के लिए विदेशों का मुखापेक्षी रहता था। पर आज वह केवल अपनी ज़रूरत का सामान ही तैयार नहीं कर रहा है, वरन् दूसरे देशों में अपने कारखानों का माल विक्रयार्थ भेज रहा है। अभी कुछ दिन पहले ही रूस के माल से भरा हुआ एक जहाज़ कराची आया था, जिसमें कपड़ों से लेकर मोटर के टायर तक सब तरह की चीज़ें थीं। अभी तो आरम्भ है, थोड़े समय पश्चात् संसार के अन्य देशों को उसके सामने ठहर सकना असम्भव हो जायगा। कारण यह है कि रूस के कारखानों पर मज़दूरों की सत्ता है और वे अपने कार्य में जितनी दिलचस्पी लेते हैं, उतनी दिलचस्पी उन देशों के मज़दूर नहीं लेते, जहाँ वे ग़ुलामों की तरह रक्खे जाते हैं और मालिकों से असन्तुष्ट रहते हैं। साथ ही अन्य देशों के कारखाने वाले मज़दूरों की मज़दूरी के सिवा एक बड़ी रक़म अपने लिए भी रखते हैं और इसलिए रूस के कारखानों के मुक़ाबले में सस्ता माल नहीं दे सकते। वर्तमान समय में रूस की औद्योगिक परिस्थिति क्या है और वह किस ढङ्ग से कार्य करके उन्नति कर रहा है, इसके सम्बन्ध में एक लेख गुजराती भाषा के साप्ताहिक 'प्रजामित्र अने केसरी' में प्रकाशित हुआ है, जिसका आशय नीचे दिया जाता है :—

सोवियट रूस ने जो पञ्चवर्षीय आयोजन तैयार किया था, उसमें अमेरिका के कला-विशारदों का भी एक विशेष स्थान है। इन अमेरिकनों में जो किसी विशेष उद्योग के विशेषज्ञ हैं, वे 'पायोनियर' कहे जाते हैं। रूस के जो निवासी किसी ज़माने में अमेरिका चले गए थे और वहाँ जिन्होंने कल-कारख़ानों का काम सीखा है, उनमें से कितने ही अब रूस में साम्यवादी-समाज की स्थापना होने से अथवा अमेरिका की आर्थिक हलचल के कारण स्वदेश को वापस आ गए हैं। उनको भी कारख़ानों में महत्वपूर्ण पद दिए गए हैं। इनसे उतर कर रूस के वे इञ्जीनियर हैं, जिन्होंने हेनरी फ़ोर्ड के मोटर के कारख़ाने में अथवा अमेरिका की जनरल एलेक्ट्रिक कम्पनी में काम करके अनुभव प्राप्त किया है।

रूस के बाकू और कास्पियन समुद्र के किनारे मिट्टी के तेल के बड़े-बड़े क्षेत्रों पर दृष्टि डालने से मालूम होता है कि वहाँ अमेरिकन बुद्धि उपयोग में लाई गई है। हर जगह आधुनिक मैशीनें और बिजली की रोशनी दिखलाई देती हैं। मज़दूरों के घरों की व्यवस्था भी वहाँ सर्वोत्तम है। तेल का तमाम व्यवसाय आधुनिक ढङ्ग पर चलाया जाता है। एक समय जहाँ पर्दानशीन कामिनियाँ कन्धे पर पानी की सुराही लेकर चलती थीं, वहाँ आज नवीन युग के विशाल यन्त्रों की ध्वनि सुनने में आती है। इस उद्योग को नवीन ढाँचे में ढालने का श्रेय एक अमेरिकन को ही है, जिसका नाम ए० पी० सेरेब्रोस्की है।

रेलों की वृद्धि के लिए आशालोव नामक अमेरिकन जी-जान से चेष्टा कर रहा है। जब तुर्किस्तान-साइबेरियन रेलवे का उद्घाटन हुआ था, तो दर्शकों ने उसे ज़बर्दस्त बूट पहिने और फ़ौजी पोशाक में सुसज्जित देखा था। उसके सीने पर सोवियट-सरकार द्वारा प्रदान किए गए तमग़े चमक रहे थे। उसने सन् १९१६ में लाल सेना का सञ्चालन करके पैट्रोग्राड (अब लेनिनग्राड) की रक्षा की थी और उसीके उपलक्ष में उसे यह सम्मान प्राप्त हुआ था। अमेरिका में इस व्यक्ति ने एक ज़बर्दस्त रेलवे कम्पनी की स्थापना की थी। आजकल वह सोवियट के 'तर्कसीव' नामक विभाग का प्रधान है, जिसका कार्य रूस में लम्बी से लम्बी रेलवे लाइनें तैयार करना है। आशालोव को अमेरिका में अराजकतावादी आन्दो-

लन के प्रवर्तक होने के कारण जेल की सज़ा भी हुई थी। उसने 'सर्कलीव' में एक नवीन विशेषता यह उत्पन्न की है कि इञ्जीनियरों को केवल सलाह देकर ऑफ़िस में बैठा न रहना चाहिए, वरन् उनको कारख़ाने में जाकर काम भी करना चाहिए। इञ्जीनियर को केवल बातें करने वाला न होना चाहिए, वरन् उसमें ज़रूरत पड़ने पर लोहे के खम्भे उठाने की ताक़त भी होनी चाहिए।

आर्थर पावेल डेविस नाम का अमेरिकन, जो कैली-फ़ोर्निया का निवासी है और अमेरिकन रीक्लेमेशन-सर्विस का प्रधान था, मध्य एशिया में नहरें खुदवाने का कार्य कर रहा है। इन नहरों से सोवियट सरकार तुर्किस्तान में कपास की खेती की उन्नति करना चाहती है। इसके लिए डेविस ने बोख़ारा और समरक़न्द से लेकर हिन्दुस्तान की सीमा पर पामीर और हिन्दूकुश तक अच्छी तरह सफ़र किया है। टॉमस वोकर नाम का अमेरिकन मध्य एशिया से आर्कटिक समुद्र तक फैले हुए जङ्गल के प्रबन्ध और उन्नति के लिए ज़िम्मेदार है। इस जङ्गल में अपार लकड़ी का भण्डार है और उससे रूस को बहुत आमदनी हो सकती है।

रूस में इस प्रकार विदेशियों को नौकर रखना कोई नई बात नहीं है। दो सौ वर्ष पूर्व जब महान पीटर ने रूस के उद्योग-धन्धों की उन्नति का विचार किया था, तो उसने समस्त यूरोप के कारीगरों को अपने यहाँ बुला कर रक्खा था। १९१७ की क्रान्ति के पश्चात् रूस के तमाम कारख़ाने, जिनमें से बहुतों के मालिक विदेशी लोग थे, सरकार ने ज़ब्त कर लिए और उनमें काम करने वाले इञ्जीनियर अपने देशों को चले गए। पर रूस के साम्यवादी नेताओं को भली-भाँति पता था कि विदेशी कारीगरों और कला-विशारदों के बिना हमारा काम चल नहीं सकता। लेनिन ने कितनी ही बार कहा था कि हमने पूँजीवाद का नाश अवश्य किया है, पर उसकी कला-कुशलता का ज्ञान प्राप्त करना हमारे लिए परमावश्यक है। किस तरह माल तैयार करना और किस तरह उसमें नवीनता और मज़बूती लाना, यह अच्छी तरह जानना ज़रूरी है। सन् १९३१ में स्टेलिन ने अपने भाषण में कहा था—"हर एक रूसी भाई का कर्तव्य है कि वह यन्त्र-विशारद बने। वर्तमान समय के साम्यवादियों को मैशीन के कार्य में निपुण होना चाहिए।" पर जब तक कोई बतलाने वाला न हो, तब तक बड़ी-बड़ी मैशीनों का भेद समझ सकना और उनसे माल तैयार कर सकना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। इसलिए क्रान्ति के पश्चात् सोवियट सरकार को स्वभावतः यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि अपने औद्योगिक विकास के लिए विदेशी यन्त्र-विशारदों को बुला कर अपने देशवासियों को इन कार्यों में शिक्षित बनावे।

पहले तो यह विचार किया गया था कि विदेशों के कारख़ाने वालों को रूस में उद्योग-धन्धे आरम्भ करने और उनके साथ हिस्सा बँटा लेने से काम चल जायगा। इस तरीक़े से विदेशी कारख़ाने वाले ख़ूब नफ़ा उठाने लगे। तो भी यह आशा थी कि विदेशी यन्त्र-कला-विशारदों के साथ रह कर रूस वाले भी इन कार्यों में निपुण हो जायँगे। पर बाद में इस पद्धति में अनेक दोष जान पड़े और इसे धीरे-धीरे त्याग दिया गया।

जब पञ्च-वर्षीय आयोजन आरम्भ हुआ, तो रूस में इतने बड़े-बड़े कारख़ानों की स्थापना होने लगी, जिनकी तुलना संसार में मिल सकनी कठिन है। इनमें विदेशी यन्त्र-विशारद अपने आप आने लगे। इनमें से अधिकांश अमेरिका और जर्मनी के हैं। अमेरिकन कम्पनियाँ ख़ासकर स्टील, मोटर, ट्रेक्टर, बिजली के सामान और कोयले के काम में अग्रसर हैं। रूस ने मोटर और ट्रेक्टर के बड़े-बड़े कारख़ाने खोले और इनमें अमेरिका वालों से सहायता ली। १९३१ के अन्त में रूस के मोटर और ट्रेक्टर के कारख़ानों में सात सौ चालीस विदेशी इञ्जीनियर और फ़ोरमैन तथा अमेरिका के छः सौ निपुण कारीगर थे।

नीजनी नोवगोराड की मोटर फ़ैक्टरी हेनरी फ़ोर्ड के कारख़ाने की बिल्कुल नक़ल है। इसमें प्रति वर्ष १ लाख ४० हज़ार मोटरें और माल लादने की लॉरियाँ तैयार होने का अनुमान किया गया है। स्टेलिनग्राड और खारकोव की ट्रेक्टर फ़ैक्टरियाँ अमेरिका की फ़ैक्टरियों से कहीं बड़ी हैं। हर एक में प्रति वर्ष ५० हज़ार ट्रेक्टर तैयार हो सकते हैं।

अमेरिका की जनरल इलैक्ट्रिक कम्पनी ने सन् १९२८ में रूस के हाथ २ करोड़ ६० लाख डॉलर का

बिजली का सामान बेचा था। वह बिजली के कारख़ाने क़ायम करने में रूस की बहुत सहायता कर रही है। नीपर नदी के कारख़ाने में ६॥ लाख हार्स पॉवर की बिजली उत्पन्न की जाती है। यूरोप में इससे बड़ा बिजली का कारख़ाना दूसरा नहीं है। शिकागो की स्टुअर्ट जेम्स एण्ड कुक कम्पनी रूस की कोयले की ख़ानों का काम धूमधाम से चला रही है। साइबेरिया में स्टील का एक कारख़ाना खोला गया है।

अधिकांश अमेरिकन रूस में तनख़्वाह पर काम करते हैं। हेनरी फ़ोर्ड, जनरल मोटर्स, इण्टर नेशनल हारवेस्टर आदि कम्पनियों के कर्मचारी प्रायः वहाँ नौकरी के लिए फिरते रहते हैं। इससे प्रकट होता है कि अमेरिका में बेकारी दिन पर दिन बढ़ रही है। रूस भी अपने यहाँ के युवकों को मैशीनों के सम्बन्ध में शिक्षा प्राप्त करने विदेश भेजता है। सोवियट के अधिकारियों को इस बात का बड़ा ध्यान रहता है कि युवकों को सब से पहले अवसर दिया जाय। वे नवयुवकों को बड़ी ज़िम्मेवारी के पदों पर नियुक्त कर देते हैं। ये रूसी युवक बड़े-बड़े पदों पर रह कर भी कारख़ानों में अपने हाथ से काम करते हैं, जिसका प्रभाव छोटे दर्जे के कर्मचारियों और मज़दूरों पर अद्भुत पड़ता है। इस प्रकार की नीति के कारण आज के दिन जब समस्त देशों में बेकारी की विकट समस्या सामने खड़ी है तथा लाखों योग्य व्यक्तियों को भूखों मरना पड़ रहा है, रूस में मानव-प्रगति का नवीन इतिहास रचा जा रहा है।

❀ ❀ ❀

महिला राजनीतिक क़ैदियों से व्यवहार

वर्तमान सत्याग्रह-संग्राम में पुरुषों के साथ कितनी ही महिलाएँ भी जेल जा रही हैं। इसके पहले महिला क़ैदियों की संख्या बहुत कम रहती थी और उनकी व्यवस्था की तरफ़ किसी का ध्यान नहीं जाता था। पर अब उनकी संख्या में अकस्मात् वृद्धि हो जाने और उच्च श्रेणी की तथा समाज में अग्रगण्य महिलाओं के जेल जाने से इस प्रश्न की तरफ़ जनता का ध्यान आकर्षित हुआ है। समाचार-पत्रों में भी इस सम्बन्ध में लिखा-पढ़ी और आन्दोलन हो रहा है। मद्रास के 'स्त्री-धर्म' (अङ्गरेज़ी) ने इस विषय में एक संक्षिप्त सम्पादकीय नोट लिखा है, जिसका भावानुवाद नीचे दिया जाता है :—

देश की कितनी ही जेलों में महिला राजनीतिक क़ैदियों के साथ जैसा दुर्व्यवहार हो रहा है, उसके विरोध में समाचार-पत्रों में कई बार लिखा जा चुका है। वेलोर जेल में 'सी' क्लास की महिला क़ैदियों को जीवन-निर्वाह की अत्यन्त आवश्यक वस्तुएँ भी नहीं दी जातीं। इसी जेल से नाममात्र के अथवा काल्पनिक अपराध पर दो महिलाओं को मदूरा की जेल में साधारण क़ैदियों के साथ रहने को भेज दिया गया, जिसके परिणाम-स्वरूप एक महिला का शारीरिक स्वास्थ्य नष्ट हो गया और मानसिक दशा पर भी बड़ा कुप्रभाव पड़ा। ख़बर है कि इन क़ैदियों को मट्ठा, जो कि दक्षिण प्रान्त के शाकाहारी लोगों के भोजन का एक विशेष पदार्थ है और जिसमें ख़र्च भी बहुत कम पड़ता है, देने से भी जान-बूझ कर इनकार किया गया। इस परिस्थिति में हम विवश होकर इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि राजनीतिक कार्यकर्ताओं को जेल भेजने से सरकारी अधिकारियों का अभिप्राय केवल उनको कार्य करने से रोकना नहीं है, वरन् उन लोगों ने अपने विश्वास के अनुसार जो काम किया है, उसका बदला लेना है। हम 'इण्डियन सोशल रिफ़ॉर्मर' से एक लेख का कुछ अंश उद्धृत करते हैं, जिससे पाठकों को महिला क़ैदियों के साथ होने वाले अनुचित व्यवहार का कुछ पता लग जायगा।

"महिला राजनीतिक अभियुक्तों के स्वास्थ्य, स्वभाव और शिक्षा का कुछ ख़्याल न करके उन्हें लम्बी और कड़ी क़ैद की सज़ाएँ दी जाती हैं। उनको एक जेल से दूसरी जेल में जल्दी-जल्दी बदला जाता है। यह बदलने का कार्य प्रायः बड़े कुसमय में होता है और क़ैदियों को यह भी नहीं बतलाया जाता कि उनको कहाँ जाना पड़ेगा। इससे महिलाओं के हृदय में एक अव्यक्त भय उत्पन्न हो जाता है। जब कि थाना जेल से आठ महिला

पाते रहने के कारण ही इन लोगों में यह निराशा का भाव उत्पन्न हुआ है. और इसलिए जो लोग सौभाग्य-वश अच्छी परिस्थिति में हैं, उनको इस सम्बन्ध में सहायता करना आवश्यक है।

भारतवर्ष के अधिकांश ग्रामों की समस्या शिक्षा, सफ़ाई और दरिद्रता की है। वे लोग अज्ञान में पड़े हुए हैं, उनका रहन-सहन अस्वास्थ्यकर है, उनके आस-पास बड़ी गन्दगी रहती है, और इसके परिणाम-स्वरूप वे सहज ही में किसी भी महामारी के शिकार हो जाते हैं, और वैसे भी प्रायः अकाल में ही मरते रहते हैं। बौहरों के लूटने, मुक़दमेबाज़ी, दूरदर्शिता के अभाव और सब से बढ़ कर देश में फैले हुए अर्थाभाव के कारण उनको सदा भीषण दरिद्रता में जीवन बिताना पड़ता है। पर यदि शिक्षा की समस्या हल हो जाय तो और बहुत सी समस्याओं का हल होना सहज हो जायगा।

❀ ❀ ❀

मन्त्र-दीक्षा का ढोंग

'चाँद' के पिछले अङ्क में हमने एक गुजराती साप्ताहिक पत्र का लेख प्रकाशित किया था, जिसमें मालवीय जी द्वारा अछूतों को मन्त्र-दीक्षा देने का विरोध किया गया है। उसी प्रकार की सम्मति लाहौर से प्रकाशित होने वाले हिन्दी मासिक पत्र 'युगान्तर' ने अगस्त के अङ्क में प्रकट की है, जिसे हम पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे उद्धृत करते हैं :—

श्रीमान मालवीय जी इस कलिकाल में पतित-पावन बने हैं। आप अछूतों को मन्त्र-दीक्षा देकर पवित्र कर रहे हैं। ब्राह्मण देवता के मुख से 'नमो भगवते वासुदेवाय' की गुनगुनाहट सुन कर ही हमारे अछूत भाइयों का उद्धार हो जायगा। हम तो केवल भगवन्त को ही पतित-पावन सुनते आए हैं, पर अब मालूम हुआ कि कुछ मनुष्य भी अपने को पतित-पावन समझते हैं।

मनुष्यता का कितना भारी अपमान है! इस साम्यवाद और प्रजातन्त्र के युग में भी एक मनुष्य अपने को केवल जन्म के कारण इतना ऊँचा समझता है कि वह दूसरे मनुष्यों को नीच और पतित मान कर अपनी गुनगुनाहट से उनका उद्धार कर सकता है! ब्राह्मण की यह जन्म की उच्चता ही तो अछूतपन का मूल कारण है। और मन्त्र-दीक्षा का ढोंग रच कर उसी उच्चता को और भी दृढ़ किया जा रहा है। यह रोग की चिकित्सा नहीं; यह तो उसे और भी बढ़ाना है। इस युग में इस मन्त्र-दीक्षा का मूल्य ही क्या है? यह ढोंग तो शङ्कराचार्य के समय में रचा जाना चाहिए था, जब वेद-मन्त्र सुन लेने पर शूद्र के कान में पिघला हुआ सीसा भर दिया जाता था और मन्त्र उच्चारण करने पर उसकी ज़बान काट डाली जाती थी। (देखिए गौतम धर्म-सूत्र १२४ और ब्रह्मसूत्र शङ्कर भाष्य आ० १० प० ३, अध्याय १ सूत्र ३८)। इस समय तो कोई भी अछूत बालक यूनिवर्सिटी कॉलेज में भर्ती होकर वेद पढ़ सकता है। कई अछूत भाई पढ़ भी चुके हैं, और किसी भी जन्माभिमानी को अङ्गरेज़ी राज्य में उनके कान में सीसा भरने या उनकी जिह्वा काट डालने का साहस नहीं हो सकता। आज अधेले-अधेले को सन्ध्या और गायत्री मन्त्र बिक रहे हैं। इस समय 'नमो भगवते वासुदेवाय' की गुनगुनाहट का महत्व ही क्या है?

सनातनी पत्र 'आनन्द' लिखता है कि 'अन्त्यज हिन्दुओं को उन बातों और उन कामों से बचाए रखने के लिए, जिनसे कि वे साफ़ और शुद्ध नहीं रह सकते, और उनको समाज में मिल-जुल कर बैठने का अधिकार दिलाने के लिए पूज्य मालवीय जी ने यह नुस्ख़ा तजवीज़ किया है कि उन्हें दीक्षा दी जाय।' हम 'आनन्द' का कुछ मतलब नहीं समझ सके। क्या उसका आशय यह है कि मन्त्र-दीक्षा लेने के बाद भङ्गी टट्टी उठाना बन्द कर दे, चमार जूते बनाना छोड़ दे और भँजड़ा छाज न बनाए? यदि उसका यही आशय है, तो हम पूछते हैं कि इन कामों को फिर कौन करे? क्या इन कामों को करने वाले मुसलमान या ईसाई हो जाएँ, क्योंकि आपकी दृष्टि में तो यह काम करने वाले हिन्दू समाज में मिल कर नहीं रह सकते? सहस्रों ब्राह्मण, क्षत्रिय और बनिए अत्यन्त मैले और गन्दे रहते हैं; कोई उन्हें अछूत नहीं ठहराता।

इसके विपरीत बहुतेरे अछूत ग्रेजुएट और वकील हैं और उन सबको मन्त्र-दीक्षा देकर शुद्ध करने की आवश्यकता है !! मालूम नहीं आप किस युग की बातें कर रहे हैं? इस समय अवस्था बिलकुल उलटी है। हिन्दुओं से मिल-जुल कर रहना तो दूर, अछूत लोग हिन्दू ही रहना नहीं चाहते। और आप उनके लिए मन्त्र-दीक्षा का बन्धन लगा रहे हैं। यह तो वही बात हुई :—

जोरू फिरे नथ गढ़ावन नूँ।
ताँ ख़सम फिरे नक्क बढ़ावन नूँ ॥

अर्थात्—"स्त्री तो नथुनी बनवाने के लिए ज़ोर दे रही है और पति उसकी नाक ही काट डालने की फ़िक्र में है।" अछूतों को इस समय मन्त्र-दीक्षा की आवश्यकता नहीं। उन्हें तो मनुष्यता के अधिकार चाहिए। आप इनको अपने कुओं पर चढ़ाने को तैयार नहीं, अपने भोजनालयों में खाना खिलाने को तैयार नहीं; अपने मोहल्लों में रहने देने के लिए तैयार नहीं; उनको राजनीतिक अधिकार देने को तैयार नहीं; ऐसी अवस्था में वे मन्त्र-दीक्षा को शहद लगा कर चाटें? क्या इससे उनके उपर्युक्त कष्ट दूर हो सकते हैं? बात तो वास्तव में यह है कि हिन्दुओं की मनोवृत्ति अभी नहीं बदली। वे अछूतों को वास्तव में समता के अधिकार देना नहीं चाहते। जब मुसलमानों की लाठियाँ और छुरे उनके सामने मृत्यु का रूप धारण करके प्रकट होते हैं, तब उन्हें अछूतों की याद आती है। मगर सङ्कट टल जाने पर परनाला वहीं का वहीं रहता है।

काले बादल

[श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान]

हे काले-काले बादल,
ठहरो तुम बरस न जाना।
मेरी दुखिया आँखों से,
देखो मत होड़ लगाना ॥

❀

तुम अभी-अभी आए हो,
यह पल-पल बरस रही हैं।
तुम चपला के सङ्ग ख़ुश हो,
यह व्याकुल तरस रही हैं!

तुम गरज-गरज कर अपनी,
मादकता क्यों भरते हो?
इस विधुर हृदय को मेरे,
नाहक़ पीड़ित करते हो ॥

❀

मैं उन्हें खोजती फिरती,
पागल सी व्याकुल होती।
गिर जाते इन आँखों से,
जाने कितने ही मोती !!
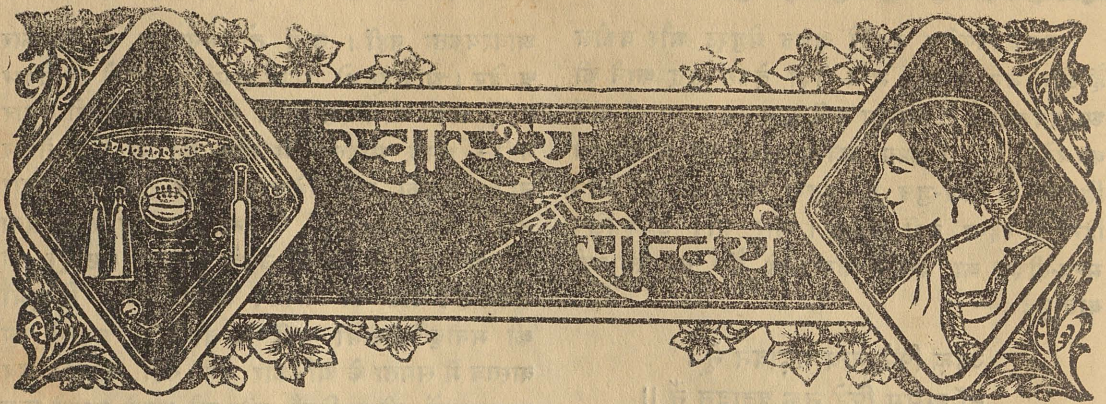
सर्वोत्तम व्यायाम

वर्तमान समय में ज्ञान-विज्ञान की अभूतपूर्व उन्नति होते हुए और सुख, सुरक्षा और सुभीते के तमाम साधनों के उपस्थित होते हुए भी संसार में एक बड़ी भारी त्रुटि देखने में आ रही है, जो इस तमाम उन्नति पर एक प्रकार से पानी फेर देती है और इसके महत्व को बहुत धुँधला कर देती है। वह त्रुटि है मनुष्यों की स्वास्थ्य सम्बन्धी निर्बलता। आजकल चिकित्सा-विज्ञान इतनी अधिक उन्नति कर चुका है कि अगर यह कहा जाय कि डॉक्टर लोग मरे आदमी को जिला सकते हैं, तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं। आजकल के कुशल सर्जन मनुष्यों के समस्त अवयवों को चाहे जैसे काट-छाँट कर फिर से इस तरह से नए ढङ्ग का बना देते हैं, जैसे कोई मूर्तिकार मिट्टी को तोड़-मरोड़ कर मनमानी मूर्ति बना देता है। पर इतना होने पर भी मनुष्यों का स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरता जाता है। हमारे देश की बात तो छोड़ दीजिए, यहाँ के लोग तो संसार के सबसे बड़े रोग—भूख की बीमारी—में इतने अधिक फँसे हुए हैं कि उनको दूसरी जितनी भी बीमारियाँ हों, वह कम हैं। यहाँ के लोगों के स्वास्थ्य की दशा की तो आलोचना करना ही निरर्थक है। पर यूरोप, अमेरिका के देश, जो सम्पत्ति और वैभव के भण्डार बने हुए हैं और जो सब प्रकार के आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की खान हैं, वहाँ के लोगों के स्वास्थ्य की दशा भी अच्छी नहीं। वहाँ की सरकार और डॉक्टर असीम परिश्रम करके और करोड़ों-अरबों रुपए ख़र्च करके किसी एक रोग को निर्मूल करते हैं, तो उसकी जगह दो नए रोग पैदा हो जाते हैं। अगर यह बात न होती तो उन देशों में इतने अधिक डॉक्टरों और अनगिनती पेटेण्ट औषधियों की सृष्टि देखने में न आती।

इस त्रुटि का एकमात्र कारण वर्तमान समय का कृत्रिम रहन-सहन है। विज्ञान के द्वारा कल-कारख़ानों, व्यापार-व्यवसाय में जो घोर परिवर्तन हुआ है और उसके फल से भारी-भारी और गन्दी आबहवा वाले शहरों की जैसी वृद्धि हुई है, उससे अधिकांश मनुष्यों के लिए स्वाभाविक जीवन बिताना कठिन हो गया है और वे प्रकृति से बहुत दूर रहने लगे हैं। ग़रीब लोग धनाभाव और जीवन की साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति न होने के कारण मरते रहते हैं और धनवान लोग मनमानी सम्पत्ति और ऐश के साधन पा जाने से दुर्व्यसनों अथवा आलस्य के शिकार बन कर नष्ट हो जाते हैं। विशेषकर व्यापारिक प्रतियोगिता और अन्तर्राष्ट्रीय जटिल परिस्थितियों के कारण मनुष्य के जीवन में बड़ी व्यग्रता उत्पन्न हो गई है और वह प्रत्येक काम को जल्दी से जल्दी पूरा करने की इच्छा रखता है। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए रेल, मोटर, हवाई जहाज़, तार, टेलीफ़ोन आदि का आविष्कार हुआ है, जिससे देश और काल का अन्तर नाममात्र को शेष रह गया है। इस परिवर्तन के कारण मनुष्य की कार्यकारिणी शक्ति अवश्य बहुत अधिक बढ़ गई है, पर वह एक प्रकार से अपङ्ग सा बनता जाता है। आजकल बड़े शहरों के रहने वाले अधिकांश मनुष्यों के लिए चार-छः कोस चल

सकना पहाड़ उठाने के समान मुश्किल काम हो गया है और देहात के रहने वाले भी जहाँ तक रेल या मोटर-लॉरी पा सकते हैं, पैदल चलना पसन्द नहीं करते। इसका फल मनुष्यों के स्वास्थ्य के लिए बड़ा घातक हुआ है और वे शारीरिक श्रम और साफ़ हवा के अभाव से दिन पर दिन निर्बल और निस्तेज बनते जाते हैं।

पश्चिमी देशों के कितने ही विद्वानों को मनुष्य-जीवन की यह कृत्रिमता बहुत खटकने लगी है और वे प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने पर बहुत ज़ोर देने लगे हैं। उनके मत से मनुष्य को सादा तौर पर रहना और खाना-पीना चाहिए, अधिकांश समय खुली हवा और धूप में बिताना चाहिए, और शरीर से ख़ूब परिश्रम करना चाहिए। उनका कहना है कि इस प्रकार का स्वाभाविक जीवन ही आजकल फैली हुई असंख्य बीमारियों और स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्त दोषों की एकमात्र दवा है। इसी सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए एक सुप्रसिद्ध अमेरिकन प्रकृतिवादी ने सवारियों के दोषों और पैदल चलने के लाभों पर बहुत सी उपयोगी बातें बतलाई हैं। उनका कहना है कि शरीर की जीवनी शक्ति को बनाए रखने के लिए पैदल चलना एक अनिवार्य बात है। यह एक ऐसा व्यायाम है, जिसकी प्रशंसा कर सकना असम्भव है। चाहे मनुष्य और कितनी भी तरह-तरह की कसरतें क्यों न करे, पर पैदल घूमने की आदत उसे अवश्य रखनी चाहिए। क्योंकि ऐसी कोई भी कसरत नहीं है, जो इसकी कमी को पूर्ण कर सके। यूरोप और अमेरिका के सभी अच्छे खिलाड़ी और पहलवान इस नियम का पालन करते रहते हैं। अन्य अनेक प्रकार की कसरतों द्वारा रग-पुट्ठों को मज़बूत अवश्य बनाया जा सकता है, पर हृदय और फेफड़ों की शक्ति, जोकि जीवन का मूल है, सिवाय पैदल घूमने के किसी और कसरत द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती।

घूमना मनुष्य की जीवनी शक्ति को सुदृढ़ बनाता है, और सहनशक्ति को बहुत अधिक बढ़ा देता है। इससे मनुष्य की शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की उन्नति होती है। अगर तुम्हारा मन और शरीर निर्बल पड़ गया है, तो तुम्हारे शारीरिक सङ्गठन को सम स्थिति पर लाने के लिए घूमने से बढ़ कर कोई उपाय नहीं हो सकता। घूमने से समस्त शरीर में अच्छी तरह से रक्त-सञ्चार होने लगता है। यह रक्त के दूषित अंश को साफ़ करके उसके स्थान में नवीन और शुद्ध रक्त उत्पन्न करने में बड़ी सहायता पहुँचाता है। शुद्ध रक्त ही स्वास्थ्य के उत्तम रहने का प्रधान साधन है। मनुष्य के देह में सदा मृतक परमाणु इकट्ठे होते रहते हैं और यदि वे शीघ्र ही बाहर न निकाल दिए जायँ, तो तरह-तरह के रोगों को उत्पन्न करते हैं। उदाहरणार्थ गठिया की बीमारी जैसा भयङ्कर रोग इसी दोष के कारण उत्पन्न होता है।

आजकल के ज़माने में अधिकांश लोग एक प्रकार से 'चलना' भूल गए हैं। पिछले कुछ वर्षों में आवागमन के साधनों की इतनी उन्नति हुई है कि हम हर जगह सवारी पर चढ़ कर जा सकते हैं। अगर आदमी चाहे तो उसे कभी चलने को ज़रूरत नहीं पड़ सकती। इस प्रकार चलने की कमी से मनुष्य में जैसी हीनता पैदा होती जाती है, उसका अनुमान लगा सकना मुश्किल है। आजकल मोटरों का दाम इतना घट गया है कि साधारण हैसियत का आदमी भी किसी न किसी तरह की गाड़ी ख़रीद सकता है। हम लोग जहाँ चाहें वहाँ तेल या कोयले की शक्ति से जा सकते हैं। ऐसी दशा में आजकल के ज़माने के साधारण आदमी, अगर उनको कभी मील दो मील चलने का भी काम पड़ जाय, तो थक कर वे चूर हो जाते हैं।

भविष्य के इतिहासकार जब इस ज़माने का हाल लिखेंगे, तो वे सम्भवतः इसका 'यन्त्र द्वारा चलने का युग' के नाम से वर्णन करेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि बीस-पचीस वर्ष में ही हम लोग 'उड़ने वाले युग' में जा पहुँचेंगे, जब कि सब लोग पक्षियों की तरह उड़ सकने में समर्थ होंगे। पर इसमें सन्देह है कि हम कभी भी पक्षियों की तरह अपने अङ्गों की शक्ति से हवा में उड़ने लायक़ बन सकेंगे। हमको किसी दूसरे साधन से ही शक्ति प्राप्त करनी पड़ेगी।

ऐसा प्रतीत होता है कि जब हम उड़ते-उड़ते थक जायँगे, तब हम इस योग्य हो सकेंगे कि चलने के वास्तविक महत्व को समझ सकें। उस समय हमारे लिए होरिसमेन नाम के विद्वान की कही हुई यही उक्ति चरितार्थ होगी कि "संसार का अन्तिम मनुष्य

अपने समस्त ज्ञान-भण्डार से वही चीज़ प्राप्त करेगा, जिसका संसार के सबसे पहले मनुष्य ने बिना किसी प्रकार के ज्ञान के उपभोग किया था।" अति प्राचीन काल के मनुष्यों का मुख्य काम घूमना-फिरना था। प्रतिदिन बीस-तीस मील चलना उनके लिए कोई बात ही न थी। वे लोग बिना किसी कठिनाई के सैकड़ों मील का सफ़र कर सकते थे।

सम्भव है कि संसार में ऐसा समय आने वाला है, जब कि पैदल यात्राएँ उसी प्रकार पसन्द की जाने लगें, जिस प्रकार आजकल मोटर द्वारा यात्रा करना पसन्द किया जाता है। अगर तुम छुट्टियों में सैर के लिए जाना चाहते हो और इच्छा रखते हो कि उसके द्वारा तुम्हारे स्वास्थ्य की आश्चर्यजनक उन्नति हो, तो तुमको अपना समय पैदल घूमने में बिताना चाहिए। तुम अपनी पसन्द का कोई भी प्रदेश चुन लो और आवश्यक समझो तो वहाँ तक रेल द्वारा जाओ। वहाँ पहुँच कर गाड़ी से उतर पैदल चलने लगो। जब तक थक न जाओ, तब तक चलना जारी रक्खो। इसके बाद जब तुम भोजन करने बैठोगे तो उसमें तुमको निराला ही आनन्द आवेगा। उसके बाद थोड़ी देर विश्राम करके फिर चलना शुरू कर दो। इस तरह की पैदल यात्रा को खाते और विश्राम करते बराबर जारी रक्खो। इससे तुम्हारी भूख और पाचन शक्ति में आश्चर्यजनक उन्नति होगी। तुमको भोजन में वैसा ही स्वाद और आनन्द आने लगेगा, जैसा बचपन में आया करता था। जो समस्याएँ तुम्हें इस समय परेशान करती रहती हैं, वे सम्भवतः सब हवा में उड़ जायँगी। उस समय तुमको उनका हल करना बहुत ही सहज और सुखकर प्रतीत होगा।

पैदल घूमने से दिमाग़ की शक्ति बड़ी शीघ्रता से बढ़ती है। इससे मनुष्य की मानसिक दृष्टि स्वच्छ और तीव्र बन जाती है और वह कहीं अधिक निश्चयात्मक और सन्तोषप्रद तरीक़े से सभी प्रश्नों का निर्णय कर सकता है। अगर मनुष्य सवेरे चार-पाँच बजे उठ कर चार-पाँच घण्टे घूम ले तो उसकी शारीरिक और मानसिक दशा में आश्चर्यजनक उन्नति हो जायगी, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं। इस व्यायाम की सब से बड़ी ख़ूबी यह है कि यह बहुत ही सहज में किया जा सकता है। तुम चाहे कहीं भी रहो, पर तुमको घूमने को जगह मिल ही सकती है। अगर तुम शहर में रहते हो, तो तुम देहात की तरफ़ घूमने को जा सकते हो। अगर तुम बन्द स्थान में काम करते हो, तो तुम्हारे शरीर को जब अधिक जीवनी शक्ति की आवश्यकता प्रतीत हो तो तुम दिन में दो-चार घण्टे के लिए बाहर घूम सकते हो।

यह व्यायाम ऐसा अमूल्य और जीवनी शक्ति का उत्पादक है, कि जिन अनेक पुरानी बीमारियों का इलाज बड़े-बड़े डॉक्टरों से नहीं हो पाता, वे इसके द्वारा सहज ही में दूर हो सकती हैं। अगर तुम थोड़ी ही दूर चल सकने में समर्थ हो, तो भी तुम इस व्यायाम को कर सकते हो और धीरे-धीरे अपनी चलने की शक्ति को बहुत अधिक बढ़ा सकते हो। अगर आरम्भ में तुमको केवल आधा मील चलने से थकावट मालूम होगी, तो अभ्यास द्वारा कुछ दिनों में नित्य दस-बारह मील तक आसानी से घूम सकोगे। इससे तुम्हारी जीवनी शक्ति और सहनशक्ति की वृद्धि होगी, शरीर के प्रत्येक अङ्ग तथा शरीर के प्रत्येक परमाणु पर इसका असर पड़ेगा, रक्त-सञ्चार की गति बढ़ेगी और तुम्हारे स्वास्थ्य और शक्ति में बहुत अधिक उन्नति दिखलाई पड़ेगी। यदि तुम काफ़ी समय तक इस प्रकार का व्यायाम करते रहोगे, तो हर तरह से वास्तविक अर्थ में मनुष्य बन जाओगे।

अगर तुम पर्याप्त परिमाण में पैदल घूमने की प्रवृत्ति को क़ायम रक्खोगे, तो इससे तुमको अपने जीवन में कहीं अधिक शक्ति का अनुभव होगा। अगर तुम नियमित घूमने का क्रम जारी रक्खोगे, तो तुम्हारा हर एक दिन हर तरह से अधिकाधिक पूर्ण और सन्तोषप्रद होगा। यह कहना भी अतिशयोक्ति नहीं है कि इससे तुम्हारी आयु भी काफ़ी बढ़ जायगी। अधिकांश मनुष्य जो समय से पहले मर जाते हैं, उसका कारण जीवनी शक्ति की कमी ही होता है और इस शक्तिहीनता का कारण प्रायः बैठे-बैठे काम करना होता है। वे लोग अपने अङ्गों का उपयोग नहीं करते और स्वास्थ्य के नियमों की अवहेलना करते रहते हैं।

जिस प्रकार भारतवर्ष में कुश्ती और क्रिकेट, फ़ुटबॉल आदि के मैच हुआ करते हैं, उसी प्रकार यूरोप,

अमेरिका में पैदल चलने के भी मैच हुआ करते हैं। और जिस प्रकार हमारे यहाँ कितने ही पहलवान केवल कुश्ती लड़ने का ही पेशा करके अपना निर्वाह करते हैं, उसी प्रकार ये चलने वाले भी यही पेशा करते हैं। प्रायः देखा जाता है कि ये चलने वाले बड़ी उम्र के हो जाने पर भी जवान दिखलाई पड़ते हैं। जेम्स हाकिङ्ग नाम के व्यक्ति की उम्र इस समय पचास वर्ष से ऊपर हो चुकी है, पर वह अभी तक नवयुवक मालूम होता है। उसमें जीवनी शक्ति कूट-कूट कर भरी है। उसके लिए चलना ऐसा ही आवश्यक है, जैसा कि खाना और सोना। प्रति दिन दस से बीस मील तक चले बिना उसके शरीर को चैन नहीं मिलता।

हमारे जङ्गली अवस्था में रहने वाले पूर्वजों को अपने जीवन-निर्वाह के लिए चलना पड़ता था। इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं कि उस अति प्राचीन काल में उनमें से अधिकांश शिकार द्वारा ही अपना पेट भरते थे और उस अतीत युग में आजकल के बन्दूक़धारी और साथ में कुत्ता रखने वाले शिकारियों की अपेक्षा उनको जानवरों के पकड़ने के लिए बहुत अधिक दौड़-धूप करनी पड़ती थी।

पैर और हाथों की रचना काम करने के लिए की गई है। हमारी टाँगें ख़ासकर ठोस और भारी मांस-पेशियों से बनी हैं। जब उनको ठीक तरह से काम में लाया जाता है, तो ख़ून जल्दी-जल्दी दिल, फेफड़े और समस्त अङ्गों में होकर दौड़ने लगता है और उससे वास्तविक जीवनी शक्ति का उद्भव होता है। उस दशा में तुम्हारा ज्ञान उज्ज्वल हो जाता है, तुम प्रत्येक बात को अधिक अच्छी तरह समझ सकते हो और सच्चे अर्थ में जीवन को प्राप्त करते हो।

चलते समय गहरी साँस लेना भी परमावश्यक है। ख़ासकर शुद्ध और खुली हुई हवा में ज़ोर से साँस लेने से देह में बड़ी चैतन्यता आती है और अपरिमित लाभ पहुँचता है।

एक साधारण श्रेणी का व्यक्ति, जोकि पचास से सत्तर वर्ष की उम्र में मर जाता है, अगर उचित रीति से पैदल घूमने की आदत बना ले, तो सहज में सत्तर से नब्बे वर्ष तक ज़िन्दा रह सकता है।

किसी आदमी को प्रतिदिन कितना चलना चाहिए, यह उसकी शक्ति पर आधार रखता है। कभी-कभी इतनी दूर तक चलना, जब तक कि ख़ूब थकावट न लग जाय, अच्छा है। यह आवश्यक नहीं कि ऐसा प्रतिदिन किया जाय, पर छुट्टियों में, शनीचर या इतवार के दिन, या जब कभी अवसर मिले, एक दिन अधिकांश समय पैदल घूमने में व्यतीत करना लाभदायक है। इस प्रकार की आदत से तुम्हारी आर्थिक दशा, तुम्हारा गृह-जीवन और तुम्हारी आध्यात्मिक दशा की वास्तव में बहुत-कुछ उन्नति हो सकेगी। और यदि तुम दीर्घजीवन की कुछ भी कामना रखते हो, तो निश्चय समझ लो कि इस उपाय से तुम्हारे आयु-बल में निस्सन्देह कई वर्ष की वृद्धि हो जायगी।

जो लोग इस उपाय से जीवनी शक्ति प्राप्त करते हैं, उन पर किसी रोग का आक्रमण नहीं हो सकता। तुम जीवन-तत्व से ऐसे परिपूर्ण बन जाओगे, तुम्हारा स्वास्थ्य ऐसा सुदृढ़ हो जायगा, तुम्हारी नस-नस में ऐसी चैतन्यता भर जायगी कि बीमारियों के बीजाणुओं का तुम्हारे ख़ून की धारा में ठहर सकना असम्भव हो जायगा।
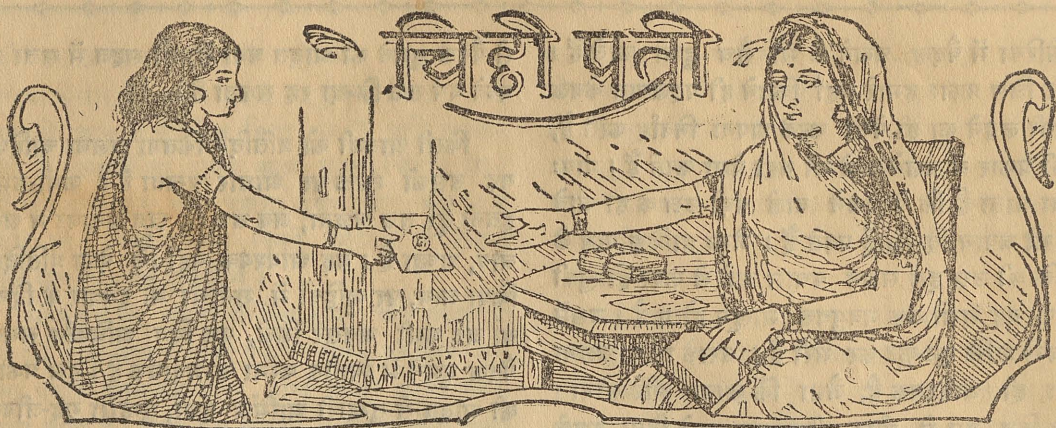
भागे हुए पति के नाम—

कृपानिधान !

रजिस्ट्री पत्र आपका मिला। पढ़ कर जो सदमा हुआ, लिख नहीं सकती। आपने मुझे बहुत धोखा दिया, ऐसा आपका धर्म नहीं है। मुझ असहाया अबला को किसके भरोसे पर छोड़ गए हैं ? बच्चों को पालने के लिए तो मुझे कहा, परन्तु मेरा प्रतिपालन कौन करे ? अगर मुझे छोड़ कर जाना था, तो मेरी जान पहले ले लेते, उसके बाद जो इच्छा होती करते। मैंने आपके साथ अपनी जान में कोई बुराई नहीं की। जो कुछ कहा, आपकी भलाई के लिए ही। आपको मुझे गर्भावस्था में छोड़ कर जाना उचित नहीं था। आदमी का दिन सदा एक-सा नहीं रहता। जो सुख करता है वही दुःख करता है और जो दुःख करता है वही सुख करता है। आप सब कुछ जानते हुए अधर्म की राह पर जा रहे हैं, मनुष्य का कर्त्तव्य है कि दुःख में सदैव दृढ़ता रक्खे। आपने किसकी सलाह से ऐसा किया। यह पत्र आपके पढ़ने के लिए छपवाती हूँ। यदि अपने बाल-बच्चों के ऊपर आपकी कुछ भी ममता है, तो इसे पढ़ कर अपना पता दीजिए। जिसको आप अपना मित्र समझते हैं, वह आपकी इज़्ज़त और जान-माल का दुश्मन है। संसार में आपका कौन हित चाहने वाला है, उसे पहचानिए। जिसने आपसे कहा था कि आपके ऊपर मुसीबत आने वाली है, वह एकदम झूठा है। ग़लती मनुष्य से ही होती है। एक ग़लती होने पर उसे सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए। भूल के ऊपर भूल करने से उसका फल बड़ा दुखदाई होता है। आपके हृदय में यदि मेरे लिए कुछ भी प्रेम हो तो आप अपने मन में बिना कुछ ख़्याल किए चले आइए, या पता दीजिए। मैं ही आकर आपके दर्शन करूँ। आप दूसरों का न्याय करते थे, मेरा भी न्याय करिए।

—आपकी 'C.' इलाहाबाद

❋ ❋ ❋

दुःखिनी माता

एक बहिन ने लिखा है :—

मैं एक प्रतिष्ठित कुल की पुत्रवधू और पुत्री हूँ। परन्तु मेरी ससुराल वाले मुझे फूटी आँखों भी देखना नहीं चाहते हैं। मेरे पतिदेव के पास धन नहीं है। वे कोई काम ढूँढ़ने के लिए बाहर गए हुए हैं। परमात्मा ने मुझे चार पुत्र-रत्न दिए हैं, जिनमें एक आठ वर्ष का और दूसरा छः वर्ष का है। धनाभाव के कारण हम इन बच्चों की पढ़ाई का कोई उपाय नहीं कर सकते। मैं स्वयं भी पढ़ी-लिखी हूँ। हाथ का काम भी बहुत अच्छा और हर क़िस्म का जानती हूँ। परन्तु दुर्भाग्यवश मेरी आँखों को भयङ्कर बीमारी हो गई है, इससे हाथ का काम कुछ भी नहीं कर सकती। डॉक्टरों की राय है कि मैं आँखों की बीमारी के लिए कुछ दिन पहाड़ों में जाकर रहूँ, परन्तु मेरे पास पैसे कहाँ हैं, जो कहीं अन्यत्र जाकर रह सकूँ। मुझे सबसे बड़ा दुःख यही है कि अर्थाभाव के कारण मैं अपने बच्चों को शिक्षा नहीं दिला सकती। मेरी आपसे विनीत प्रार्थना है कि आप मेरे इस निवेदन को अपने 'चाँद' में छाप दें। अगर कोई भाई या बहिन मेरी कुछ सहायता कर सकें, तो मैं उनका बड़ा आभार मानूँगी। अगर कोई संस्था मेरे बच्चों की शिक्षा और

भरण-पोषण का भार लेने की दया करे, तो मेरा बड़ा भारी सङ्कट दूर हो जाय।

आपकी,
'एक दुःखिनी'

[यह बहिन पञ्जाब की रहने वाली हैं। इन्होंने अपना नाम और पता गुप्त रखने की इच्छा प्रगट की है। अगर कोई सज्जन या किसी सार्वजनिक संस्था के अधिकारी इनके बच्चों को शिक्षा या इनकी आँख के इलाज में इनकी कुछ सहायता करना चाहें, तो पत्र लिख कर हमसे इनका पता पूछ सकते हैं। हम इस बहिन का पता उन्हीं सज्जनों को देंगे, जिनसे कुछ विशेष सहायता की आशा होगी। —स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

एक बालिका की अन्तिम अभिलाषा

एक मृत बालिका की दुःखिनी माता ने लिखा है :—

श्रीमान सम्पादक जी,

मैं एक महा दुःखिनी हूँ। मैंने 'चाँद' में देखा है कि आप दीन-दुखियों पर हमेशा दया करते हैं। इसी आशा से मैं भी यह पत्र आपकी सेवा में लिख रही हूँ।

मेरी एक सोलह वर्ष की लड़की थी, जो काफ़ी पढ़ी-लिखी थी। परन्तु ईश्वर ने उसे मुझसे छीन लिया। मेरा लाल लुट गया, परन्तु मैं अभागिनी जीती हूँ। मृत्यु से कुछ समय पहले मेरी बच्ची ने मुझसे कहा था कि 'माँ, अब मेरे जीने की कोई आशा नहीं है। बस, मेरी अन्तिम अभिलाषा यही है कि मैंने जो पुस्तकें और कविताएँ लिखी हैं, उन्हें तुम 'चाँद' के सम्पादक जी के पास भेज देना और उनसे छपाई का ख़र्च आदि पूछ कर इन्हें छपवा देना। फिर इनकी बिक्री से जो पैसे आवें, उनसे मेरी एक मूर्ति बनवा कर मेरे बग़ीचे में रखवा देना और मेरी मृत्यु-तिथि के रोज़ जो बन पड़े, ख़ैरात करवा देना।'

परन्तु मैं पढ़ी-लिखी नहीं हूँ और न छपाई आदि का कुछ हाल ही जानती हूँ। इसलिए यह पत्र लिख कर आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप इस सम्बन्ध में मुझे उचित सलाह देकर मेरी बच्ची की अन्तिम अभिलाषा की पूर्ति में मेरी सहायता करें। आपकी,

एक अभागिनी बहिन

[दुःख है कि इस बहिन ने अपने पत्र में अपना पता-ठिकाना कुछ भी नहीं लिखा है और अपने पत्र का उत्तर 'चाँद' द्वारा माँगा है। हमारी राय है कि वे अपनी मृत कन्या की रचनाएँ अपने निकट के किसी साहित्यिक को दिखलाएँ और उनसे राय लें कि ये छपने पर बिक सकती हैं या नहीं। अगर वे बिक जाने लायक़ हों तो उन्हें छपवाने का उद्योग करें, अन्यथा उनकी छपाई में पैसे लगाने व्यर्थ होंगे और इससे उनकी मृत पुत्री की अन्तिम अभिलाषा भी पूरी न होगी। अगर ये बहिन मृत बालिका की रचनाएँ हमारे पास भेज सकें, तो हम उन्हें देख कर उनके सम्बन्ध में अपनी सम्मति दे सकते हैं। —स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

बेमेल विवाह का भीषण परिणाम

एक व्यथित-हृदय युवक ने लिखा है :—

मैंने एक कुलीन वैश्य-कुल में जन्म पाया है। इण्ट्रेन्स पास करके ४०) मासिक की एक सरकारी नौकरी कर ली है। मेरा शारीरिक स्वास्थ्य भी अच्छा है और उमर मेरी अभी कुल इक्कीस वर्ष की है। परन्तु दुर्भाग्यवश मुझे जो पत्नी मिली है, वह अत्यन्त कुरूपा और बुद्धिहीना है। मालूम नहीं, मैंने ऐसा कौन सा पाप किया है, जिसके फल-स्वरूप मुझे ऐसी स्त्री प्राप्त हुई है। मैं दिन-रात इसी चिन्ता में डूबा रहता हूँ। इस कुरूपा स्त्री के कारण मेरी ज़िन्दगी बरबाद हो रही है। जब उसे देख लेता हूँ, तो मानो सारे शरीर में आग सी लग जाती है। समझ में नहीं आता कि इस जीवन-पथ के कण्टक को कैसे दूर करूँ। कभी-कभी तो घर-बार छोड़ कर कहीं चले जाने को जी चाहता है। कभी-कभी बाज़ारू स्त्रियों की ओर मन दौड़ जाता है। परन्तु वहाँ प्रेम कहाँ प्राप्त हो सकता है? कभी-कभी दूसरा ब्याह कर लेने की इच्छा होती है। दिन-रात तबीयत परेशान रहती है। बहुत सोच-

विचार कर अब आपकी शरण में आया हूँ, कृपा करके कोई ऐसा उपाय बतलाइए, जिससे मुझे शान्ति प्राप्त हो।

आपका—

—'कुसुम'

[यह है, बेमेल और बिना देखे-सुने लड़के-लड़कियों को एक-दूसरे के गले में ज़बरदस्ती बाँध देने का भीषण परिणाम। हमारा ख़याल है कि जब तक लड़के और लड़कियों को अपने मन के मुताबिक़ जीवन-सहचर चुन लेने का अवसर नहीं प्राप्त होगा, तब तक समाज का यह रोग भी दूर न होगा। वास्तव में यह कितनी भद्दी बात है कि जिसके साथ हमें अपना जीवन व्यतीत करना पड़ेगा, उसे विवाह से पहले एक बार देख भी नहीं सकते। हमारी समझ में नहीं आता कि जब कन्या वाले वर को अच्छी तरह देख-भाल लेते हैं, तो फिर कन्या को भी दिखा देने में उन्हें क्या आपत्ति है। अस्तु, पत्र-प्रेषक युवक से हमारा कहना है कि इस मामले में जिस तरह आप निर्दोष हैं, उसी तरह आपकी पत्नी का भी कोई अपराध नहीं है। क्योंकि वह बेचारी जान-बूझ कर कुरूपा और बुद्धिहीना नहीं बनी है और न वह अपनी इच्छा से आपके गले ही पड़ा है। ऐसी दशा में उस पर नाराजी प्रगट करना तो सरासर अन्याय है। दूसरी सलाह हमारी यह है कि विवाह करके केवल संसार-सुख का उपभोग करना ही मानव-जीवन का उद्देश्य नहीं है। उपर्युक्त युवक को चाहिए कि ब्रह्मचर्यपूर्वक रह कर ऐसे बेजोड़ विवाहों का विरोध करना अपने जीवन का लक्ष्य बना लें। इससे उनकी आत्मा को शान्ति प्राप्त होगी और समाज की भी सेवा होगी। —स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

एक नीच पति

एक अबला ने लिखा है :—

श्रीमान सम्पादक जी, सादर नमस्ते। मैं आपकी सेवा में अपनी दुःख-गाथा लिखती हूँ। कृपा करके अपने 'चाँद' पत्र द्वारा मुझे कोई उचित उपाय बता कर मेरा सङ्कट दूर कीजिए।

मेरे पतिदेव बड़े विद्वान, विवेकी और दूरदर्शी हैं। उनकी मान-प्रतिष्ठा भी अपने समाज में ख़ूब है। वह मुझे प्यार भी ख़ूब करते हैं, मुझे हर तरह से सुखी रखने का ख़ूब यत्न करते हैं। परन्तु मेरी क़िस्मत में शायद सुख बदा ही नहीं है। क्योंकि पतिदेव का यह प्रेम बिलकुल दिखाऊ और बनावटी है। वास्तव में वह एक दूसरी स्त्री से प्रेम करते हैं और मुझे चक़मा देने के लिए कपट-प्रेम दिखलाते हैं। इस गुप्त प्रेम से बाज़ आने के लिए मैंने उनसे बड़ी मिन्नतें कीं, उनके पैरों पड़ी, परन्तु कोई नतीजा न निकला। वह प्रेम टूटने के बदले और घनिष्ठ होता गया। अब तो यह हालत है कि सुबह उठ कर वह जब तक उस स्त्री का मुँह नहीं देख लेते, तब तक मेरी तरफ़ मुँह फेर कर देखना भी पाप समझते हैं। जब उसका मुँह देख लेते हैं, तब कहीं जाकर नित्यकर्म आदि करते हैं। उनकी यह गुप्त लीला मुझ अभागिनी के सिवा और कोई नहीं जानता। परन्तु अब तो मेरे लिए यह सब असह्य हो रहा है। जी में आता है कि ज़हर खाकर इस दुःख से छुटकारा पा जाऊँ। परन्तु अपमृत्यु से डरती हूँ। अब आपकी शरण ली है, जो मुनासिब समझिए उपाय बताइए।

—एक दुखिया

[इस तरह के पत्र हमारे पास बहुत आया करते हैं। हमारा विचार है कि यदि पत्नियाँ कुछ साहस से काम लें तो वे स्वयं इस दुःख से छुटकारा पा सकती हैं। ऐसे दुराचारी मनुष्यों को उनके अपराध का कठोर दण्ड मिलना चाहिए। उनके साथ मुरव्वत करना तो पाप को आश्रय प्रदान करना है। उक्त पत्र-लेखिका को चाहिए कि साहस करके इस पाप-कृत्य का भण्डाफोड़ कर दें और इसके लिए जो मुसीबतें झेलनी पड़ें, प्रसन्नता से झेलें। ऐसा करके वह अपने पति को पाप-पङ्क से बचा सकती हैं और स्वयं भी शान्ति प्राप्त कर सकती हैं।

—स० 'चाँद']

बोलने वाली घड़ी

पेरिस की वेधशाला (ऑबज़र्वेटरी) से वहाँ के निवासी प्रायः ठीक समय जानने के लिए टेलीफ़ोन द्वारा पूछा करते हैं। इस तरह पूछने वालों की संख्या अब बहुत बढ़ गई है और इस काम के लिए वेधशाला वालों को एक विशेष विभाग खोलना पड़ा है। इस दिक़्क़त और ख़र्च को मिटाने के लिए अब वहाँ पर एक बिजली की बोलने वाली घड़ी लगाई है। जब कोई व्यक्ति वेधशाला से समय पूछेगा, तो घड़ी के तार को उसके टेलीफ़ोन से संयुक्त कर दिया जायगा और घड़ी स्वयं समय बतला देगी। इसमें ठीक वही तरकीब काम में लाई गई है, जो आजकल बोलने वाले सिनेमा की फ़िल्मों में काम में लाई जाती है। घड़ी के साथ एक ऐसी फ़िल्म लगी है, जिसमें पाँच-पाँच सेकेण्ड के अन्तर से समय की आवाज़ भरी है! फिर हर एक सेकेण्ड पर 'पीप' का शब्द होता है। उदाहरणार्थ अगर आप पौने दस बजने के अठारह सेकेण्ड बाद घड़ी से समय पूछें तो वह उत्तर देगी "नौ-पैंतालीस-पन्द्रह-पीप-पीप-पीप।"

❋

नापने का नया तरीक़ा

आजकल नापने का काम इञ्च, फ़ीट और गज़ों से लिया जाता है। साधारण व्यक्तियों को इनके व्यवहार में किसी तरह की कठिनाई नहीं जान पड़ती और वे बाज़ार में बिकने वाले पैमानों से सहज में अपना काम चला लेते हैं। पर वैज्ञानिक लोगों को इस विषय में बहुत चिन्तित रहना पड़ता है और वे प्रायः इस विषय में विचार करते रहते हैं कि कोई ऐसा तरीक़ा निकाला जाय, जिससे पैमानों में किसी तरह की भूल न पड़े। क्योंकि वे लोग जो नाप-जोख करते हैं, उसमें एक बाल का हज़ारवाँ या लाखवाँ भाग ग़लती हो जाने से भी त्रुटि रह जाती है। इसलिए उन्होंने इञ्च और फ़ीट आदि के पैमानों के सही होने की जाँच के लिए एक नया तरीक़ा निकाला है। इसके अनुसार इञ्च को एक विशेष प्रकार की रोशनी की लहरों में विभाजित किया जायगा। इस रोशनी की लहरों की लम्बाई में कभी अन्तर नहीं पड़ता और कई हज़ार लहरों की लम्बाई एक इन्च के बराबर होती है।

❋

राक्षसी जहाज़

अमेरिका में आजकल इस तरह के जहाज़ बनाए जा रहे हैं, जो साधारण समय में यात्रियों और सामान को ले जाने का काम करेंगे और लड़ाई के मौक़े पर युद्ध-पोत के रूप में बदले जा सकेंगे। इनकी बनावट ऐसी रक्खी गई है कि किसी चीज़ से टकरा जाने और पानी भर जाने पर भी वे न डूब सकेंगे। उनमें दो लाख हॉर्स-पॉवर के इञ्जन लगाए जायँगे और उनकी चाल इतनी तेज़ होगी कि वे अमेरिका से यूरोप तक की यात्रा साढ़े चार दिन में पूरी कर लेंगे। इन जहाज़ों की लम्बाई ९६३ फ़ीट और गहराई १०८ फ़ीट होगी। उनका वज़न ४६ हज़ार टन होगा। उन पर २,७६६ यात्री और १,१८१ खलासी जा सकेंगे। इस प्रकार के एक जहाज़ के लिए नौ या दस करोड़ रुपया ख़र्च होगा।

❋

नक़ली रबड़

मेक्सिको की एक मिट्टी के तेल की कम्पनी तेल से निकलने वाले मैल से नक़ली रबड़ बनाने लगी है। मैल में गन्ना या कोई ऐसा पदार्थ, जिसमें खाँड पर्याप्त प्रमाण में मौजूद हो, मिलाया जाता है और उसे साफ़ करके धूप में सुखा लिया जाता है। फिर उसमें गन्धक का पुट देने से वह ठीक रबड़ के माफ़िक़ पदार्थ बन जाता है। इस पदार्थ से मोटर के टायर बनाए गए हैं और वे सन्तोषजनक सिद्ध हुए हैं। असली रबड़ जिन-जिन कामों में आता है, उन सब कामों में यह नक़ली रबड़ भी लाया जा सकता है।

❀

सड़क बनाने का दैत्याकार यन्त्र

अमेरिका में सड़क बनाने का एक ऐसा भारी यन्त्र बनाया गया है, जो एक दिन में एक मील रास्ता बना कर तैयार कर देता है। इसके अगले भाग में पत्थर की गिट्टियों और सीमेण्ट का मिश्रण तैयार होकर सड़क के ऊपर फैलता है और पिछला भाग उसे दबा कर बराबर करता जाता है। सड़क पर जितना मोटा पत्थर का पर्त जमाना होता है, उतना ही मसाला यह यन्त्र गिराता है। इसमें ऐसी भी योजना है, जिससे सड़क के बीच का भाग कुछ ऊँचा और अगल-बगल का कुछ ढालू हो जाता है। इससे सड़क में कहीं भी गड्ढे नहीं बनते।

❀

रेशम के समान काँच

इञ्जिन बॉयलर, गैस के नल, रेल और जहाज़ के इञ्जिन आदि की भाफ ले जाने वाली नलियों को अधिक गर्म हो जाने से बचाने के लिए उनके ऊपर रबड़ या सन लपेट दिया जाता है। इसके कारण गैस या भाफ की गरमी बाहर नहीं निकल सकती। अब इस कार्य के लिए इस तरह का काँच बनाया गया है, जो रेशम के तारों की तरह बुना जा सकता और इन नलियों के चारों तरफ़ आसानी से लपेटा जा सकता है। इस काँच पर ६०० डिग्री तक की गर्मी का कुछ भी असर नहीं पड़ता।

गञ्जेपन का कारण और इलाज

कितने ही लोगों के मस्तक के बीच के बाल उड़ जाते हैं, जिससे वे देखने में कुरूप जान पड़ते हैं। इस सम्बन्ध में खोज करके डॉक्टरों ने पता लगाया है कि मनुष्य के शरीर में 'एण्डोक्राइन' नाम की जो गाँठ होती है, उसमें से जब यथेष्ट मात्रा में रस नहीं निकलता तो मस्तक के बाल गिरने लगते हैं। इसके लिए अमेरिका की इलीनोइस यूनीवर्सिटी के मेडिकल कॉलेज में एक दवा तैयार की गई है, जिसका इन्जेक्शन देने से बाल फिर निकल आते हैं। एक व्यक्ति के बाल अट्ठारह वर्ष पहले गिर गए थे, उसको चार सप्ताह इस दवा की पिचकारी देने से बाल निकल आए। वहाँ के चिकित्सकों का कहना है कि जिन लोगों के तमाम सर के बाल उड़ गए हों, उनको भी इस दवा की पिचकारी प्रतिदिन साल-छः महीने तक देने से नए बाल निकल आएँगे। एक रोगी के तो आँखों की भौहों और बरौनियों के बाल उड़ गए थे, उसको भी इस दवा से नए बाल आ गए।

❀

सेफ़्टीरेज़र में बिजली का प्रकाश

हाल में एक ऐसा सेफ़्टीरेज़र बनाया गया है, जिसमें बिजली की छोटी सी बत्ती भी लगी है। इससे अँधेरे या कम प्रकाश वाले स्थानों में हजामत बनाने में बड़ी सुविधा होगी। इसके प्रयोग से दाढ़ी के कट जाने अथवा बालों के छूट जाने का अन्देशा बहुत कम रहेगा। रेज़र के हैण्डिल के भीतर एक छोटी सी बैटरी है, और ऊपर बटन है। बटन को ज़रा सा हटा देने से ही रोशनी हो जाती है।

❀

क्या आप जानते हैं ?

१० लाख से अधिक आबादी के शहर संसार भर में ४० हैं।

लन्दन में प्रति वर्ष १८ करोड़ ६० लाख आदमी मोटर बस द्वारा यात्रा करते हैं।

बड़ी उम्र का प्रत्येक व्यक्ति हर रोज़ १८ सेर हवा साँस द्वारा खींचता है।
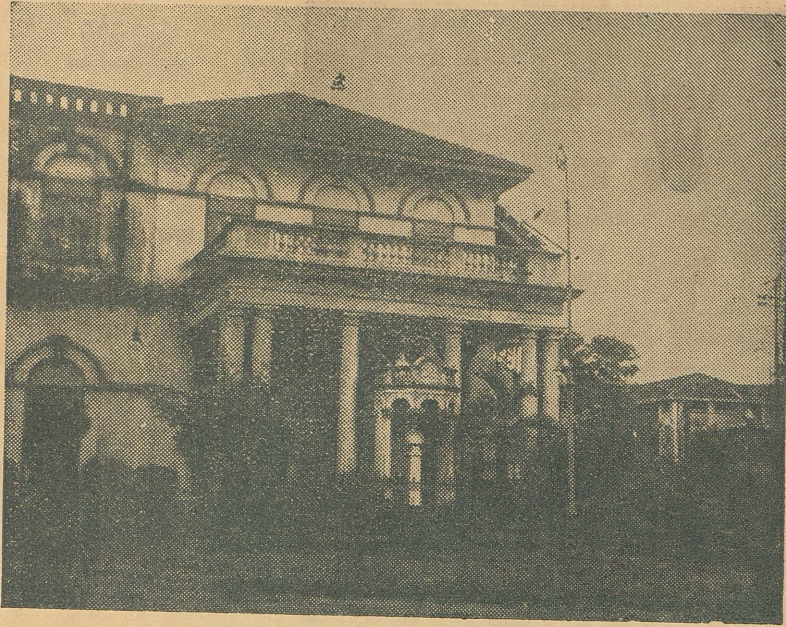
बम्बई के न्यू चारनी रोड पर अवस्थित पारसियों की विवाह-शाला। इसी इमारत में पारसी दम्पति विवाह-सूत्र में आबद्ध होते हैं।

बम्बई के गोवालिया टैङ्क पर अवस्थित पारसियों का औद्योगिक भवन।
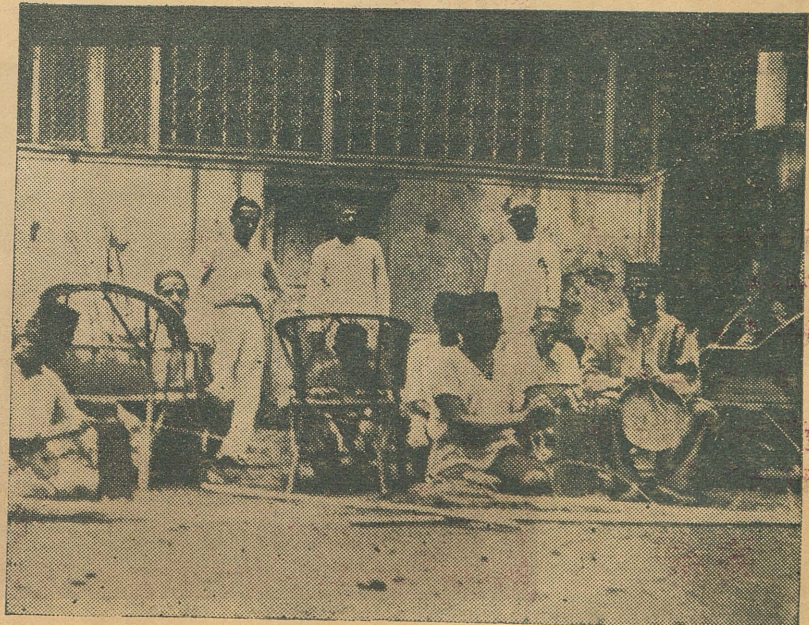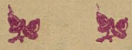
बम्बई के ह्यूगीज़ रोड पर अवस्थित पारसी महिलाओं का सुविख्यात औद्योगिक भवन या "सर रतन टाटा इण्डस्ट्रियल इन्स्टीट्यूट फ़ॉर पारसी वीमेन।"

जिन ज़ोरस्तानियों ने गत महायुद्ध में अङ्गरेज़ी साम्राज्य के रक्षार्थ अपने जीवन की आहुति दे दी थी, उन्हीं की स्मृति-रक्षा के लिए बना हुआ स्मृति-सौध।

बम्बई के धोबी तालाब पर अवस्थित पारसियों का दूसरा अग्नि-मन्दिर (Fire Temple)

बम्बई के प्रिन्सेज़ स्ट्रीट में अवस्थित पारसियों का सुप्रसिद्ध वाडिया अग्नि-मन्दिर (Fire Temple)
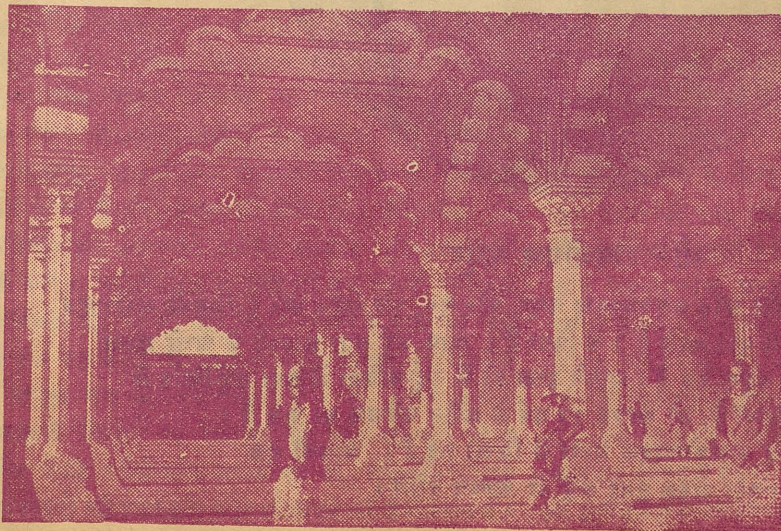
श्री० रामजीमल कपूर

आप मौरावाँ के प्रतिष्ठित रईस और श्री० जयनारायण कपूर, बी० ए०, एल्० एल्० बी० (जिनकी मनोरञ्जक रचनाएँ पाठक प्रायः 'चाँद' में पढ़ा करते हैं) के पिता हैं। आप उर्दू तथा फ़ारसी के अच्छे ज्ञाता हैं। आपको रामायण से बहुत प्रेम है। आपने हाल ही में उर्दू-कविता में तथा उर्दू-लिपि में एक 'रामायण' लिखी है, जो आपके १२ वर्ष के कठिन परिश्रम का फल है। रामायण बहुत प्रभावोत्पादक भाषा में लिखी गई है। आपकी एक रचना पाठक इसी अङ्क में अन्यत्र देखेंगे।
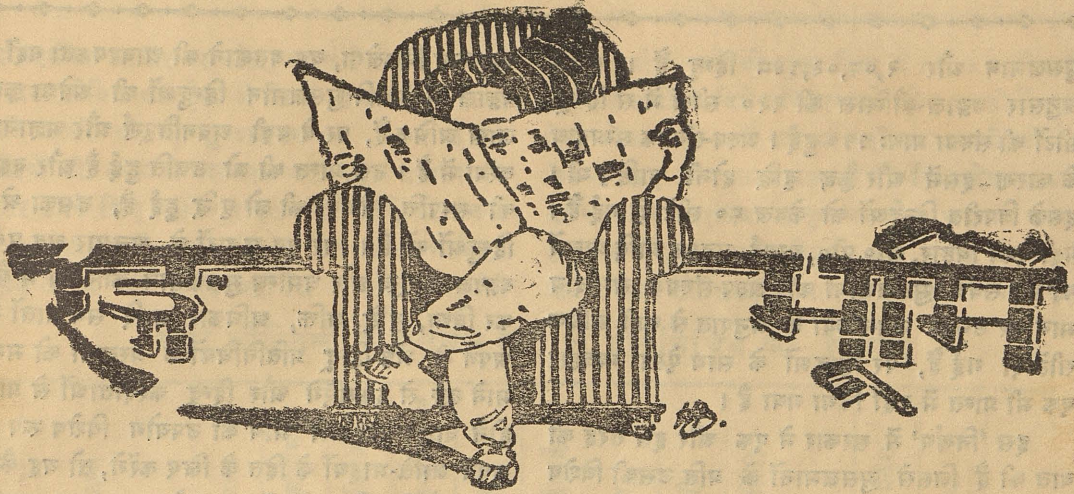
साम्प्रदायिक 'निर्णय'

जिस साम्प्रदायिक विवाद और मतभेद के कारण दो राउण्डटेबिल कॉन्फ्रेन्सें प्रायः विफल हो गई थीं, उसका 'निर्णय' ब्रिटिश सरकार की तरफ़ से प्रधान मन्त्री मि० मैकडॉनल्ड ने प्रकाशित कर दिया। भारत की राजनीतिक उन्नति की दृष्टि से यह जीवन-मरण का प्रश्न है। क्योंकि यह सिद्ध हो चुका है कि साम्प्रदायिक मताधिकार के कारण इस देश की विभिन्न जातियों में फूट का भाव बढ़ता जाता है और राष्ट्रीय भाव की जड़ पर कुठाराघात हो रहा है। इसलिए प्रत्येक सच्चे भारतीय की उत्कट अभिलाषा थी कि नवीन शासन-सुधारों में इस प्रकार का आयोजन किया जाय, जिससे इस विषमयी प्रवृत्ति की शक्ति घटे और सच्चे राष्ट्रीय भाव की वृद्धि हो। यदि जैसी कि कॉङ्ग्रेस की माँग थी ब्रिटिश सरकार इस देश वालों को वयस्क मताधिकार दे देती तो यह झगड़ा अनेकांश में समाप्त हो जाता और किसी सम्प्रदाय वाले को कम से कम यह कहने का अवसर नहीं मिलता कि सरकार ने अमुक दल का पक्ष लिया है। पर इसके बजाय सरकारी 'निर्णय' ने उलझन को और भी बढ़ा दिया और ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी, जिसमें विभिन्न सम्प्रदायों की तनातनी और भी बढ़ने की सम्भावना है।

इस 'निर्णय' में सब से भयङ्कर दोष यह है कि इसमें किसी एक सिद्धान्त से काम नहीं लिया गया है। न तो इसमें विभिन्न सम्प्रदायों की जन-संख्या का ख़्याल रक्खा गया है, न अल्प संख्या का, और न महत्व का। जहाँ जैसा सुभीता समझा है, जो बँटवारा अपनी दृष्टि में लाभजनक प्रतीत हुआ है, वही कर दिया गया है। उदाहरणार्थ संयुक्त प्रान्त में हिन्दुओं की संख्या ८४'४ और मुसलमानों की १५ प्रति सैकड़ा है। इसके अनुसार इस प्रान्त की २२८ सीटों में से हिन्दुओं को प्रायः १६० और मुसलमानों को ३४ मिलनी चाहिए थीं। पर 'निर्णय' के अनुसार हिन्दू सदस्यों की संख्या १३२ और मुसलमानों की ६६ रहेगी। अर्थात् मुसलमान यद्यपि हिन्दुओं के पाँचवें अंश से भी कम हैं, पर उनको अल्पसंख्यक सम्प्रदाय मान कर ठीक आधी जगहें दी गई हैं। इसके मुक़ाबले में पञ्जाब की परिस्थिति देखिए, जहाँ मुसलमानों की संख्या आधे से कुछ अधिक है, हिन्दू $\frac{3}{4}$ हैं और सिक्ख लगभग $\frac{1}{8}$ हैं। इस प्रान्त की १७५ सीटों में से जन-संख्या के अनुसार हिन्दुओं को क़रीब ६५ सीटें मिलनी चाहिए थीं और यदि अल्पसंख्यक सम्प्रदाय वाले नियम का ख़्याल रक्खा जाता तो इससे भी कुछ ज़्यादा। पर उनको केवल ४३ सीटें दी गई हैं। सिक्खों के साथ कुछ रियायत की गई है, पर उनको भी २२ के बजाय केवल ३२ सीटें मिली हैं। यदि उनके साथ उसी सिद्धान्त के अनुसार व्यवहार किया जाता, जिसके अनुसार यू० पी० के मुसलमानों से किया गया है तो उनको क़रीब ४२ सीटें मिलनी चाहिए थीं। यही बात बङ्गाल में हुई है। वहाँ की ४,७५,१२,४६२ जन-संख्या में से २,५४,८६,१२४

मुसलमान और २,०८,०१,१४८ हिन्दू हैं। इसके अनुसार बङ्गाल-कौन्सिल की २५० सीटों में से हिन्दू-सीटों की संख्या प्रायः ११० हुई। अल्प-संख्यक सम्प्रदाय के कारण इसमें और कुछ वृद्धि होनी चाहिए थी। इसके विपरीत हिन्दुओं को केवल ८० सीटें दी गई हैं। यही दशा बिहार, सी० पी०, बम्बई, मद्रास आदि प्रान्तों की है। सर्वत्र मुसलमानों को अल्प-संख्यक सम्प्रदाय मान कर उनकी जन-संख्या के अनुपात से कहीं अधिक सीटें दी गई हैं, पर हिन्दुओं के साथ ऐसा व्यवहार एक भी प्रान्त में नहीं किया गया है।

इस 'निर्णय' में सरकार ने एक और इस तरह की बात की है जिससे मुसलमानों के प्रति उसकी विशेष कृपा स्पष्ट झलकती है। सिन्ध और उड़ीसा को बहुत समय से स्वतन्त्र प्रान्त बनाने का प्रश्न उठा करता है। विशेषज्ञों ने हिसाब लगा कर बतलाया है कि यदि सिन्ध को स्वतन्त्र प्रान्त बनाया जाय तो उसे प्रतिवर्ष २ करोड़ का घाटा रहेगा। उड़ीसा के सम्बन्ध में ८० लाख का घाटा होने का अनुमान लगाया गया है। एक बात यह और है कि जहाँ सिन्ध के हिन्दू बड़े प्रभाव-शाली और धनी हैं तथा वे सिन्ध के पृथक् प्रान्त बनाए जाने का घोर विरोध कर रहे हैं, उड़ीसा में मुसलमानों की संख्या नाममात्र को है और उनकी तरफ़ से कभी किसी प्रकार का विरोध इस विषय में नहीं किया गया। यह सब होने पर भी 'निर्णय' में कहा गया है कि यदि घाटे की पूर्ति के साधन मिल जायँ तो सिन्ध को स्वतन्त्र प्रान्त बना दिया जायगा। साथ ही स्वतन्त्र सिन्ध प्रान्त की कल्पना करके उसकी शासन-सभा के सदस्यों की संख्या का बँटवारा भी कर दिया गया है। पर उड़ीसा को स्वतन्त्र प्रान्त बनाने के सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं लिखा गया।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि इस 'निर्णय' से हिन्दुओं के हृदय में स्वभावतः यही भाव जाग्रत होगा कि सरकार ने मुसलमानों के साथ पक्षपात अथवा विशेष कृपा का व्यवहार किया है, और हमारे न्यायोचित अधिकारों को निर्दयतापूर्वक ठुकराया है। ऐसे मनोभाव का वर्तमान परिस्थिति में, जब कि दोनों सम्प्रदायों में मनोमालिन्य मौजूद है और प्रायः भीषण साम्प्रदायिक दङ्गों की ख़बरें आती रहती हैं, क्या फल निकलेगा, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। बङ्गाल में यद्यपि मुसलमान हिन्दुओं की अपेक्षा कुछ लाख अधिक हैं, पर वे बड़ी अवनतिपूर्ण और अज्ञानावस्था में हैं। उस प्रान्त की जो उन्नति हुई है और वहाँ की सम्पत्ति, वैभव की जो वृद्धि हुई है, उसका श्रेय हिन्दुओं को है। पर नए सुधारों के अनुसार जब पूर्वी बङ्गाल के मूर्ख और धर्मान्ध मुसलमान कौन्सिल में बैठ कर विद्या, बुद्धि, शक्ति, अधिकार आदि सब बातों में अपने से श्रेष्ठ हिन्दू प्रतिनिधियों के प्रस्तावों को मन-माने ढङ्ग से ठुकराएँगे और हिन्दू करदाताओं से प्राप्त होने वाली सरकारी आय का उपयोग विशेष रूप से अपने जाति-भाइयों के हित के लिए करेंगे, तो यह कैसे सम्भव है कि हिन्दुओं में असन्तोष का भाव उत्पन्न न होगा? पञ्जाब की दशा इससे कहीं गम्भीर है। यद्यपि सिक्ख अल्प-संख्या में हैं, पर पञ्जाब में उनकी प्रधानता है। बड़ी-बड़ी ज़मींदारियाँ उनके पास हैं, और प्रान्त के वैभव का बहुत-कुछ आधार उन पर है। थोड़े समय पहले ही उनका पञ्जाब में एकछत्र राज्य था और इस कारण वे स्वभावतः वहाँ सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं। उनका और मुसलमानों का वैमनस्य बहुत पुराना है। उन दोनों के सम्बन्ध की ऐतिहासिक घटनाएँ भी इस प्रकार की हैं कि उनमें शीघ्र ही वास्तविक मेल हो सकना कठिन है। ऐसी दशा में उस प्रान्त में मुसलमानों का निश्चयात्मक बहुमत कर देना कहाँ तक उचित कहा जा सकता है। सिक्खों का कहना था कि जब बङ्गाल के यूरोपियनों को, जिनकी संख्या ½ प्रति सैकड़ा से भी कम है, दस प्रति सैकड़ा सीटें दी गई हैं, जिसके द्वारा वे हिन्दू-मुसलमान वोटों का सम-तोलपना क़ायम रख सकते हैं, तो पञ्जाब में सिक्खों को उस तरह का अधिकार देने में क्या आपत्ति थी? सिक्खों के इस दावे को कोई न्यायप्रेमी अस्वीकार नहीं कर सकता। खेद का विषय है कि सिक्खों ने जिस मुस्लिम प्रान्त को विजय करके पञ्जाब में सम्मिलित किया था, आज वही उनके मार्ग में प्रधान कण्टक बन रहा है।

इस 'निर्णय' के रचयिताओं के हृदय में साम्प्रदायिक भेद-भावों को स्थिर रखने की आकांक्षा कैसी बलवती थी, इसका एक प्रखर प्रमाण स्त्रियों की सीटों का

साम्प्रदायिक आधार पर बाँटा जाना है। इस सम्बन्ध में राउण्डटेबिल कॉन्फ्रेन्स में स्त्रियों की प्रतिनिधि होकर जाने वाली श्रीमती सुब्बारायन का कहना है कि "स्त्रियों की तरफ़ से बार-बार यह कहा गया था कि अगर उनके लिए सीटें सुरक्षित रक्खी जायँ, तो उनका बँटवारा साम्प्रदायिक दृष्टि से नहीं किया जाना चाहिए। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि भारतीय स्त्रियों ने इन तमाम बातों को भुला दिया है।××× स्त्रियाँ सुरक्षित सीटों के विशेषाधिकार को छोड़ सकती हैं, पर ऐसी योजना को कभी स्वीकार नहीं कर सकतीं, जो कि देश के लिए प्रत्यक्षतः भयङ्कर है।" निःसन्देह सरकार का यह कार्य भारतीय मातृत्व का घोर अपमान करना है, और यदि वह इसमें परिवर्तन नहीं करती, तो स्त्रियों का आगामी कौन्सिलों में भाग ले सकना असम्भव है।

भावी कौन्सिलों में विभिन्न दलों के प्रतिनिधित्व की स्थिति

प्रान्त	जनरल	मुसलमान	यूरोपियन	ऐङ्ग्लो-इण्डियन	सिक्ख	देशी ईसाई	ज़मींदार	व्यापारी	यूनीवर्सिटी	अछूत	पिछड़े प्रदेश	श्रमजीवी	योग
पञ्जाब	४३	८६	१	१	३२	२	५	१	१	×	×	३	१७५
यू० पी०	१२२	६६	२	१	×	२	६	३	१	१२	×	३	२२८
सी० पी०	७७	१४	१	१	×	×	३	२	१	१०	१	२	११२
बङ्गाल	८०	११९	११	४	×	२	५	१९	२	×	×	८	२५०
बम्बई (सिन्ध को छोड़ कर)	१०९	३०	३	२	×	३	२	७	१	१०	१	७	१७५
सिन्ध	१९	३४	२	×	×	×	२	२	×	×	×	१	६०
मद्रास	१३४	२९	३	२	×	९	६	६	१	१८	१	६	२१५
बिहार और उड़ीसा	९९	४२	२	१	×	२	५	४	१	७	८	४	१७५
आसाम	४४	३४	१	×	×	१	×	११	×	४	९	४	१०८
सीमाप्रान्त	९	३६	×	×	३	×	२	×	×	×	×	×	५०
योग	७४६	४९०	२६	१२	३५	२१	३६	५५	८	६१	२०	३८	१,५४८

प्रायः एकमत होकर साम्प्रदायिक चुनाव का स्पष्टतः विरोध किया था। इस तथ्य की सचाई मताधिकार कमिटी की रिपोर्ट से मालूम की जा सकती है। किसी भी प्रान्तीय कमिटी या प्रान्तीय सरकार ने स्त्रियों की सीटों को साम्प्रदायिक आधार पर बाँटने की सिफ़ारिश नहीं की थी। इस प्रश्न पर विचार करते समय सरकार

राष्ट्रीय भाव की दृष्टि से यह 'निर्णय' ऐसा असन्तोष-जनक है कि समस्त दलों और श्रेणियों के नेता तथा समाचार-पत्रों ने इसकी एक स्वर से निन्दा की है और इसे देशोन्नति के लिए घोर बाधा-स्वरूप बतलाया है। देहली के 'हिन्दुस्तान टाइम्स' ने इस 'निर्णय' को "बुद्धि के विपरीत और राष्ट्रीयता के विपरीत" बतलाया

है। उसके मतानुसार "प्रधान-मन्त्री का निर्णय समस्त देश को साम्प्रदायिक राजनीति के जङ्गल में और भी अधिक फँसाने वाला और राष्ट्रीय जीवन में गम्भीर कलह उत्पन्न करने वाला है। × × × यह आयोजना बड़ी दोषपूर्ण, अव्यावहारिक और एकता की नाशक है, और अन्त में यह अपने ही अन्याय के भार से नष्ट-भ्रष्ट हो जायगी।" 'लीडर' इस 'निर्णय' की पोल खोलता हुआ लिखता है—"हर एक पाठक को अपने दिल से यह सवाल पूछना चाहिए कि क्या इस 'निर्णय' के फल से शान्ति फैलने और एकता की वृद्धि होने की सम्भावना है? इसमें जिस 'प्रान्तीय-स्वराज्य' का वादा किया गया है वह कैसा होगा?" ट्रिब्यून ने लिखा है कि "जनता को जिस बुरे से बुरे परिणाम का सन्देह था वह ठीक निकला। इस समय भारत के सम्मुख ऐसी गम्भीर समस्या है जैसी कि उसके इतिहास में कभी पेश नहीं आई थी। इस परिस्थिति में उद्धार का मार्ग केवल यही है कि देश की समस्त जातियों और दलों के सच्चे और समझदार लोग एकमत होकर इसे अस्वीकृत कर दें। इससे या तो सरकार शीघ्र ही लाचार होकर इसका जड़मूल से संशोधन करेगी अथवा उसके सामने कोई दूसरा ऐसा प्रस्ताव पेश किया जायगा, जिसे मानने से वह इनकार न कर सके।" 'लिबर्टी' का कहना है कि 'निर्णय' द्वारा "देश की दो प्रधान जातियों में से एक को अल्प-संख्यक सम्प्रदाय के समस्त विशेष अधिकार और बहुसंख्यक सम्प्रदाय के स्वाभाविक अधिकार, दोनों अर्पित किए गए हैं और दूसरी को दोनों बातों से इनकार कर दिया गया है। × × × हमारा झगड़ा इस समय मुसलमानों या अछूतों या किसी अन्य विशेषाधिकार प्राप्त करने वाले दल से नहीं है। हमको पञ्चायत में शामिल होने वाली पार्टियों की शिकायत नहीं करनी है, वरन् हमको पञ्चों की शिकायत है। × × × ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल का कर्तव्य था कि वह प्रत्येक माँग की जाँच करता और तब परस्पर विरोधी दावों का पक्षपातरहित निर्णय करता। भारतीय साम्प्रदायिक प्रश्न का सन् १९३२ वाला 'निर्णय' एक पवित्र ऐतिहासिक 'ट्रस्ट' को बहुत ही भद्दे और अयोग्यतापूर्ण ढङ्ग से पूरा करना है।" इसी तरह की सम्मतियाँ अन्य राष्ट्रीय पत्रों ने प्रगट की हैं।

इस 'निर्णय' से सबसे अधिक चिन्ताजनक परिस्थिति पञ्जाब में उत्पन्न होने की आशङ्का है। जैसा कि समाचार-पत्रों से प्रगट हो रहा है, कि सिक्ख लोग इस तरह अपने अधिकार अपहरण कराने को तैयार नहीं हैं और कोई आश्चर्य नहीं कि शीघ्र ही यह मामला गम्भीर रूप धारण कर ले। सरदार सन्तसिंह ने, जो बड़ी व्यवस्थापक सभा के सदस्य हैं, एक प्रेस-प्रतिनिधि से कहा है कि "सिक्ख इस 'निर्णय' को कदापि स्वीकार नहीं कर सकते। ऐसा निर्णय करके सरकार ने पञ्जाब में एक ज़बर्दस्त आन्दोलन की जड़ जमा दी है, क्योंकि सिक्खों ने इस बात के लिए एक बड़ी पवित्र शपथ ली है कि वे किसी भी सम्प्रदाय का निश्चयात्मक बहुमत स्वीकृत नहीं कर सकते। मैं अपने सहधर्मियों को भली-भाँति जानता हूँ और यह कह सकता हूँ कि वह इस 'निर्णय' को बदलवाने में किसी भी तरह का बलिदान करने से पीछे नहीं हटेंगे। वास्तव में इस 'निर्णय' से जैसे फल निकलने की सम्भावना है उनका ख़्याल आने से मैं काँप उठता हूँ।" बड़ी व्यवस्थापक सभा के अन्य सिक्ख सदस्यों ने भी, जिनमें से कई 'सर' और 'राजा' हैं, स्पष्ट कहा है कि "इस निर्णय ने अङ्गरेज़ी सरकार की न्याय-बुद्धि और सत्य व्यवहार पर से सिक्खों की श्रद्धा को हिला दिया है।" पञ्जाब के हिन्दू-नेता भी इस 'निर्णय' से घोर असन्तुष्ट हैं और उन्होंने इसे 'पञ्जाब के हिन्दुओं के लिए अत्यन्त अनुचित" बतलाया है।

'मॉडर्न रिव्यू' के सम्पादक श्री० रामानन्द चटर्जी जैसे निष्पक्ष राजनीतिज्ञ की सम्मति में यह निर्णय प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों और उत्तरदायी शासन के सर्वथा प्रतिकूल है। उनका मत है कि "इसके द्वारा हिन्दुओं के साथ बड़ा गम्भीर, मानहानिजनक और अपमानपूर्ण अन्याय हुआ है। इसका कारण सम्भवतः यही है कि हिन्दुओं ने ही स्वराज्य की माँग की थी और इसके लिए सबसे अधिक चेष्टा की थी। यह निर्णय समस्त सच्चे देशभक्तों के हृदय में घोर चिन्ता उत्पन्न करने वाला है, क्योंकि ऐसी परिस्थिति में न तो शान्ति रह सकती है न शान्तिपूर्ण उन्नति हो सकती है। अहिंसात्मक उपायों का कोई भी अनुयायी इस निर्णय को स्वीकार नहीं कर सकता और न इस सम्प्रदायवाद से पूरित विधान को व्यवहार में ला सकता है। यदि वह

ऐसा करे तो अपने सिद्धान्त से च्युत समझा जायगा। उसका कर्तव्य है कि अधिक से अधिक चेष्टा करके इस निर्णय को बदलवाए।" सर पी० सी० राय की सम्मति और भी स्पष्ट और खरी है। उन्होंने इसे उन्नति की गति में बहुत बड़ी बाधा माना है और निस्सङ्कोच भाव से कह दिया है—"यह एक जाति को दूसरी जाति के विरुद्ध खड़ा करने वाला है। इससे राष्ट्रीयता की वृद्धि सर्वथा रुक जायगी।"

इन तमाम बातों पर विचार करने से हृदय में स्वयमेव तरह-तरह की आशङ्काएँ उदय होती हैं, और प्रतीत होता है कि साम्प्रदायिक शान्ति और राजनीतिक प्रगति का युग अब भी कोसों दूर है। इस 'निर्णय' ने देश के विभिन्न सम्प्रदायों में एकता और प्रेम उत्पन्न करने के बजाय उनको और भी पृथक् कर दिया है और इसका फल देश के लिए कल्याणजनक नहीं हो सकता। देश के नेता इस सम्बन्ध में किस नीति से काम लेंगे और जनता को किस कार्यक्रम के अनुसार चलने का आदेश देंगे, यह तो अभी स्पष्ट नहीं हुआ है, पर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि कोई भी देशभक्त और राष्ट्रीयता का उपासक भारतवासी इस योजना को स्वीकार करने योग्य नहीं समझता। हिन्दू ही नहीं, राष्ट्रीयता का भाव रखने वाला कोई सच्चा मुसलमान भी इसका समर्थन नहीं कर सकता। डॉ० किचलू और मि० छागला ने इसे सर्वथा अस्वीकार करने योग्य और राष्ट्रीयता का घातक बतलाया है। ऐसी परिस्थिति में देशवासियों का कर्तव्य स्पष्ट है, और हमें पूर्ण आशा है कि या तो ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल इस 'निर्णय' को वापस लेकर भारतवासियों के मनोनुकूल दूसरी नीति से काम लेगा, अथवा अब की बार कौन्सिलों का ऐसा पूर्ण रूप से बॉयकॉट होगा, जैसा असहयोग आन्दोलन और कॉङ्ग्रेस की भरपूर चेष्टा द्वारा भी न हो सका था।

❀ ❀ ❀

इङ्गलैण्ड में स्वदेशी आन्दोलन

अङ्गरेज़ों में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है, जो इस देश के स्वदेशी आन्दोलन को अच्छी निगाह से नहीं देखते। ऐसे लोगों को उचित है कि वे एक बार अपने घर को देखें। पुराने ज़माने की बात तो जाने दीजिए, जब कि इङ्गलैण्ड में भारत का बना कपड़ा सौ प्रति सैकड़ा कर लगा कर, और जेल का भय दिखा कर रोका गया था। वर्तमान समय में वहाँ स्वदेशी का ऐसा प्रचण्ड आन्दोलन उठाया गया है, जिससे मालूम होता है कि अब वहाँ किसी अन्य देश का बना माल बिक सकना असम्भव है। वहाँ पर सरकारी तौर पर प्रत्येक व्यवसाय की जाँच की जा रही है और उनकी उन्नति के उपाय सोचे जा रहे हैं। जितनी तरह की चीज़ें अब तक विदेशों से आती थीं, उन सबको इङ्गलैण्ड में ही तैयार करने की चेष्टा की जा रही है। इङ्गलैण्ड के सिनेमाओं में बहुत सी अमेरिकन फ़िल्में दिखलाई जाती हैं, जिनके लिए करोड़ों रुपए प्रति वर्ष देना पड़ता है। इस सम्बन्ध में जाँच करने को एक फ़िल्म कमीशन नियत किया गया था। उसने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि—"अमेरिका में ऐसी फ़िल्में बनाई गई हैं और बनाई जा रही हैं, जो कला की दृष्टि से सर्वाङ्गपूर्ण हैं, जिन्हें देख कर लोग अत्यन्त आनन्दित होते हैं, और साथ ही जो अनुपम शिक्षापूर्ण हैं। इसलिए केवल यह कह देने से काम नहीं चल सकता कि 'अङ्गरेज़ी फ़िल्में दिखलाओ।' इसके साथ ही हमको यह भी कहना चाहिए कि—'ऐसी अङ्गरेज़ी फ़िल्में तैयार करो, जो अद्वितीय हों और सर्वत्र जिनकी माँग हो।'" इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए कमीशन ने बहुत बड़े पैमाने पर एक 'नेशनल फ़िल्म इन्स्टीट्यूट' सङ्गठित करने की सलाह दी है, जो सरकार द्वारा संरक्षित होगा। ऐसी ही चेष्टा अन्य विषयों में की जा रही है। इस दशा को देख कर सैनफ़्रान्सिस्को (अमेरिका) से प्रकाशित होने वाले एक समाचार-पत्र ने लिखा है :—

"इङ्गलैण्ड-निवासियों ने एक ऐसा आन्दोलन उठाया है, जिसके फल-स्वरूप वे वास्तव में संसार भर के देशों के माल का बॉयकॉट कर सकेंगे। आजकल वहाँ जो आर्थिक सङ्कट आया है, उसी से रक्षा पाने के लिए उन्होंने इस उपाय का अवलम्बन किया है। पर वे लोग बड़े चालाक हैं और अपने आन्दोलन को किसी बुरे नाम से प्रसिद्ध नहीं होने देंगे। इसलिए उन्होंने बॉयकॉट के स्थान पर 'अङ्गरेज़ी माल ख़रीदो' की आवाज़ उठाई है, और इसकी आड़ में एक परम शक्तिशाली

संस्था ने समस्त विदेशी चीज़ों के बॉयकॉट का कार्य आरम्भ किया है। इस संस्था का नाम 'दी ट्यूडर रोज़ लीग' है। इस आन्दोलन को सर्वप्रिय बनाने के लिए राजवंश के बड़े-बड़े लोग इसके मुखिया बने हैं। ड्यूक ऑफ़ ग्लास्टर, प्रिन्स ऑफ़ वेल्स, प्रिन्स जॉर्ज, और कितनी ही राजकुमारियाँ इस लीग की मेम्बर हैं।"

जब इङ्गलैण्ड जैसे सम्पन्न और एक महाविशाल साम्राज्य के स्वामी देश को स्वदेशी आन्दोलन द्वारा अपना अर्थ-सङ्कट टालने की आवश्यकता पड़ रही है, तो भारत जैसा ग़रीब देश अगर अपने कष्टों को कम करने के लिए इस उपाय का अवलम्बन करे, इसे कोई भी न्याय-प्रेमी किस प्रकार अनुचित कह सकता है?

❀ ❀ ❀

समाज-सुधार का मार्ग

हम सुधार का शोर तो बहुत मचाते हैं, पर उन विचारों को कार्यरूप में परिणत करने का साहस बहुत थोड़े लोगों में देखने में आता है। सभाओं में, जलसों में और समाचार-पत्रों में अनेक व्यक्ति विधवा-विवाह, जात-पाँत की निरर्थकता, अछूतोद्धार आदि का ज़ोरों से समर्थन करते हैं, पर जब अवसर पड़ता है तो वे स्वयम् भय अथवा स्वार्थ के कारण अपने विचारों के विपरीत कार्य करते हैं। यही कारण है कि हमारे यहाँ समाज-सुधार का कार्य बड़ी मन्द गति से हो रहा है और जान पड़ता है कि इन हानिकारक प्रथाओं का कभी पूर्णतया अन्त न हो सकेगा। ऐसी परिस्थिति में जो लोग समाज और घर वालों के भय को त्याग, साहसपूर्वक अपने सिद्धान्त पर दृढ़ रहते हैं, वे निस्सन्देह प्रशंसा के पात्र हैं। इस तरह का एक उदाहरण हमको हाल ही में भावनगर (काठियावाड़) से प्राप्त हुआ है। वहाँ के एक माननीय ब्राह्मण-कुटुम्ब की पुत्री ने, जिसका नाम मञ्छा बेन है और जो राजकोट ट्रेनिङ्ग कॉलेज में शिक्षा प्राप्त कर रही थी, अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध अपना विवाह गुजरात विद्यापीठ के आर्य-मन्दिर के विद्यार्थी भाई चन्दूलाल भट्ट के साथ वैदिक विधि से कर लिया है। ये दोनों ऐसी विभिन्न ब्राह्मण जातियों के हैं, जिनमें परस्पर में विवाह-शादी नहीं होती। इन्होंने अपने पिताओं को पत्र लिख कर बतला दिया है कि उनके इस तरह आचरण करने का उद्देश्य क्या है। मञ्छा बेन ने अपने पिता को लिखा है कि—"विवाह जैसे जीवन के अति महत्त्वपूर्ण विषय में आपने मेरा विरोध किया। इतना ही नहीं, वरन् उसमें भरसक विघ्न डालने की चेष्टा की। जिस मनुष्य के साथ मुझे समस्त जीवन व्यतीत करना है, जिसके साथ सुख-दुःख में रहना है, उसको मुझे स्वयम् ही पसन्द करना चाहिए। जीवन का साथी ढूँढ़ने में मैंने जिस स्वतन्त्रता से कार्य लिया है, वह आपको मर जाने के समान जान पड़ती होगी। इसीलिए शायद आपने डरा कर, धमका कर, चौकी-पहरे में रख कर मुझे दबाने का विचार किया होगा। पर स्त्री भी पुरुष की भाँति ही समाज का महत्त्वपूर्ण अङ्ग है और उसे भी उतनी ही स्वतन्त्रता का अधिकार है। इसी के अनुसार मैंने अपने जीवन के साथी को ढूँढ़ लिया है।"

मञ्छा बेन का सत्साहस सराहनीय है, और इस हिन्दू-जाति के सुधार के लिए इस तरह की हज़ारों बहिनों की आवश्यकता है। समाज का मुख्य आधार स्त्रियों पर ही रहता है, और यदि वे हानिकारक प्रथाओं को तोड़ कर अपने मानवीय अधिकारों को काम में लाने लगें, तो कल ही तहलका मच जाय और अन्त में इस जाति को अपना सुधार करना ही पड़े। गुजरात में ऐसी कई घटनाएँ पहले भी हो चुकी हैं और हम आशा करते हैं कि जिस प्रकार वर्तमान समय में राजनीतिक आन्दोलन के सम्बन्ध में गुजरात, देश के लिए मार्ग-प्रदर्शक बना हुआ है, उसी प्रकार समाज-सुधार में भी वह लोगों को रास्ता दिखलाएगा।

❀ ❀ ❀

एक नया स्वदेशी कारबार

इस समय स्वदेशी की बड़ी तेज़ी से उन्नति हो रही है। कल तक जिन चीज़ों का हम इस देश में बन सकना असम्भव समझते थे, आज वे दूकानों पर बिक्री के लिए रक्खी हुई दिखलाई देती हैं। बिजली

के लैम्प भी ऐसी ही चीज़ों में से हैं। यद्यपि इनकी देश में काफ़ी खपत है और दिन पर दिन इसका बढ़ते जाना भी सुनिश्चित है, पर अभी तक किसी का ध्यान इनके बनाने की तरफ़ नहीं गया था। वैसे भी इस कार्य में उच्च कोटि के वैज्ञानिक ज्ञान और कलाकुशलता की आवश्यकता है, और इन गुणों से सम्पन्न व्यक्ति इस देश में बहुत थोड़े पाए जाते हैं। हर्ष का विषय है कि एक बङ्गाली नवयुवक ने इस कठिन कार्य की तरफ़ क़दम उठाया है और एक प्रकार से कार्य आरम्भ भी कर दिया है। इन सज्जन का नाम है श्री० एच० के० मल्लिक, बी० एस-सी०, ए० आई० आई० एस-सी०, जी० आई० ई० ई० (लन्दन)। कलकत्ता यूनीवर्सिटी से बी० एस-सी० की परीक्षा पास करने के बाद इन्होंने बङ्गलोर के साइन्स इन्स्टीट्यूट में बिजली की शिक्षा प्राप्त की, और वहाँ से इङ्गलैण्ड जाकर टॉमसन हाउटन कम्पनी में इस विषय का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया। बिजली के लैम्प (बल्ब) बनाने में निपुणता प्राप्त करने के लिए ये और भी कितनी ही कम्पनियों में गए और बड़े परिश्रम से इस सम्बन्ध के उन रहस्यों का ज्ञान प्राप्त किया, जिन्हें कारख़ाने वाले भरसक बाहरी लोगों को नहीं जानने देते। भारत लौट कर उन्होंने कलकत्ते में परीक्षा के तौर पर एक छोटा सा कारख़ाना खोला, जिसमें बिजली के बल्ब बनाए जाते हैं। कलकत्ता-कॉर्पोरेशन के रोशनी-विभाग ने जाँच करके उनको उपयोगी बतलाया है। पर इस व्यापार के विस्तार और विदेशों की करोड़ों की पूँजी की बिजली कम्पनियों को देखते हुए मि० मल्लिक का यह कारख़ाना निरा खिलवाड़ है। जब तक पर्याप्त मूलधन लगा कर और बड़ी मैशीनें मँगा कर यह कार्य काफ़ी बड़े पैमाने पर आरम्भ न किया जायगा, तब तक यह आशा करना कि श्री० मल्लिक द्वारा बनाए गए सौ दो सौ बल्बों से देश में एक नए कारबार की सृष्टि हो जायगी और हॉलैण्ड, जर्मनी, जापान आदि का माल आना रुक जायगा, नासमझी की बात है। श्री० मल्लिक भी इस बात को समझते हैं और इसलिए उन्होंने एक लिमिटेड कम्पनी की योजना की है। देश के सम्पत्तिशाली और व्यवसायी लोगों का कर्तव्य है कि आगे बढ़ कर इस नवीन तथा लाभजनक कारबार की तरफ़ ध्यान दें और देश की एक आवश्यकता की पूर्ति करें। व्यवसाय बड़े नफ़े का है। जो लोग इसमें पूँजी लगाएँगे, वे अवश्य ही लाभ में रहेंगे।

❀ ❀ ❀

का

'नेपाल-अंक'

हम शीघ्र ही 'चाँद' का एक विशेषाङ्क नेपाल के सम्बन्ध में प्रकाशित करने का आयोजन कर रहे हैं। इस अङ्क में इस एकमात्र स्वतन्त्र हिन्दू-राज्य की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, साहित्यिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक और भौगोलिक स्थिति पर विशद रूप से प्रकाश डाला जायगा। जो सज्जन इन विषयों पर लेख लिखना चाहें अथवा अन्य प्रकार से सहयोग करना चाहें, वह सम्पादक से लिखा-पढ़ी करें।

—सम्पादक 'चाँद'

भारतीय कृषक और आधुनिक आविष्कार

भारतीय कृषि की अवनति के जो अनेक कारण बतलाए जाते हैं, उनमें से एक यह भी है कि यहाँ के किसान पुराने ढङ्ग के औज़ार काम में लाते हैं, जिनमें परिश्रम अधिक पड़ता है और काम कम होता है। इसलिए सरकारी कृषि-विभाग कितने ही वर्षों से इस बात की चेष्टा कर रहा है कि इस देश के किसान लकड़ी के हलों का प्रयोग छोड़ कर लोहे के बने विलायती हलों से काम लें। इस सम्बन्ध में हाल ही में सतारा ज़िला के कृषि-इञ्जीनियर मि० बेटन ने एक योजना तैयार की है, जिससे मालूम होता है कि समस्त ब्रिटिश भारत में २,५५,२७,६१८ और देशी रियासतों में ५२,१३,२०४ हल काम में आते हैं। पर लोहे के हल पिछले पचास वर्षों में चेष्टा करने पर केवल ७ लाख बिक सके हैं। इसलिए मि० बेटन ने अपनी योजना में मुख्य विचार इसी बात पर किया है कि किस उपाय से लकड़ी के देशी हलों के स्थान पर लोहे के विलायती हलों का प्रचार हो सकता है। अगर उनकी स्कीम कार्य-रूप में परिणत हो जाय, तो वे विश्वास दिलाते हैं कि पाँच वर्षों में इस देश की पैदावार दुगुनी-तिगुनी हो जायगी और यहाँ के किसान वर्तमान समय की अपेक्षा १० अरब रुपए अधिक पा सकेंगे। इस सम्बन्ध में मि० बेटन ने सरकार से फौलाद का कर उठा देने का प्रस्ताव किया है और एक विशाल कारख़ाना स्थापित करने की स्कीम भी तैयार की है। यद्यपि इस योजना के अनुसार कार्य होने से बहुत से भारतीय बढ़इयों और लुहारों की, जो आजकल हल बनाने का कार्य करते हैं, रोज़ी मारी जायगी, पर तो भी इस आधार पर हम उन्नति के पहिए की गति रोकना पसन्द नहीं करते। क्योंकि यदि दस्तकारों की रक्षा का प्रश्न ही मुख्य माना जाय तो रेल, तार, कल, कारख़ाने सभी हानिकारक सिद्ध होते हैं और उस दशा में तो दो-चार हज़ार वर्ष पुरानी परिस्थिति में पड़े रहना ही कल्याणजनक है। पर ऐसा होना असम्भव है। परिवर्तन और उन्नति की गति रोकी नहीं जा सकती। यदि वास्तव में देशी हलों के बजाय लोहे के हलों से काम लेने से पैदावार की वृद्धि हो सकती है, और उनका उपयोग वर्तमान परिस्थिति में सम्भव भी है, तो कोई कारण नहीं कि उनसे काम न लिया जाय। हाँ, इस बात का ध्यान पूरी तरह रक्खा जाय कि ये लोहे के हल देश में ही बनाए जायँ। यदि इस योजना का उद्देश्य विलायत वालों के लिए एक नए कारबार का रास्ता खोल देना है, जैसा कि मि० बेटन की योजना को ध्यानपूर्वक पढ़ने से कुछ-कुछ प्रकट होता है, तो इसका समर्थन कोई समझदार भारतीय नहीं करेगा। अगर सरकार सचमुच भारतवासियों का हित चाहती है, तो उसे चाहिए कि वह या तो ख़ुद इस तरह का कारख़ाना खोले, या किसी को इस काम का ठेका दे दे। यदि किसी भारतीय कारख़ाने वाले को सहायता (Subsidy) देकर काम कराया जाय, तब भी सफलता हो सकती है।

❀ ❀ ❀

शिक्षा का माध्यम

भारतवर्ष में जब से नवीन राष्ट्रीय जागृति का जन्म हुआ है, तब से विचारशील लोगों का ध्यान यहाँ की शिक्षा-प्रणाली की तरफ़ भी आकृष्ट होने लगा है। वे समझ गए हैं कि जब तक शिक्षा-प्रणाली का माध्यम एक विदेशी भाषा रहेगी, तब तक यहाँ के नवयुवकों में सच्ची राष्ट्रीय भावना का उदय हो सकना असम्भव है। इसके फल से उनके हृदय में अपनी भाषा के प्रति तिरस्कार अथवा कम से कम उदासीनता का भाव उत्पन्न हो जाता है। ऐसे लोगों से यह आशा करना कि वे अपने देश की अन्य बातों की तरफ़ श्रद्धा की दृष्टि से देखेंगे, बहुत कम सम्भव है। उनमें से कितने ही तो अङ्गरेज़ों और उनके रीति-रिवाज़ों को ही आदर्श समझने लगते हैं और उन्नति की चरम सीमा इसी में मानते हैं कि वे भी ऐसे बन जायँ कि साधारण लोग उनको 'साहब' समझने लगें। इस उद्देश्य से वे अपनी भाषा, भेष, खान-पान, रहन-सहन आदि सब बातों को बदल डालते हैं और अङ्गरेज़ों की नक़ल करके भारतीयता

को सर्वथा भुला बैठते हैं। यद्यपि गत दस-बारह वर्ष के राजनीतिक आन्दोलन के फल-स्वरूप इस धारा में परिवर्तन हुआ है और बड़े-बड़े 'अपटूडेट' साहब खद्दर के कुर्ता-धोती धारण करने लगे हैं, तो भी देश में 'साहब' बनने के शौक़ीनों की कमी नहीं है। जब तक शिक्षा-प्रणाली में सुधार न होगा, तब तक राष्ट्रीयता के भाव की वास्तविक उन्नति हो सकना कठिन है।

अङ्गरेज़ी को शिक्षा का माध्यम बनाने से एक यही हानि नहीं है। इसके कारण हमारे देश के बालकों को ऐसी अधकचरी शिक्षा प्राप्त होती है कि वे 'न घर के रहते हैं न घाट के।' उनका अधिकांश समय और शक्ति विदेशी भाषा को सीखने में ही ख़र्च हो जाता है और ऐसे भाग्यवान बहुत थोड़े होते हैं, जो उसके बाद कोई ऐसा उपयोगी विषय सीख सकें, जिससे खाने-कमाने का सुभीता हो। इस सम्बन्ध में हाल ही में मद्रास यूनीवर्सिटी के कान्वोकेशन के अवसर पर उस प्रान्त के शिक्षा-सचिव तथा यूनीवर्सिटी के प्रोचान्सलर दीवान बहादुर कुमारस्वामी रेड्डियर ने कहा था कि—"सब से बड़े शिक्षा-विशारदों की भी वर्षों से यह सम्मति रही है कि सेकण्डरी स्कूलों में अङ्गरेज़ी के स्थान पर मातृभाषा को सब विषयों में शिक्षा का माध्यम बनाना चाहिए। जो लोग शिक्षा-माध्यम के लिए मातृभाषा का अनिवार्य रूप से उपयोग करने के पक्षपाती हैं, वे केवल अपनी भाषा की भक्ति के कारण ऐसा नहीं करते। वरन् ऐसा होने से बहुत सी शक्ति अपव्यय होने से बच जायगी और बालकों को जो विषय सिखलाए जायँगे, उन्हें वे पूर्णतया और स्पष्टतः हृदयङ्गम कर सकेंगे। सभी समझदार लोगों का यह मत होता जाता है कि सब प्रकार की शिक्षा देशी भाषाओं द्वारा ही दी जानी चाहिए।" आन्ध्र यूनीवर्सिटी में इस प्रकार का कार्यक्रम स्वीकृत किया गया है, जिसके अनुसार एक नियत समय के भीतर शिक्षा और परीक्षाओं का सारा कार्य देशी भाषा द्वारा होगा। बङ्गाल यूनीवर्सिटी ने दो-तीन सप्ताह पहले ही हाई-स्कूलों की समस्त शिक्षा मातृभाषा द्वारा देने का निर्णय किया है। वहाँ के कई कॉलेजों में वैज्ञानिक विषयों की शिक्षा बङ्गाली में दी जाती है। बम्बई में सन् १९२४ में एक यूनीवर्सिटी रिफ़ॉर्म कमिटी नियत की गई थी, जिसकी सम्मति के अनुसार हाई-स्कूलों के विद्यार्थी अगर चाहें तो इतिहास का अध्ययन अपनी भाषा में कर सकते हैं। अब वहाँ अन्य विषयों की मातृभाषा द्वारा शिक्षा दिए जाने का भी आन्दोलन आरम्भ हो गया है। हमारे संयुक्त-प्रान्त में भी इस सम्बन्ध में कितने ही वर्षों से आन्दोलन हो रहा है और साहित्यिक संस्थाएँ समय-समय पर अधिकारियों से हिन्दी-भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने की अपील करती आई हैं, पर अभी तक इस उद्योग का कोई विशेष परिणाम नहीं निकला है। यद्यपि कुछ समय पहले यूनीवर्सिटी की तरफ़ से नियम बनाया गया था कि जो विद्यार्थी चाहें परीक्षा में प्रश्न-पत्रों के उत्तर हिन्दी में दे सकते हैं, पर वह नियम व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण काम में नहीं आया। अब समय आ गया है कि यूनीवर्सिटी बिना विलम्ब इस योजना में हाथ लगाए और हाई स्कूल तक की शिक्षा अनिवार्य रूप से देशी भाषा में कर दे। अङ्गरेज़ी द्वितीय भाषा की तरह पढ़ाई जानी चाहिए। यही शिक्षा-क्रम स्वाभाविक और लाभदायक है।

* * *

किसी बहरे का मित्र बीमार था। बहरा उसे देखने के लिए गया।

बहरा—कहिए दोस्त, क्या हाल है ?

बीमार—मरने के क़रीब हूँ।

बहरा—बड़ी अच्छी बात है, परमात्मा को हज़ार-हज़ार धन्यवाद है। खाते क्या हो ?

बीमार—(नाराज़ होकर) खाता हूँ पत्थर।

बहरा—(खिचड़ी समझ कर) बस-बस, बीमारों के लिए यही सब से अच्छी ख़ुराक है। इसे ही खाया करो। अच्छा, इलाज किसका है ?

बीमार—यमराज का।

बहरा—(किसी योग्य डॉक्टर का नाम समझ कर) बड़ा लायक आदमी है। बहुत जल्दी रोग से पीछा छुड़ा देता है।
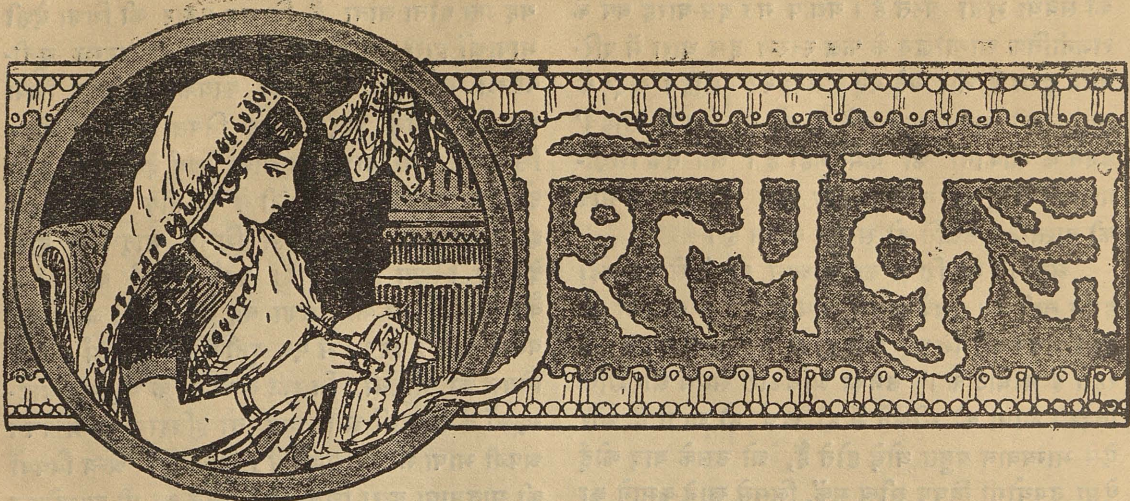
देशी कुर्ता

कुर्ते में कमीज़ से कम कपड़ा लगता है। इसमें १$\frac{१}{४}$ गज़ पनहे का १$\frac{१}{२}$ गज़ कपड़ा लगेगा। चित्र में आधा कुर्ता तैयार और आधे के हिस्से करके दिखाए गए हैं। इसका नाप ३६" लम्बाई, १८" चौड़ाई, बाँह लम्बी २४", चौड़ी ९", कली लम्बाई २७$\frac{१}{२}$" चौड़ाई एक ओर से ४" दूसरी ओर से ८", कच्छी (चौबगला) ४$\frac{१}{२}$" लम्बी तथा इतनी ही चौड़ी। इस कुर्ते के काटने में कोई कठिनता नहीं। कलियों का काटना चित्र में दिखाया गया है अर्थात् २७$\frac{१}{२}$" लम्बा तथा २४" चौड़ा कपड़ा लेकर दोहरा करके बिछा लो, फिर चित्र में दिखाए हुए चिन्हों की भाँति चिन्ह लगाओ। एक ओर ८" उसके दूसरी ओर ४" फिर बीच में टेढ़ी रेखा खींच लो और उस रेखा पर से काट कर चारों कलियाँ पृथक्-पृथक् कर लो, फिर चित्र में दिखाए हुए आधे कुर्ते की भाँति इसे जोड़ लो अर्थात् कली का छोटा हिस्सा ऊपर की ओर होगा और बड़ा नीचे की ओर। फिर कच्छी डालते समय ध्यान रखना चाहिए कि यह खिल कर तिकोनी प्रतीत होगी, जैसी कि चित्र में दिखाई देती हैं। बाँहें दोनों एक जैसी होंगी, आगा-पीछा भी एक जैसा ही होगा। इसको सीने के लिए पहिले कलियों को जोड़ना होता है, फिर बाँहों को तथा फिर कच्छियों को। कोई-कोई तो इसे एक ही सिलाई से जोड़ लेते हैं तथा कोई दो सिलाइयों से अर्थात् पहिले सीधी सीवन से जोड़ लेते हैं, फिर उसी को मोड़ कर तुरप देते हैं। नीचे से घेर को १" मोड़ कर तुरप दो। सामने की पट्टी ३" चौड़ी और १६" लम्बी लगेगी तथा गले के लिए १" चौड़ी और १२" लम्बी लगेगी। आगे की पट्टी दोहरी करके आगे को बढ़ेगी अर्थात् सीधी ओर को बढ़ी हुई लगेगी। गले में भी दोहरी होकर ही लगेगी, फिर जैसे पट्टी में निशान दिखाए हैं, वहाँ काज होंगे। नीचे की ओर छोटी पट्टी बना कर उसमें बटन लगेंगे। यदि इसके सीने में कोई कठिनता हो तो दर्जी का सिया हुआ कुर्ता, जो प्रत्येक के घर में आसानी से मिल सकता है, देख कर सीने में बहुत-कुछ सहायता मिल सकती है। यदि छोटा करना हो तो केवल नाप में फ़र्क़ होगा, परन्तु काटने और सीने की विधि वही रहेगी।

—कुमारी शकुन्तला देवी गुप्ता, बी० ए०, हिन्दी-प्रभाकर

देशी कुर्ते का नमूना

'शिल्प-कुञ्ज' नामक पुस्तक के कुछ सुन्दर नमूने [चित्रकार—श्री० एच० बागची
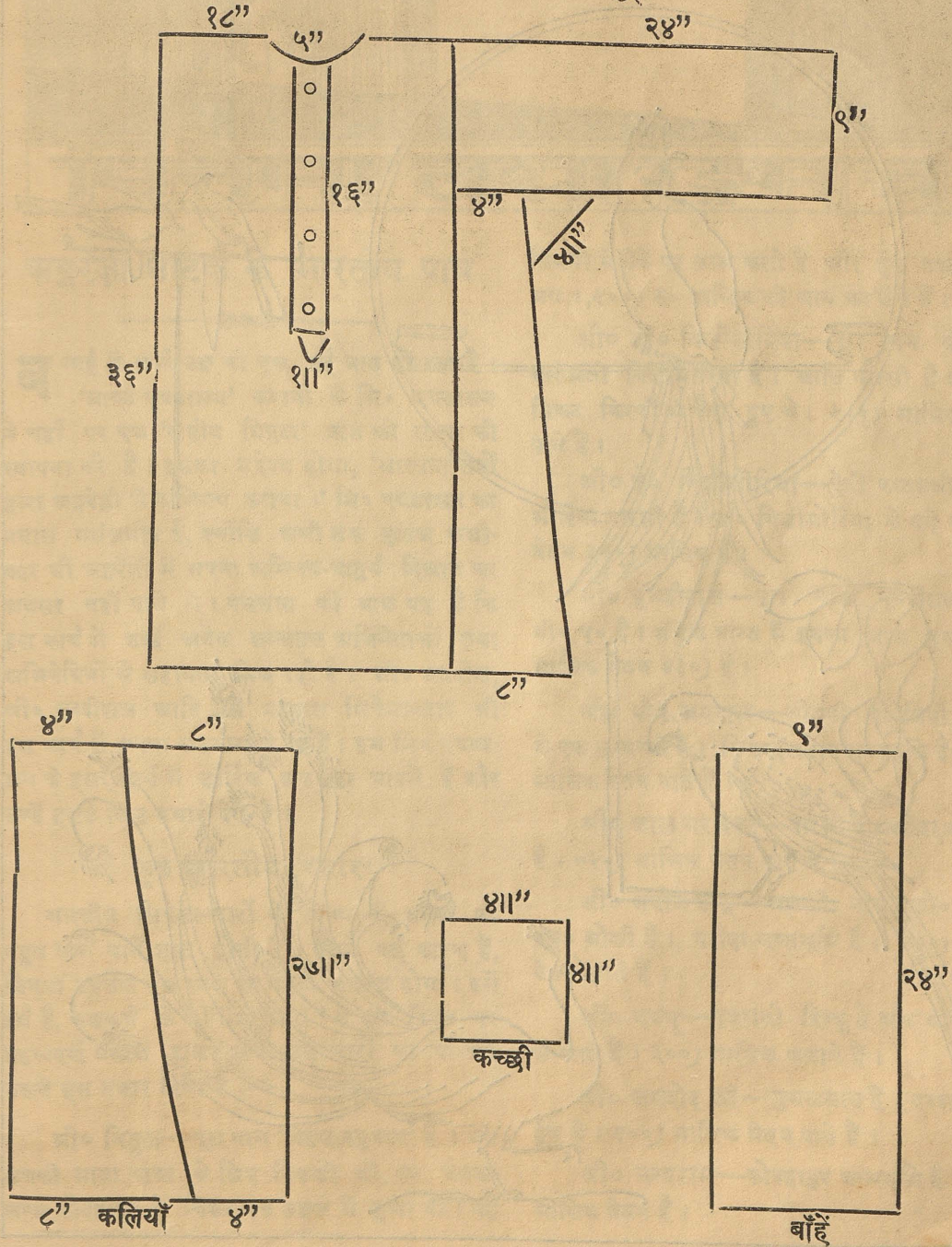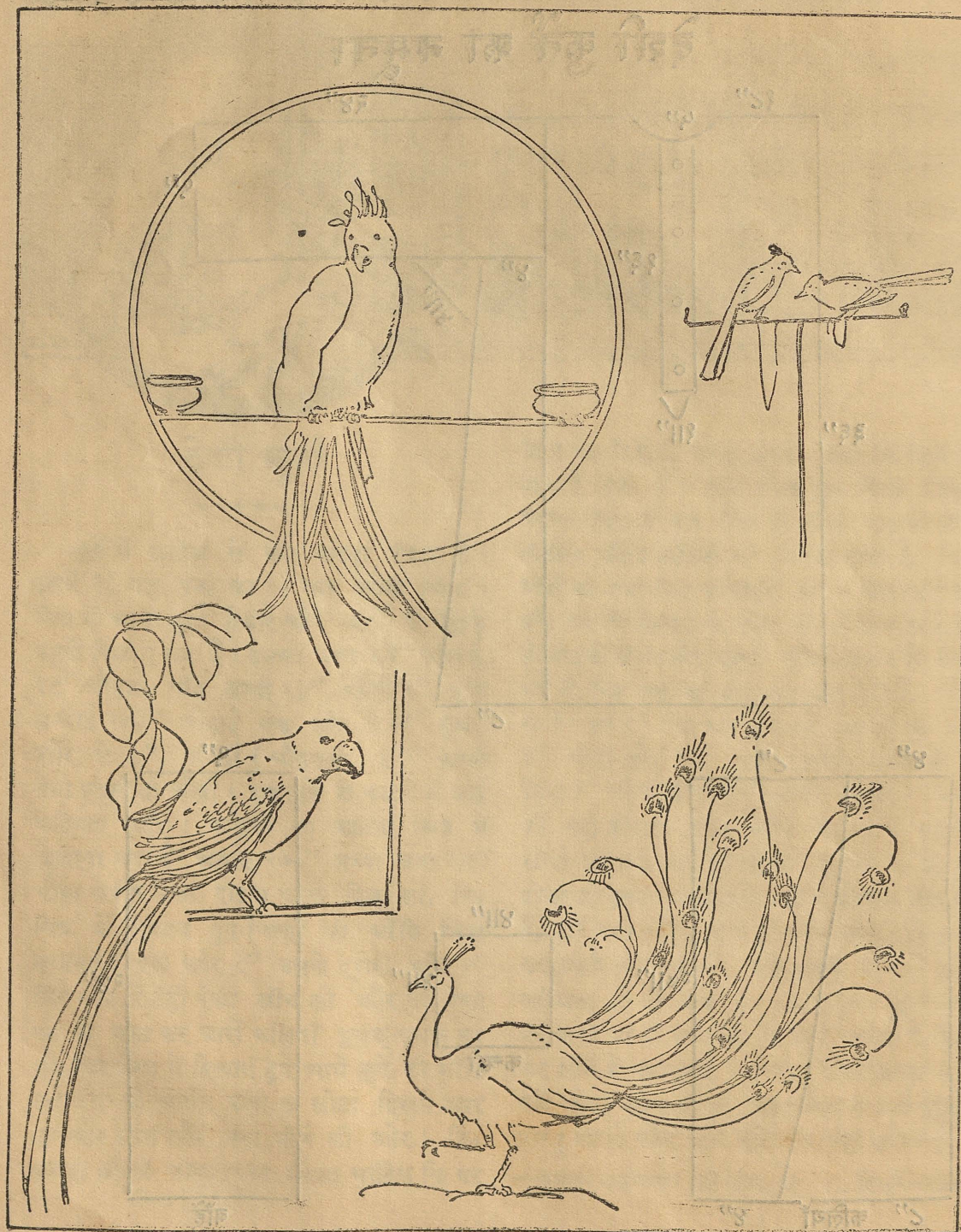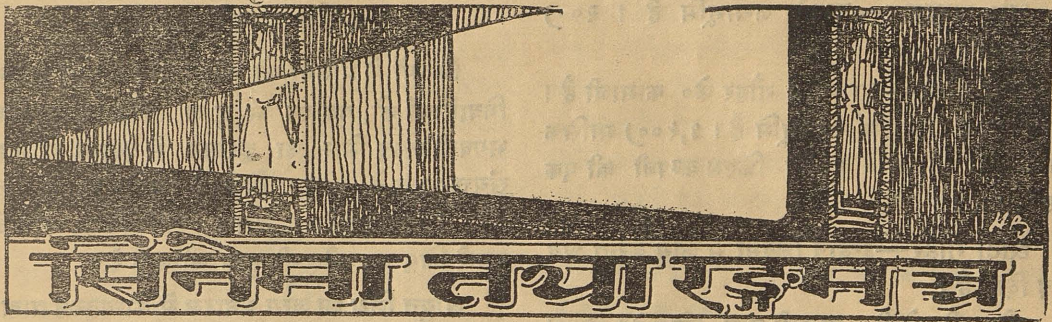
अङ्गरेज़ी नाटक के भारतीय पात्र

बम्बई में अपने ढङ्ग की एक नई बात हो रही है। 'ग्राएट एण्डरसन' कम्पनी के मि० एण्डरसन ने यहाँ पर एक 'राष्ट्रीय थिएटर' नाम की संस्था की स्थापना की है। इसका उद्देश्य होगा, 'भारतवासियों द्वारा अङ्गरेज़ी में अभिनय कराना।' मि० एण्डरसन का प्रयास प्रशंसनीय है, क्योंकि अभी तक कुशल कलाकार भी अङ्गरेज़ी में अपना अभिनय-चातुर्य दिखाने का अवसर नहीं पाते थे। प्रसन्नता की बात यह है कि इस कार्य में उन्हें अनेक सम्भ्रान्त अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों से सहायता मिल रही है। श्री० जगदीश, श्री० पृथ्वीराज आदि जैसे प्रख्यात सिनेमा-स्टार भी इस कार्य में अपना सहयोग दे रहे हैं। हम मि० एण्डरसन के इस कार्य में हार्दिक सफलता चाहते हैं और उन्हें इसके लिए बधाई देते हैं।

कुछ भारतीय 'स्टार'

भारतीय सिनेमा-स्टारों के विषय में जनता को बहुत कम बातें ज्ञात होती हैं। इसके कई कारण हैं, जिनका उल्लेख इस स्थल पर करना असङ्गत होगा। हमें हर्ष है, कलकत्ते के ' Filmland ' ने इस विषय पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला है। कुछ स्टारों का परिचय उसने इस प्रकार दिया है :—

श्री० विट्ठल—पूरा नाम 'विट्ठल रघुनाथ' है। जब उनकी माता यात्रा के लिए निकली थीं, तब उनका जन्म कोल्हापुर के निकट एक जङ्गल में हुआ था। वह फ़िल्मों में ठेके पर काम करते हैं और इस प्रकार लगभग १,५००) रु० मासिक की आय कर लेते हैं।

श्री० डी० बिलीमोरिया—पूरा नाम दीन शॉ रुस्तमजी बिलीमोरिया है। जाति पारसी है। पूना के निकट किरकी में पैदा हुए थे। ५००) मासिक वेतन पाते हैं।

श्री० ई० बिलीमोरिया—ऐडी रुस्तमजी बिलीमोरिया पारसी हैं। डी० बिलीमोरिया के बड़े भाई हैं। वेतन ३००) मासिक है।

श्री० पृथ्वीराज—पूरा नाम पृथ्वीराज कपूर, बी० ए० है। संयुक्त प्रान्त में इनका जन्म हुआ था। मासिक वेतन ४५०) है।

श्री० पी० जयराज—श्रीमती सरोजिनी नायडू के एक सम्बन्धी हैं। सिकन्दराबाद जन्मभूमि है। ४००) मासिक वेतन पाते हैं।

श्री० जाल मरचेन्ट—पारसी हैं। बरौदा जन्मभूमि है। ७५०) मासिक वेतन पाते हैं।

श्री० नवीनचन्द्र—असली नाम श्री० नरहरि एन० जोशी है। बरौदा जन्मभूमि है। ४००) मासिक वेतन पाते हैं।

श्री० बच्चू—गुजराती हिन्दू हैं और काठियावाड़ से आते हैं। ३००) मासिक कमाते हैं।

श्री० जमशेद जी—मुसलमान हैं। बम्बई में पैदा हुए थे। ५००) मासिक वेतन पाते हैं।

श्री० नन्दराम—कोल्हापुर जन्मभूमि है। ६००) मासिक वेतन है।

श्री० चन्द्रराउ—बम्बई जन्मभूमि है। २००) मासिक पाते हैं।

बड़ी गौहर—पूरा नाम गौहर के० कामाजी है। मुसलमान हैं। लाहौर जन्मभूमि है। १,२००) मासिक वेतन पाती हैं। श्री० रञ्जीत फ़िल्म कम्पनी की एक हिस्सेदार हैं।

छोटी गौहर—इन्होंने फ़िल्मों में काम करना अब छोड़ दिया है।

श्री० सीतादेवी—असली नाम 'मिस रेने स्मिथ' है। एङ्ग्लो-इण्डियन हैं। कलकत्ते में पैदा हुई थीं। २,०००) मासिक पाती हैं।

श्री० एरमैलीन—पूरा नाम 'मिस एरमैलीन कोर-डाज़ो' है। ईसाई हैं। बम्बई जन्मभूमि है। ७५०) मासिक पाती हैं।

श्री० सुलोचना—असली नाम 'मिस रुबी मायर्स' है। एङ्ग्लो-इण्डियन यहूदी हैं। पूना जन्मभूमि है। पहले टेलीफ़ोन ऑपरेटर थीं। २,०००) मासिक वेतन पाती हैं।

श्री० माधुरी—असली नाम 'मिस क्लेसन' है। एङ्ग्लोइण्डियन हैं। बम्बई में पैदा हुई थीं। ८००) मासिक वेतन पाती हैं।

श्री० सविता देवी—असली नाम 'मिस आइरिश गैस्पर' है। एङ्ग्लो-इण्डियन हैं। कलकत्ते में पैदा हुई थीं।

श्री० लोनो—ईसाई हैं। बम्बई की ही रहने वाली हैं। ३००) मासिक वेतन है।

श्री० ज़ुबैदा—सूरत के निकट पैदा हुई थीं। मुसलमान हैं। फ़ातमा और सुलताना की बहिन हैं। २,०००) मासिक पाती हैं।

श्री० जिल्लू—कच्छी मेमन मुसलमान हैं। बम्बई में पैदा हुई थीं। ८००) मासिक पाती हैं।

श्री० ज़ेबुन्निसा—मुसलमान हैं। बम्बई में पैदा हुई थीं। ६००) मासिक वेतन है।

श्री० शान्ताकुमारी—दक्षिणी। बम्बई में पैदा हुई थीं। कृष्णा-कम्पनी में काम करती हैं और वेतन ७००) मासिक पाती हैं।

❁ ❁ ❁

स्वर्गीय डाइरेक्टर मिश्र

फ़िल्मों के प्रेमियों को और विशेषकर संयुक्त-प्रान्त-निवासियों को, यह पढ़ कर दुःख होगा कि डाइरेक्टर भगवतीप्रसाद मिश्र का कुसमय में देहान्त हो गया। संयुक्त-प्रान्त ने श्रीयुत मिश्र के अतिरिक्त अभी तक कोई फ़िल्म-डाइरेक्टर उत्पन्न नहीं किया, इसलिए हमारे लिए यह और भी दुःख की बात है।

श्रीयुत मिश्र का जन्म बनारस में कान्यकुब्ज ब्राह्मण-कुटुम्ब में हुआ था। आपने अपना विद्यार्थी-जीवन

स्वर्गीय श्री० भगवतीप्रसाद मिश्र

बनारस में ही व्यतीत किया था और हिन्दू-विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा पास की। आपकी रुचि ललित कलाओं की ओर अधिक थी, अतः आपने चित्रकला का विशेष अध्ययन किया। जब असहयोग आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ, तो आपने उसमें भी भाग लिया।

जब श्रीयुत मिश्र बम्बई आए, तो पहले आपने श्री० आर्देशिर ईरानी की 'स्टार' फ़िल्म-कम्पनी में चित्रकार का काम पाया। आप बड़ी ख़ूबी के साथ फ़िल्मों

के पोस्टर बनाया करते थे। परन्तु आपको अपनी प्रतिभा अन्य क्षेत्रों में भी प्रगट करनी थी, अतः आप वहीं रह कर ऐक्टिङ्ग आदि का अभ्यास करते रहे। कुछ दिनों बाद 'विजय' नामक फ़िल्म में आपको एक छोटा-सा पार्ट दिया गया। इसके बाद दूसरा फ़िल्म, जिसमें आपने काम किया, था 'वीर दुर्गादास'। इस फ़िल्म से आपका नाम बढ़ने लगा। कुछ दिनों के बाद नवल गाँधी के दो फ़िल्म 'मुम्बई नी शेठाणी' तथा 'शाहजहाँ' में भी आपने प्रमुख काम किया। इसके बाद आपने और मि० जगतप ने मिल कर स्वतन्त्ररूप से, 'दक्षिण का प्रकाश' नामक फ़िल्म बनाया, जिसमें मिस ज़िलू ने प्रमुख काम किया था। उसके बाद श्रीयुत मिश्र का जीवन फ़िल्म-डाइरेक्टर की भाँति व्यतीत हुआ। कुछ दिनों आपने रॉयल आर्ट स्टुडिओ में काम करके फिर इम्पीरियल फ़िल्म कम्पनी के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया और उसे अपनी मृत्यु-पर्यन्त स्थिर रक्खा। हाँ, केवल कुछ दिनों के लिए 'ज़ारीना' फ़िल्म कम्पनी के साथ आपने एक फ़िल्म बनाया था। इम्पीरियल के साथ आपने 'पहाड़ी पिंढारा', 'अलादीन', 'बदला', 'क़ातिल हार', 'कमलाकुमारी', 'एक अबला', 'राजरमणी', 'मेवाड़ का मोती', 'चैलेञ्ज', 'सिनेमा-गर्ल' आदि बे बोलते फ़िल्म तथा 'द्रौपदी', 'यौवन', तथा 'सती मदालसा' ये तीन बोलते फ़िल्म बनाए हैं। 'सती मदालसा' आपकी अन्तिम कृति है। इसीके बनाने के समय आपको न्यूमोनिया हो गया, जिसके कारण आपका देहान्त हो गया।

आपका विवाह तो बाल्यवस्था ही में हो चुका था, परन्तु पीछे से पत्नी का देहान्त हो गया। इधर इम्पीरियल की स्टार मिस अर्मलीन से आपका बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया था। यहाँ तक कि मिस अर्मलीन ने श्रीयुत मिश्र की स्मृति में हिन्दू-धर्म स्वीकार करके अपना नाम सुधाबाला रख लिया है। आप अपने पीछे अपनी वृद्ध माता, बहिन तथा अनेक मित्रों को छोड़ गए हैं। आपके निधन से भारतीय फ़िल्म-संसार की बड़ी क्षति हुई है। परमात्मा आपकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

❀ ❀ ❀

'अयोध्या का राजा'

प्रभात कम्पनी के फ़िल्म 'अयोध्या का राजा' के विषय में बहुत-कुछ लिखा जा चुका है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह फ़िल्म कई बातों में बहुत श्रेष्ठ है, परन्तु इसकी अत्यधिक प्रशंसा का यह फ़र्ज़ होगा कि कम्पनी उसके दोषों पर बिलकुल ही ध्यान न देगी। वास्तविक कथा को कई स्थानों पर तोड़-मरोड़ डालना, काशी का ग़लत चित्र खींचना, ग़ुलाम-विक्रय की प्रथा को फ़िल्म में दिखाना, तथा विश्वामित्र के एक शिष्य का मूर्खतापूर्ण मज़ाक़ आदि बातें ऐसी हैं, जो कभी भी क्षमा करने योग्य नहीं हैं। हमें आशा है कि जहाँ प्रभात कम्पनी इस फ़िल्म की प्रशंसा से उत्साहित हो, वहाँ इन भद्दी भूलों को अपने आगामी फ़िल्मों में सुधारने का प्रयत्न करे।

मंगल-कामना

[श्री० रामचन्द्र जी शुक्ल 'सरस']

लीन्हें छत्र चँवर सदाई सङ्ग राजै जय, विजय विराजै जौ पराजय हर्यौ करै।
'सरस' बखानै मञ्जु मुख मुसुकानि कानि, कलित कृपा की बानि कलुष दर्यौ करै।
दुति दसनावलि की दीपति दिगन्तनि लौं, विपति घनाली कौ घनौतम गर्यौ करै।
बीरबर पारथ महारथ कौ सारथ सो, सारथ हमारौ पुरुसारथ कर्यौ करै॥

नज़र उनकी फिरी तो फिर हुआ क्या, ज़मीं पर गिर पड़े हम आस्माँ से !

आस्माँ

शरफ़[1] बख़शा यह किसके नक़्शे-पा[2] ने,
ज़मीं दबती नहीं है आस्माँ से !

उड़ाई ख़ाक यूँ दश्ते[3] जुनूँ की,
ज़मीं मिल-मिल गई है आस्माँ से ।

—'नूह' नारवी

वह क्यों बिगड़े मेरे शोरोफ़ुग़ाँ[4] से,
शिकायत उनसे थी या आस्माँ से ।

—'हसरत' मोहानी

हमारे मुन्तशिर[5] ज़र्राते दिल को,
सितारे झाँकते हैं आस्माँ से ।

—'अमीन' सलोनी

छुड़ाया हाथ किसको आशियाँ[6] से,
कि एक तारा सा टूटा आस्माँ से !

—'माजिद' इलाहाबादी

हसीं तुझमें हैं, उनमें हैं सितारे,
ज़मीं टेढ़ी न होना आस्माँ से ।

—'शफ़ीक़' लखनवी

तेरे जौरो[7] सितम भी ऐ सितमगर,
तजावज़[8] कर गए हैं आस्माँ से ।

—'बिरयाँ' इलाहाबादी

१—मरतबा, २—पाँव का निशान, ३—जङ्गल, ४—कराहना, ५—बिखरे हुए, ६—घोंसला, ७—ज़ुल्म ८—बढ़ जाना ।

अगर मैं काम लूँ आहोफ़ुग़ाँ से,
ज़मीं पर आग बरसे आस्माँ से ।

फ़ना[9] के बाद बातें कर रही है,
हमारी ख़ाक उड़ कर आस्माँ से ।

नज़र उनकी फिरी तो फिर हुआ क्या,
ज़मीं पर गिर पड़े हम आस्माँ से !

—'बिस्मिल' इलाहाबादी

आशियाँ

पयाम[10] आया है कुछ बर्क़े-तपाँ[11] से,
लिपट कर रो रहा हूँ आशियाँ से !

फ़लक से देखता सूए ज़मीं क्यों,
मगर मजबूर हूँ मैं आशियाँ से ।

—'इशरत' बलरामपुरी

कहा बुलबुल ने है यह बदशगूनी,[12]
गिरे जाते हैं तिनके आशियाँ से !

—'शफ़ीक़' लखनवी

जो थर्रा कर गिरी बर्क़ आस्माँ से,
वह खुल खेली हमारे आशियाँ से ।

जला कुछ इस तरह बर्क़ें तपाँ से,
नहीं उठता धुआँ तक आशियाँ से ।

नज़र में है फ़रेबे रङ्गे गुलशन,[13]
क़फ़स[14] को देखता हूँ आशियाँ से ।

९—नाश होने पर, १०—पैग़ाम, ११—तड़पती हुई बिजली, १२—मनहूस, १३—बाग़, १४—पिंजड़ा ।

क़फ़स में किस लिए घबराए बुलबुल,
कि है यह मिलता-जुलता आशियाँ से।
नज़र में फिर रहा है तिनका-तिनका,
नज़र मेरी फिरे क्या आशियाँ से।
—'बिस्मिल' इलाहाबादी

कहाँ

मोअस्सर जो न हो हुस्ने-बुताँ से,
इलाही मैं वह दिल लाऊँ कहाँ से।
—'नूह' नारवी

हमें उनका ख़याल ! अल्ला हो अकबर,
कहाँ तक था कहाँ तक है कहाँ से।
—'हसरत' मोहानी

मैं ज़िन्दा हूँ मगर दिल बुझ गया है,
अब एहसासे खुशी लाऊँ कहाँ से।
—'अमीन' सलोनवी

वह सुनने बैठे हैं अफ़सानए-दिल,
करूँ मैं इबतिदा, लेकिन कहाँ से ?
—'माजिद' इलाहाबादी

चमक पैदा हुई है हर उस्तख़्वाँ [१५] से,
यह अब की दर्दे दिल उट्ठा कहाँ से।
"शफ़ीक़" अच्छी तरह फिर उम्र काटें,
जवानी ढूँढ़ कर लाएँ कहाँ से।
—'शफ़ीक़' लखनवी

कभी पूछूँगा मैं उमरे-रवाँ से,
कहाँ जाएगी, आई है कहाँ से ?
—'बिरयाँ' इलाहाबादी

तेरे कूचे में बर्पा है क़यामत,
यह दुनिया आ गई खिंच कर कहाँ से।
मेरे इज़हारे-ग़म [१६] पर मुस्किराना,
यह शोख़ी आ गई तुममें कहाँ से।
—'बिस्मिल' इलाहाबादी

ज़बाँ

फ़िसाना [१७] फिर मुहब्बत का फ़िसाना,
कभी सुनिए इसे मेरी ज़बाँ से।

न दिलवाओ मुझे दुश्मन से ताने,
जो कहना हो कहो अपनी ज़बाँ से।
वह बिगड़े हमसे अर्ज़े-मुद्दआ [१८] पर,
सुना जो कुछ सुना अपनी ज़बाँ से।
—'नूह' नारवी

हुई हरगिज़ न इज़हारे-तमन्ना, [१९]
ख़मोशी से निगाहों से ज़बाँ से।
—'इशरत' बलरामपुरी

अगर सच्चाई की कुछ हो ज़रूरत,
बदल लीजे ज़बाँ मेरी ज़बाँ से !
बहुत ग़ुस्सा है बस ख़ामोश रहिए,
निकल जाए न कुछ मेरी ज़बाँ से।
—'शफ़ीक़' लखनवी

मज़ा दे जायगा ग़म का फ़िसाना,
सुनो इसको मेरे दिल की ज़बाँ से।
—'बिस्मिल' इलाहाबादी

कारवाँ

ग़बारे-कारवाँ [२०] तू ही ठहर जा,
मैं पीछे रह गया हूँ कारवाँ से।
—'इशरत' बलरामपुरी

उठाने दे क़दम ऐ नातवानी [२१],
दबा जाता हूँ गर्दे कारवाँ से।
मुझे एक-एक क़दम पर मिल रहा है,
पता मन्ज़िल का गर्दे कारवाँ से !
इसे कहते हैं शौक़े लुत्फ़े मन्ज़िल,
निकल आया हूँ आगे कारवाँ से।
—'बिस्मिल' इलाहाबादी

रवाँ

तुम्हें "माजिद" ने जी भर कर न देखा,
शिकायत रह गई उम्रे-रवाँ से।
—'माजिद' इलाहाबादी

१५—हड्डी, १६—दुःख कहना, १७—क़िस्सा। १८—मतलब की बात, १९—आरज़ू का बयान, २०—क़ाफ़ले की धूल, २१—कमज़ोरी।
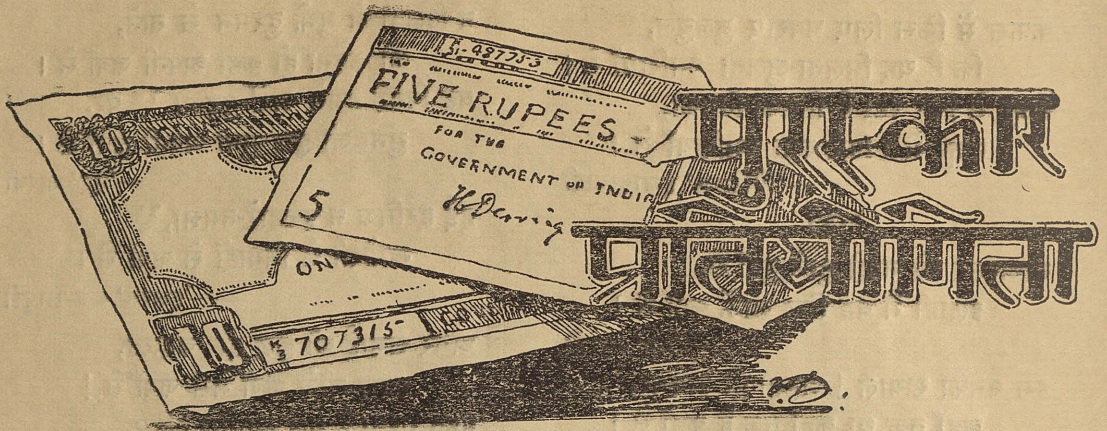
इस मास की दो पहेलियाँ

पुरस्कार प्रतियोगिता के प्रेमी पाठकों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि इस मास के 'चाँद' में हमने दो पहेलियाँ दी हैं। प्रथम पहेली का ठीक उत्तर देने वाले 'चाँद' के ग्राहक को दो वर्ष तक 'चाँद' बिना मूल्य दिया जाएगा और द्वितीय पहेली का ठीक उत्तर देने वाले 'चाँद' के ग्राहक को २५) नक़द पुरस्कार-स्वरूप दिए जायँगे। दोनों पहेलियों के नियम नीचे पढ़िए :—

नियम

१—यह प्रतियोगिता 'चाँद' के सभी पाठकों के लिए है। जो 'चाँद' के स्थायी ग्राहक हैं, उन्हें कूपन पर अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए। प्रत्येक ग्राहक जितने उत्तर चाहे भेज सकता है। एक उत्तर तो निःशुल्क होगा, परन्तु उसके बाद के उत्तर के साथ ।) का टिकट भेजने की आवश्यकता है। जो 'चाँद' के स्थायी ग्राहक नहीं हैं, उन्हें पहले उत्तर के साथ ।।।) तथा शेष उत्तरों के लिए प्रत्येक उत्तर के साथ ।) का टिकट भेजना चाहिए।

२—प्रत्येक पहेली का उत्तर अलग-अलग काग़ज़ों पर लिखा होना चाहिए। एक ही काग़ज़ पर लिखे हुए उत्तरों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाएगा।

३—पहली पहेली। इसमें भाग लेने वालों को 'चाँद' के इस अङ्क में प्रकाशित सभी विज्ञापनों को सावधानी से पढ़ कर यह बताना होगा कि उनमें से कौन से दस विज्ञापन ऐसे हैं, जो जनता को चीज़ ख़रीदने के लिए विशेष रूप से आकर्षित कर सकते हैं। इसके बाद उन्हें उन दस विज्ञापनों को श्रेष्ठता के विचार से कूपन के ख़ानों में रखना चाहिए ; जो सब से अच्छा है, वह पहले में और उसके बाद का दूसरे में, आदि। पाठकों को यह याद रखना चाहिए कि प्रतियोगिता में 'चाँद' प्रेस के विज्ञापन सम्मिलित नहीं हैं। (उनके लिए आगे चल कर दूसरी प्रतियोगिता होगी।) ख़ानों में विज्ञापनों के पते का प्रथम अंश लिखा जाना चाहिए। जैसे—सुखसञ्चारक कम्पनी, ओकासा कम्पनी आदि।

४—एक विज्ञापनों से सम्बन्ध रखने वाले सज्जन ने इन विज्ञापनों में से दस को चुन कर सूची हमारे पास भेज दी है। जिस पाठक का उत्तर हमारे पास रक्खी हुई सूची से मिल जायगा, उस पाठक या पाठकों को दो वर्ष तक 'चाँद' बिना मूल्य दिया जायगा। जो ग्राहक नहीं हैं, उन्हें 'चाँद' एक वर्ष तक मुफ़्त मिलेगा। यदि कोई उत्तर ठीक न होगा तो सब से कम अशुद्धियों वाले उत्तरदाता को, ग्राहक होने पर एक वर्ष तक और ग्राहक न होने पर ६ मास तक 'चाँद' मुफ़्त मिलेगा।

५—दूसरी पहेली। इसमें भाग लेने वालों को नीचे दिए हुए पहेली ० २ के ख़ानों की पूर्ति करनी चाहिए। सहायता के लिए तालिका भी नीचे दी हुई है।

६—पहेलियों के उत्तर हमारे पास आगामी १५ अक्टूबर तक अवश्य आ जाने चाहिएँ। इसके बाद के आए हुए उत्तरों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाएगा।

७—उत्तर सादे काग़ज़ों पर या दो पोस्टकार्डों पर अलग-अलग आने चाहिएँ। परन्तु कृपा करके उत्तर के साथ कोई पत्र न रखिए। उत्तर की एक नक़ल अपने पास रख लीजिए। कटा-छटा या संशोधित उत्तर नियम-विरुद्ध समझा जाएगा।

८—दोनों पहेलियों का या केवल एक ही पहेली का उत्तर देना, उत्तरदाता की इच्छा पर निर्भर है।

९—दूसरी पहेली का जो उत्तर हमारे उत्तर से मिलेगा, उसके प्रेषक को २५) नक़द मनिऑर्डर कमीशन काट कर भेज दिए जाएँगे। यदि एक से अधिक उत्तर ठीक होंगे, तो पुरस्कार की रक़म उत्तरदाताओं में बराबर बाँट दी जायगी।

१०—निर्णय का सम्पूर्ण अधिकार प्रतियोगिता-सम्पादक को है।

११—चाँद प्रेस, लिमिटेड के कर्मचारियों को इसमें भाग लेने का अधिकार नहीं है।

१२—पहेलियों के उत्तर नीचे लिखे पते से आने चाहिएँ :—

'चाँद' प्रतियोगिता विभाग,

चाँद प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

या—The CHAND Puzzle Deptt.

The Chand Press, Ltd.,

Allahabad.

कूपन (पहेली नं० १)

१	
२	
३	
४	
५	
६	
७	
८	
९	
१०	

मैंने 'चाँद' की प्रतियोगिता के नियम पढ़ लिए हैं। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं उनका पालन करूँगा और सम्पादक के निर्णय को स्वीकार करूँगा, तथा इस विषय में कोई पत्र-व्यवहार न करूँगा। (जो इस प्रकार की प्रतिज्ञा न करना चाहें, वे कृपया उत्तर न भेजें।)

ग्राहक नं० ____________

नाम ____________

पूरा पता ____________

____

____

कूपन (पहेली नं० २)

१	■	२	३	४	■	५		
६	७	■	८		९		■	■
■	१०		■	११		■	१२	१३
१४		■	१५	■	■	१६		
	■	१७			१८		■	
१९	२०		■	■		■	२१	
२२		■	२३	२४	■	२५		■
■	■	२६			२७	■	२८	२९
३०			■	३१			■	

तालिका

सीधे (Across)

२—मुलायम।
५—प्रत्येक मनुष्य खाता है।
६—जी।
८—एक नदी।
१०—रण का अशुद्ध शब्द।
११—पैग़म्बर
१२—केवल राजा के पास होता है।
१४—मदार।
१६—एक बाजा।
१७—हिन्दी का एक प्रसिद्ध पत्र।
१९—जो मुक़द्दमा लड़ता है
२१—हृदय।
२२—जो क़लाबाज़ी करता है।
२३—अङ्गरेज़ी तौल की एक नाप।
२५—पुरुष।
२८—उसमें रक्त बहता है।
३०—कृषक
३१—रत्न का अशुद्ध रूप

ऊपर से नीचे (Down)

१—गीला।
३—एक अङ्गरेज़ी शराब का नाम।
४—बड़ा।
५—दरिया।
७—जहाँ पापी मनुष्य जाता है।
९-११—सीधा (Across)
१२—एक प्रकार की गुड़ की मिठाई।
१३—तालाब, कुआँ इत्यादि
१४—जीवन भर
१५—नया
१६—देह
१७—एक राजा
१८—जङ्गल
२०—कीड़ा
२१—मृग
२३—घण्टी का शब्द
२४—गद्य का उर्दू शब्द
२६—दौलत
२७—राय
२९—सूर्य का अङ्गरेज़ी शब्द।

❀ ❀ ❀

पिछली पहेली का परिणाम

१—ठीक उत्तर इस प्रकार है:—

१	महामाया
२	राधारानी
३	मणिमोहन
४	भजनलाल
५	व्रजकिशोरी
६	अट्टालिका
७	महावीर

निम्नलिखित देवियों के बिलकुल सही उत्तर प्राप्त हुए हैं, अतः उन्हें 'चाँद' ढाई-ढाई वर्ष के लिए मुफ़्त भेजा जायगा:—

१—श्रीमती लक्ष्मीदेवी, धनबाद (बिहार)
२—श्रीमती विमलादेवी, दालबन्दीन (बलोचिस्तान)

श्रीजगद्गुरु का फ़तवा

[हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द जी विरूपाक्ष]

अल्लाह मियाँ की इस पुरानी झोली में बदनसीबों की कमी नहीं; एक से एक शतधा-विदीर्ण तक़दीर वाले जीव इसमें पड़े हुए हैं। परन्तु ख़ुदा झूठ न बुलवाए, इस सम्बन्ध में हमारे पूज्यपाद दादा सनातनधर्म की होड़ कोई माई का लाल नहीं कर सकता, चाहे उसकी तक़दीर फूट कर चूर-चूर हो गई हो अथवा संसार-चक्र के आवर्त्त में पड़ कर पिसान हो गई हो।

❀

बात यह है कि गुजरात प्रान्त की एक ब्राह्मण-कुमारिका ने अपने बूढ़े सनातनी बाप की आज्ञा और अनुमति के विरुद्ध, अपनी इच्छा और रुचि के अनुसार अपने लिए वर चुन कर, दादा सनातनधर्म की जरा-जीर्ण कमर पर एक ऐसा पूरे सवा मन का घ्योंसा जमा दिया है कि बेचारे कमर थाम कर बैठ गए हैं और लक्षणों से मालूम होता है कि अगर स्वयं बाबा ज्ञानानन्द भी, साल दो साल अङ्गूर के मुरब्बे के साथ चन्द्रोदय सेवन करके ज़ोर लगावें तो भी दादा जी की कमर सीधी न होगी।

❀

उपर्युक्त कुमारी के धर्मप्राण पिता ने अपनी कन्या के इस धर्म-विरुद्ध कार्य में यथाशक्ति बड़ी-बड़ी बाधाएँ उपस्थित कीं; अपने परम प्रिय धर्म-भगवान को इस आसन्न-विपद से बचाने के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया; परन्तु कमबख़्त लड़की है कि आफ़त की परकाला! पूज्य पिता की ज़रा भी दाल नहीं गलने दी, बेचारे कन्यादान के महापुण्य की बदौलत स्वर्ग-सुख की कल्पना ही करते रह गए और लड़की ने अपने मनोनीत पति से वैदिक विधि के अनुसार पाणिपीड़न करा लिया!

❀

इसीलिए तो अपने राम ने जब से होश सँभाला और लँगोटी बाँधना सीखा, तभी से चिल्ला रहे हैं कि बाबा, अगर अपना और धर्म का भला चाहते हो तो लड़कियों को ककहरा के क़रीब भी मत जाने दो, उनके चेहरे को धर्मध्वंसी मुक्त वायु के स्पर्श से सतर्कतापूर्वक बचाए रक्खो, नहीं तो दादा सनातनधर्म की अवशिष्ट एकमात्र टाँग भी टूट जाएगी और धर्मधुरन्धरों के हाथों में रह जायँगे केवल कठिन कठोर दो अदद सींग और मुट्ठी भर पशमों का गुच्छा यानी पूँछ!

❀

ख़ैर, आइए, एक ख़ुशख़बरी सुनाएँ। घटना अवश्य कुछ पुरानी है, परन्तु उसके महत्त्व को ज़रा भी रेप नहीं लगी है। साथ ही इससे आपको यह भी मालूम हो जाएगा कि अगर एक ओर कुछ लोगों ने धर्म-भगवान को उलटे छुरे से मूँड़ना आरम्भ कर दिया है, तो दूसरी ओर उनके एक से एक धुरन्धर रक्षक भी मौजूद हैं। किसी ने क्या ख़ूब कहा है कि—

दुश्मन अगर क़वीस्त तो निगहबाँ क़वीतरास्त !*

❀

श्री० पाँचू चौधरी धोबी दानापुर के 'मुन्शीपाल' बोर्ड के कमिश्नर हैं। उस दिन बोर्ड के एक बचकाने अधिवेशन में हज़रत महामहिम्वित चेयरमैन साहब के सामने एक चेयर (कुर्सी) पर जा बैठे! चेयर के प्रति चौधरी की यह चपलता, भला चेयर के महत्त्व को समझने वाले चेयरमैन साहब कैसे बर्दाश्त कर जाते! आपने चट चौधरी को चेयर छोड़ कर बेञ्च पर बैठ जाने की आज्ञा दी!

❀

---

*शत्रु अगर बलवान है तो रक्षक उससे भी बलवान है।

बड़ी ख़ैरियत हुई ! चतुर चेयरमैन की उपस्थित बुद्धि ने चेयर को चौधरी के चाप से बचा लिया, नहीं तो बेचारी को इहजीवन में जाति-च्युत होकर जीना पड़ता और मरने पर नरक में जाती। हिन्दुत्व की मर्यादा बेचारी की क्या दशा होती, इसकी तो कल्पना ही कलेजे में कण्डुअन पैदा कर देती है। किसी ने सच कहा है कि 'चाम की महिमा चमार ही समझता है।' लेहाज़ा चेयर की महिमा भी अगर चेयरमैन की समझ में आ गई तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

❀

परन्तु कुछ भी हो, अपने राम की राय में तो चेयरमैन और चौधरी, दोनों ही 'मल-हर' हैं। एक का काम है कपड़ों की मैल दूर करना और दूसरे का रास्ते और गली-कूचों का ! किसी म्युनिसिपल बोर्ड का चेयरमैन अगर अपने को धोबी से उच्च और अधिक प्रतिष्ठित समझता है, तो यह उसकी मूर्खता है—उसके मन में जमी हुई पुश्त-दरपुश्त की मैल का यह प्रभाव है। इस मल को दूर करने के लिए अख़बार वालों को हलाल-ख़ोरी करने की ज़रूरत नहीं। युगधर्म का झाड़ू पड़ते ही ऐसी खोपड़ियों की मैल अपने आप दूर हो जायगी।

❀

दूधों नहाएँ और पूतों फलें, रामपुर स्टेट के वे धर्म-धुरन्धर हिन्दू, जिन्होंने अभी हाल में ही अपने देवता को चार सौ चमारों के नेत्र-स्पर्श से बाल-बाल बचा लिया है ! अन्यथा आज एक देवता की जान मुफ़्त में चली जाती। चमार-चक्षु-स्पर्श के कारण बेचारे की पवित्रता गदहे के सींग की तरह ग़ायब हो जाती। देवता जी न घर के रह जाते और न घाट के ! लेहाज़ा बड़ी बात हुई जो बेचारे आकाल मृत्यु से बच गए !

❀

अब ज़रा इन चमारों की स्पर्धा तो देखिए। हमारे पूज्यपाद महामना मालवीय जी ने अपना युग-युगान्तर-सञ्चित मन्त्रागार खोल दिया है और दोनों हाथों से 'ॐ नारायणाय' तथा 'नमः शिवाय' लुटा रहे हैं, तो भी ये कमबख़्त अछूत हमारे देवताओं के पीछे पड़े हुए हैं। आख़िर, देव-दर्शन का उद्देश्य मुक्ति ही तो ठहरा। सो जनाब, इसका प्रशस्त पथ तो मालवीय जी ने खोल ही रक्खा है। फिर आए दिन का यह तूफ़ाने-बेतमीज़ी क्यों ?

❀

हिन्दुओं ने प्रचुर दूध-मलाई और मालपूआ आदि का भोग लगा-लगा कर अपने देवता को पाल रक्खा है। बेचारों में कितने ही ऐसे हैं, जिनके बाल-बच्चों को भादों की झड़ी से बचने के लिए एक अच्छा फूस का झोंपड़ा भी नहीं, परन्तु देवता के आरामो-आराइश के लिए उन्होंने पक्के मन्दिर बनवा रक्खे हैं। दिन-रात उनकी शोभा और उनके सौन्दर्य की वृद्धि के उपायों में लगे रहते हैं। ऐसी हालत में अगर वे उन्हें अछूतों के दृष्टि-स्पर्श से बचाए रखते हैं, तो क्या बुरा करते हैं ? ख़ुदा न करे, अगर कहीं किसी अछूत की नज़र लग जाएगी तो राई-नून क्या आपके घर से आएगा ?

❀

मगर ये अछूत हैं कि दईमारे मानते ही नहीं। बस, इसी ज़रा सी बात पर रूठ कर मुसलमान होने जा रहे हैं ! चलो, अच्छा ही रहेगा। देवताओं के शत्रुओं की संख्या कम हो जाएगी। बला से चार ही सौ सही। अहा ! देवता जी ने जब सुना होगा कि उनका दर्शन न कर सकने के कारण रामपुर स्टेट के चार सौ चमार मुसलमान होने जा रहे हैं तो वल्लाह, उनकी बाछें खिल गई होंगी और ख़ुशी के मारे उन्होंने अपनी देवताइन जी का मुँह चूम लिया होगा।

❀

चार ही सौ क्यों, हमारी तो राय है कि अगर देश भर के सभी अछूत मुसलमान या ईसाई हो जाएँ तो हमारे देवताओं के सर से बड़ी भारी बला टल जाए। बेचारे सुख की नींद सोवें और जब तक जिएँ, तब तक चैन की वंशी बजाते रहें ! उनके साथ ही उनके जानो-माल के ठीकेदार—उच्च जाति के हिन्दूगण भी निश्चिन्त हो जाएँ और दादा सनातनधर्म की चिकनी चाँद वर्षा का पानी पाए हुए दूर्वादल के मैदान की तरह लहलहा उठे !

❀

मगर महामना मालवीय जी न मानेंगे। क्योंकि उन्होंने अछूतों को बिना खेवा-बटसारी के ही वैतरणी पार करने के लिए अपनी बुढ़ौती के कारण किञ्चित् ख़मीदा कमर को स्वदेशी आबेरवाँ के दुपट्टे से अच्छी तरह कस लिया है। काशी में अछूतों के लिए बाबा विश्व-नाथ के सौतेले भाई (?) बाबा अखण्डकाशीनाथ की स्थापना कराने वाले हैं। परन्तु काशी के बूढ़े विश्वनाथ

बाबा मालवीय जी के गर्भस्थ अखण्डकटाहनाथ बाबा से रोटी-बेटी का सम्बन्ध रक्खेंगे या नहीं, इस प्रश्न पर शायद पीछे विचार कर लिया जायगा। अथवा इसके निर्णय का भार दादा मुग्धानल देव को सौंप दिया जाएगा। क्योंकि साम्प्रदायिक 'निर्णय' में आपने अपनी निष्पक्षता का पूरा परिचय दिया है।

❀

मगर अपने राम चूँकि काफ़िले से दो क़दम आगे ही बढ़े रहने के पक्षपाती हैं। इसलिए इनकी शुभ-सम्मति तो यह है कि काशी में नए अखण्डकटाहनाथ की स्थापना कराने के बदले अगर मालवीय जी अछूतों के लिए एक नए ईश्वर की ही सृष्टि कर डालें तो सदैव के लिए झञ्झट ही मिट जाए। क्यों? जो विश्वनाथ के एक नए प्रतिद्वन्दी की कल्पना कर सकता है, उसके लिए एक नया ईश्वर गढ़ कर रख देना कौन सी बड़ी बात है?

❀

हूँ! आप मुस्कुरा क्यों रहे हैं! अजी हज़रत, आपको मालूम नहीं, जब महर्षि विश्वामित्र जी के पट्ट शिष्य हिज़हाईनेस राजा बहादुर त्रिशङ्कु जी को देवताओं ने अपने स्वर्ग में घुसने नहीं दिया तो महर्षि ने उनके लिए एक नए स्वर्ग की नींव डाल दी! नारियल, सुपारी, साँवा, कोदो—और न जाने क्या-क्या रच डाला! ब्रह्मा बाबा अपने चारों मुँह बाकर हक्के-बक्के से रह गए और देवताओं को भी लेने के देने पड़ गए!

❀

विश्वामित्र जी ने राजर्षि से ब्रह्मर्षि की डिग्री प्राप्त की थी—वशिष्ठ बाबा ने बड़ी-बड़ी कठिन परीक्षाओं के बाद उन्हें ब्रह्मर्षि का सर्टीफ़िकेट प्रदान किया था, और तब कहीं जाकर वे स्वर्ग-निर्माण के लिए पक्के इञ्जीनियर बन सके थे। परन्तु हमारे महामना जी तो, चश्मेबद्दूर, 'बॉर्न ब्रह्मर्षि' हैं। वे तो अगर चाहें तो चुटकी बजाते-बजाते दर्जनों ईश्वरों की सृष्टि कर डालें। ऐसे ही सर्व-शक्तिमान महापुरुषों के लिए बाबा तुलसीदास की कविता में थोड़ा सा इज़ाफ़ा करके एक सज्जन फ़रमा गए हैं :—

समरथ को नहिं दोस गुसाईं, चाहे कूदि परइँ भरसाईं!

❀

लेकिन अफ़सोस तो यह है कि अछूतों को सीधे स्वर्ग भेजने के लिए ऐसी-ऐसी आसान और लाजवाब तद्बीरों के मौजूद रहते हुए भी कुछ मद्रासियों ने अस्पृश्यता दूर करने के लिए एक कमिटी गढ़ डाली है! धर्म और ईश्वर के सम्बन्ध में उच्च वर्ण के हिन्दुओं ने अनादि काल से जो मौरूसी हक़ हासिल कर रक्खा है, उसी में अछूतों को भी शरीक कर लेने की सोलहों आने 'ग़ैर-क़ानूनी' तद्बीरें हो रही हैं। परन्तु उच्च जाति के हिन्दुओं के दिलों में अपने धर्म के प्रति जो अटल आस्था है, उसके अपने राम क़ायल हैं।

❀

किसी अछूत के सुन्नत करा कर रामटहल से मौलवी फ़रज़न्दअली बन जाने पर हिन्दू उसे अपनी बग़ल में बिठा लेंगे। चौधरी पाँचू धोबी अगर बपतिस्मा लेकर रेवरेण्ड पद्मसिंह बन जाएँ तो दानापुर के चेयरमैन साहब उनसे हाथ मिला कर अपने को गौरवान्वित समझेंगे। परन्तु जब तक उसके सर पर चोटी रहेगी, तब तक अपने पवित्र कुँओं पर उनकी परछाईं भी नहीं पड़ने देंगे!!

❀

भई, सच पूछो तो अपनी इसी धार्मिकता के कारण परिवर्तन की ठोकरें खाकर भी यह जाति अभी तक जीवित है। चपत पड़ते-पड़ते चपतगाह, पॉलिश किए हुए जूते की तरह चिकनी और चमकीली बन गई है, माशाअल्लाह, ऐसी चिकनी, कि अगर मक्खी बैठ जाए तो फिसल कर मुँह के बल गिर पड़े, परन्तु अभी तक वह पुरानी आन-बान और शान में बाल बराबर भी अन्तर नहीं आने पाया है। जैसे—

फूलइ फरइ न बेत, यदपि सुधा बरसहिं जलद!

❀

अभी महीना भर भी नहीं बीता होगा, बदायूँ के मुहल्ला जालन्धरी सराय के एक मौलवी साहब के मकान में आग लगी। मर्द तो ख़ैर, किसी तरह कूद-फाँद कर बाहर निकल आए, परन्तु बाहर निगोड़े मर्दुओं का ठट्ट लगा था, बेचारी पर्दानशीन औरतें उनके सामने कैसे आएँ? लेहाज़ा वह अन्दर ही जल कर भस्म हो गईं! जब मुसलमान स्त्रियाँ तक अपने शरीअत (धर्मशास्त्र) के नाम पर क़ुर्बान हो सकती हैं, तो हम हिन्दू क्या उन औरतों से भी गए-गुज़रे हैं! अरे, राम भजिए, ये कुत्तों की मौत मर जाएँ, पर धर्म न छोड़ें!!

[सम्पादक तथा स्वरकार — श्रीयुत नीलू बाबू]

विहाग तीन ताल

[शब्दकार—अज्ञात]

मात्रा १६

स्थायी—करम की नज़र कीजियो तुम ।
बड़े ग़रीब निवाज़,
हज़रत ख्वाजा, राजन के राजा तुम ॥
अन्तरा—दीन दुनि में नाम तिहारो,
रटत रहत सब निशि-दिन पल-छिन ॥

स्थायी

०				१				×				३			
स	ग	म	प	—	नि	ध	नि	सं	—	—	नि	ध	प	म	ग
क	र	म	की	—	न	ज़	र	की	—	—	जि	ओ	आ	तु	म
प	प	—	प	म॑	प	ग	म	ग	—	—	—	स	स	नि	नि
ब	ड़े	—	ग	री	ई	ब	नि	वा	—	—	ज़	ह	ज़	र	त
स	—	ग	—	स	—	ग	म	प	म॑	ग	म	ग	—	स	नि
ख्वा	—	जा	—	रा	—	ज	न	के	ए	रा	आ	जा	—	तु	म

अन्तरा

प	—	नि	नि	सं	—	सं	—	ध	नि		रें	सं	नि	सं	—
दी	—	न	दु	नि	—	में	—	ना	आ	म	ते	हा	आ	रो	—
सं	गं	मं	गं	सं	नि	प	प	ग	म	प	म	ग	ग	स	नि
र	ट	त	र	ह	त	स	ब	नि	शि	दि	न	प	ल	छि	न
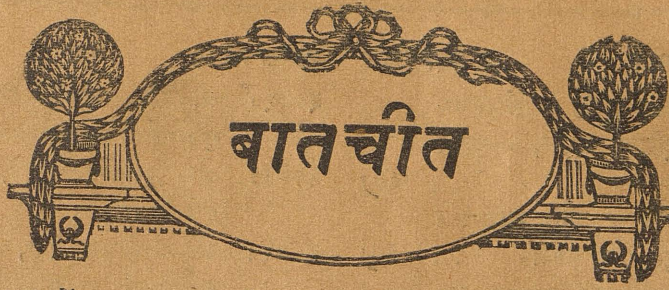
निम्नलिखित नए ग्राहकों का चन्दा जुलाई तथा अगस्त माह में प्राप्त हुआ है। ग्राहकों को चाहिए कि वे अपने नम्बर स्मरण रक्खें और पत्र-व्यवहार के समय इसे अवश्य लिखा करें। बिना ग्राहक-नम्बर के पत्रों की उचित कार्यवाही करना किसी भी दशा में सम्भव नहीं है।

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
२०७७५	मेसर्स राधाकृष्ण दयाराम कुम्हार, मु० कागदीपुरा, पो० बड़नगर, उज्जैन (मालवा)	६॥)
२०७७६	सेक्रेटरी, हिन्दू टेम्पुल रामजानकी, इनसीन, रङ्गून (बर्मा) ...	,,
२०७७७	श्री० के० एल० गुप्ता, आवा हॉल यूनीवर्सिटी कॉलेज, रङ्गून ...	३॥)
२०७७८	हेडमास्टर गवर्नमेण्ट मिडिल स्कूल पो० नारायण पेठ रोड, जी० आई० पी० रेलवे	,,
२०७७९	पण्डित जी० एन० भीड, पो० मुन्डाजी, जि० साउथ कनारा, मद्रास प्रेसिडेन्सी	,,
२०७८०	श्रीयुत हज़ारीलाल गङ्गन, चौक बौरान, पो० डिबोई, (बुलन्दशहर)	,,
२०७८१	बाबू उमाशङ्कर त्रिवेदी, क्लास १०वाँ देवनागरी हाई स्कूल, मेरठ सिटी	६॥)
२०७८२	बाबू रामऔतार विद्यार्थी, स्टूडेण्ट ऑफ़ क्लास IX कुबेर हाई-स्कूल, पो० डिबोई, (बुलन्दशहर) ...	५॥)
२०७८३	बाबू बन्दीदीन चौरसिया दरीबा पान, नई सड़क, कानपुर	६॥)
२०७८४	सेक्रेटरी सार्वजनिक पुस्तकालय, अमहालियासन स्टेशन पो० अमहालियासन (नार्थ गुजरात) ...	,,
२०७८९	बाबू अमृतप्रसादसिंह, बीघापुर, पो० हसुआ तिलैया रेलवे स्टेशन (गया)	३॥)
२०७९०	हेड मास्टर व्होटी एच० ई० स्कूल पो० जहानाबाद (गया) ...	६॥)
२०७९१	पण्डित सीताराम शर्मा, मार्फ़त राजकुमार घोष लेन, मु० रामगती रोड, अक्याब (बर्मा) ...	६॥)
२०७९२	रायबहादुर रुद्रप्रतापसिंह प्रोप्राइटर राजरियासत सोनबरसा, पो० सहरसा (भागलपुर)	,,
२०७९३	बाबू भवानीप्रसाद, प्रेसिडेण्ट सरस्वती लाइब्रेरी विलुअरपुर, पो० विदुपुर (मुज़फ़्फ़रपुर)	,,
२०७९४	मेसर्स प्रतापसिंह नोखेसिंह वर्मा, मु० पो० चाँद (छिन्दवाड़ा) ...	,,
२०७९५	श्रीमती राजकिशोरी देवी, मार्फ़त बाबू मथुराप्रसाद रईस, मु० गुलरिया गारोदा (बाराबङ्की) ...	७)
२०७९६	कुँअर श्री० मोतीसिंह जी, महिदा मण्डेवाचन्दोड़, हाया बारोदा (बम्बई प्रेसिडेन्सी)	६॥)
२०७९७	बाबू आनन्दकृष्ण चौधरी, सब-रजिस्ट्रार पुरवा (उन्नाव) ...	,,
२०७९८	मेसर्स चाँदमल हरिकिशन अग्रवाल छावनी औरङ्गाबाद (दखन एम० एस० रेलवे)	,,
२०७९९	श्रीयुत विश्वनाथ सेठ, मार्फ़त मेसर्स गोकुलचन्द जयनारायण, सोन्धी टोला, लखनऊ	३॥)
२०८०३	पण्डित खमानीचन्द, आनन्द-भवन होटल, चिकपेट, बङ्गलोर सिटी ...	६॥)
२०८०४	बाबू पिताम्बरदास मु० कायस्थान, पो० सिकन्दराबाद (बुलन्दशहर)	,,
२०८०५	सेक्रेटरी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड (सहारनपुर)	,,
२०८०६	बाबू सत्यनारायण जाखोटिया, मार्फ़त मेसर्स रामनारायण लक्ष्मीनारायण बेजवाड़ा (कृष्ना) ...	३॥)

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
३०८०७	बाबू नन्दलाल, मार्फ़त मेसर्स माता-प्रसाद सरजूप्रसाद कसेरा, मोहल्ला सुलो टेन, बनारस... ...	३॥)
३०८१०	श्री० रामनारायण चौबे न्यूज़-पेपर एजेन्ट, जयपुर रोड, अजमेर ...	५॥)
३०८११	सेक्रेटरी, आर्यसमाज मन्दिर, मु० जसपुर (नैनीताल) ...	५)
३०८१२	मास्टर सत्यनारायण राव, रेलवे स्कूल, पो० भागा, (मानभूम) बी० एन० आर०	३॥)
३०८१३	श्रीयुत प्रकाशनारायण, केअर ऑफ़ पं० श्रीनारायण तिवारी, बोर्डिङ्ग हाउस नम्बर १ कमच्छा, बनारस कैंट ...	,,
३०८१४	मेसर्स परमेश्वरीनारायणचन्द, बसन्त-पुर, गोरखपुर	६॥)
३०८१५	मिसेज़ एस० बटरा, मार्फ़त मिस्टर एम० एल० बटरा एस० डी० ओ० सबीवाला, पो० सादीकगढ़ पैलेस, बहावलपुर स्टेट	६॥)
३०८१६	मेसर्स मङ्गलसिंह शिवरामसिंह, एम० ई० एस० कॉन्ट्रैक्टर घोरपुरी, पूना	,,
३०८१७	डॉक्टर एस० एस० व्यास वकील, इन्दौर	,,
३०८१८	प्रेज़ीडेन्ट, बी० एन० कॉलेज, कॉमन रूम, बाँकीपुर, पटना	,,
३०८१९	श्रीयुत बन्धू राउत, मु० पथारगारा, पो० लडैना, दरभङ्गा।	,,
३०८२३	मुन्शी एम० शिवैया शास्त्री, बङ्गलोर सिटी	५॥)
३०८२४	श्रीमती महारानी साहिबा ऑफ़ जगमनपुर मार्फ़त महाराजा साहेब दतिया स्टेट, दतिया	६॥)
३०८२६	कुँवर हनुमन्त पाल जयपुर (राजपुताना)	,,
३०८२७	श्रीमती कमलादेवी धर्मपत्नी बाबू राजेश्वरीप्रसाद रतवारा स्टेट, पो० धोली, मुज़फ़्फ़रपुर	,,
३०८२८	सेक्रेटरी आर्य-समाज, पोस्ट-बक्स नं० १०७ ज़ञ्जीबार (ब्रिटिश इस्ट अफ़्रिका)	८॥)
३०८२९	मिसेज़ बी० गुप्ता, C/o श्री० प्रसादीलाल रिटायर्ड इञ्जीनियर शान्ति-कुञ्ज, मैनपुरी	३॥)
३०८३०	श्री० सी० जी० जारीवाला मैनेजर गुजरात प्रिन्टिरी स्टेशन रोड, सूरत	३॥)
३०८३१	श्री० सुखनन्दन ठाकुर, पो० रामगढ़, हज़ारीबाग़	,,
३०८३२	श्रीमती विमला देवी, C/o पं० जुन्सीमल शर्मा, टाइमकीपर एन० डब्लू० आर०, पो० दुलबन्दीन क्वेटा ...	६॥)
३०८३३	बाबू मोतीराम, C/o मेसर्स भगवानदास परमेश्वरदास, क्लाथ मरचेन्ट, लक्ष्मीबाज़ार, दिल्ली ...	६॥)
३०८३४	श्रीयुत रामहित दुबे, मु० हरवादुबे का पुरवा, पो० गोला, गोरखपुर ...	३॥)
३०८३५	बाबू हरिकृष्ण चतुर्वेदी, टी० डी० एल० एसोसिएशन, पो० गौहाटी, आसाम	,,
३०८३६	बाबू परमेश्वरदयाल मारवाड़ी, मु० कोथलाबासा, पो० जरवा, गोंडा	३)
३०८३७	श्रीयुत व्रजनाथ अग्निहोत्री, C/o मेसर्स धनी ब्रादर्स, बड़ा बज़ार मयमनसिंह	६॥)
३०८३८	श्रीयुत ईश्वरीदत्त उपरेती, कैम्प क्लार्क नैनीताल (यू० पी०) ...	६)
३०८३९	बाबू दुर्गादास सिनहा, S/o बाबू नन्दकिशोरलाल इन्सपेक्टर पुलीस, बाकरगञ्ज बजाज़ा, बाँकीपुर ...	,,
३०८४०	मेसर्स भवानीप्रसाद गिरधरलाल हटिया बाज़ार, कानपुर ...	६॥)
३०८४१	श्रीमती सुखराज कुमारी कौल, मार्फ़त श्री० एम० एन० कौल, ११ कानपुर रोड, इलाहाबाद	,,
३०८४३	श्रीयुत रामजीवन गुप्ता क्लार्क इरिगेसन ब्राञ्च पञ्जाब, सराय भवराँ कलाँ बहावलपुर (पञ्जाब) ...	४॥)
३०८४४	राजा श्रीराम साहब तालुक़ेदार, ऑनरेरी मजिस्ट्रेट, मौरावाँ उन्नाव। ...	६॥)
३०८४५	श्री० सत्यवती, मार्फ़त रायसाहब लाला कृपाराम ज़िक्यूटिव इञ्जीनियर पो० मरदन N. W. F. P. ...	,,
३०८४६	पं० गङ्गाप्रसाद मिश्र, कन्ट्राक्टर सिवनी (जबलपुर) सी० पी० ...	,,

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
३०८४७	हेडमास्टर बी० एम० एच० ई० स्कूल सिवान	५)
३०८५०	श्रीमती प्रभादेवी मार्फ़त सुबेदार जोगेश्वरप्रसाद द्विवेदी मु० पो० बोर्धा, होशङ्गाबाद द्वारा इटारसी	६॥)
३०८५१	श्री० भद्रपालसिंह, मु० एकदला, पो० किसनपुर, फ़तेहपुर	,,
३०८५२	सेक्रेटरी, रेलवे इण्डियन इन्स्टीट्यूट ई० आई० आर० रायबरेली ...	३॥)
३०८५३	श्रीमती वसन्तकुमारी, D/o पं० तीरथराज त्रिपाठी, मु० देवरिया, पो० इटौरा, (फ़ैज़ाबाद) ...	६॥)
३०८५४	श्री० जी० पी० मिश्र, वकील होशङ्गाबाद	६॥)
३०८५५	मेसर्स हरमोहन दे देवसरनराम लुमडिङ्ग, आसाम	६॥)
३०८५६	मिसेज़ शकुन्तला बधवार, मार्फ़त श्री० आर० डी० बधवार इ० ए० सी० हिसार	६॥)
३०८५७	श्रीयुत अविनाशचन्द्र सुद, बी० ए०, एल्-एल्० बी० प्लीडर "कैलाश" होशियारपुर पञ्जाब	६॥)
३०८५८	श्रीयुत मोहनलाल शर्मा, श्री० शङ्कर फ़्लावर एण्ड राईस मिल, बरेली ...	६॥)
३०८५९	श्रीयुत शम्भुनारायणसिंह उदयप्रताप कॉलेज, ८ बोर्डिङ्ग हाउस बनारस ...	६॥)
३०८६०	मिसेज़ बी० बी० एस० वर्मा, C/o रायबहादुर बाबू विशनलाल डी० आई० जी० ग्वालियर स्टेट	६॥)
३०८६१	सेठ नूपचन्द जैन वारा सिवनी, ... (बालाघाट)	६॥)
३०८६२	श्रीयुत हज़ारीमल नहटा, दी बङ्गाल जूट एसोसिएशन, सरदारशहर बीकानेर	६॥)
३०८६३	श्री० सी० बी० अग्रवाला, एम० ए०, बार-एट-लॉ ५१० सचापुर स्ट्रीट, कैम्प पूना नं० १	६॥)
३०८६४	बाबू गोपालचन्द्र शर्मा सार्टर आर० एम० एस० मारवाड़, जङ्क्शन बारमेर	३॥)
३०८६५	श्रीराधाकिशन गुप्ता, मार्फ़त मेसर्स भवानीराम बलभद्रलाल पो० बन्धा बाज़ार द्वारा राजनदगाँव ...	३॥)
३०८६६	मिसेज़ रुबी मु० बसडीहा, पो० नबीनगर, गया	३॥)
३०८६७	श्री० बी० पी० चौधरी सेक्रेटरी इण्डियन इन्स्टीट्यूट बी० एन० डब्लू० आर० मोकामा घाट पटना ...	६॥)
३०८६८	सेक्रेटरी विशेश्वर हाल लायब्रेरी बाँकीपुर पटना	६॥)
३०८६९	मिस एस० एम० देवी, मार्फ़त श्री० बी० एन० प्रधान, डी० एस० एण्ड एफ़० एसोसिएशन पो० कुरसियोंग (नार्थ बङ्गाल)	६॥)
३०८७०	श्रीयुत यदुराम गार्ड ई० आई० आर० झाझा (मुङ्गेर) ...	३॥)
३०८७१	श्री० वी० पी० अखौरी बी० एल० प्लीडर, खूँटी, राँची	६॥)
३०८७४	श्रीयुत रामलाल मारवाड़ी, मु० पो० सिसवा बाज़ार, गोरखपुर ...	६॥)
३०८७५	श्रीमती शान्तिदेवी, पो० बावली मेरठ	३॥)
३०८८०	श्रीयुत रतनगर्भ शर्मा, ओल्ड जनरलगञ्ज, कानपुर	३॥)
३०८८१	श्रीयुत सीताराम मार्फ़त मेसर्स रामेश्वरलाल विशेश्वरलाल, मु० पो० बरहज, गोरखपुर	६॥)
३०८८३	बाबू दीनानाथ सिनहा, क्लास १०-ए गवर्नमेण्ट जुबली हाईस्कूल, गोरखपुर	,,
३०८८४	हेडमास्टर, डी० वी० मिडिल स्कूल जखोली, (रोहतक) ...	,,
३०८८६	पं० वसुदेवसहाय शुक्ल, मु० पो० उमारदाह, फ़तेहगढ़ ...	,,
३०८८७	श्रीमती अमरवकौर, मार्फ़त पं० हुकुमचन्द भारद्वाज, हजरो (कैम्पबेलपुर)	,,
३०८८८	श्रीयुत बालकृष्ण मार्फ़त मेसर्स धनीराम पदरातीराम कूपरगञ्ज, कानपुर	,,
३०८८९	मिसेज़ सुशीलासिंह, पो० ओमरमऊ, सागर सी० पी०	,,
३०८९०	सेक्रेटरी रिडिङ्ग रूम एण्ड लायब्रेरी, मार्फ़त प्रोफ़ेसर एन० जी० डमला एफ़० फ़र्गुसन कॉलेज पूना नं० ४	,,
३०८९१	श्री० देवेन्द्रकुमारसिंह, मार्फ़त एच० सी० धवनीवाला बी० ओ० सी० पेट्रोल	

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
	एजेण्ट, आउट साइड, हाथी गली, उदयपुर	६॥)
२०८९२	बाबू नागेश्वरप्रसादसिंह, ज़मींदार, मु० पिरनगरा स्टेट, सुरकी पुस्तकालय, पोस्ट ऑफ़िस स्टेट सोनबरसा, मुङ्गेर	,,
२०८९३	श्री० डी० डी० नारङ्ग, कोसी रोड, जमशेदपुर द्वारा टाटानगर, बी० एन० रेलवे	,,
२०८९५	पं० शिवनन्दनप्रसाद मिश्र, इन्सपेक्टर छपरा टाउन पुलिस स्टेशन, पो० छपरा	३॥)
२०८९७	श्रीयुत त्रिभुवनलाल सक्सेना, ए० एस० मास्टर कायमगञ्ज, फ़तेहगढ़ यू० पी०	६॥)
२०८९८	मेसर्स रामलाल बन्धूप्रसाद, घुमनी बाज़ार, कानपुर	,,
२०८९९	डॉक्टर पटेल, मार्फ़त डी० एल० बी० डिसपेन्सरी, मु० पो० बेटावड द्वारा बोडरूक, जि० ईस्ट ख़ानदेश ...	६)
२०९००	श्रीयुत हज़ारीलाल घाडेटी अग्रवाला, सेक्रेटरी अग्रवाल नवयुवक मण्डल सिवनी मालवा, ज़ि० होशङ्गाबाद ...	३॥)
२०९०१	श्रीमती जानकीदेवी, पोस्ट० कोटा, नैनीताल, यू० पी० ...	६॥)
२०९०२	श्रीमती जगरानी देवी, हाउस ऑफ़ लाला कल्लूमल खत्री, लखी दरवाज़ा, सहारनपुर	३॥)
२०९०३	मेसर्स रतनलाल जगदीशप्रसाद आढ़ती, हल्द्वानी, नैनीताल ...	६॥)
२०९०४	श्रीयुत मनीलाल ए० शाह, ८३ मरचेण्ट स्ट्रीट, मण्डले (बर्मा) ...	३॥)
२०९०६	मेसर्स जोहरमल वासदेव योगी, पोस्ट तेजपुर (आसाम) ...	,,
२०९०७	सेठ सूलचन्द कस्तूरचन्द, मु० पो० कारन, (धार स्टेट) ...	६॥)
२०९०८	श्रीयुत ओ३म्प्रकाश शर्मा, १०३ न्यू ब्लॉक्स होस्टल, मेरठ कॉलेज, मेरठ	,,
२०९०९	श्रीयुत नीधिनारायण तेपाकोठी, छपरा पो० सारन	३॥)
२०९११	श्रीयुत जी० पी० पाण्डे, २ कोर्टहील शिमला	६॥)
२०९१२	मिसेज़ नरेन्द्रप्रसाद, मार्फ़त आर० नवाबलाल वकील, पो० बलिया, बी० एन० डब्लू० आर० ...	६॥)
२०९१३	श्रीयुत पुरुषोत्तम केशव जोशी, ओवरसियर बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे। भड़ोंच	६॥)
२०९१५	श्रीयुत बी० आर० पटेल, मु० पो० झालर, बेतूल, होशङ्गाबाद ...	६॥)
२०९१८	श्रीमहाराजकुमार श्रीरामबहादुरसिंह जी साहेब, मु० मण्डल, पो० रेनी, जोधपुर बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे, ...	६॥)
२०९२१	श्रीयुत हरिहरप्रसाद सिनहा, सेक्रेटरी कॉमनरूम मौडल हाई स्कूल, गया	३॥)
२०९२२	श्रीमती अशर्फ़ी देवी मार्फ़त श्रीयुत प्रकाशचन्द्र, बी० ए० एल-एल० बी० वकील, दिल्ली	६॥)
२०९२३	श्रीयुत बिहारीलाल (मन्त्री) साधु आश्रम पुस्तकालय, फ़ाज़िल्का	६॥)
२०९२४	श्रीयुत गोकुलचन्द पन्चरिया, ११५ चिना बाज़ार रोड, जॉर्ज टाउन मद्रास	३॥)
२०९२५	श्री० धनेश्वर मिश्र रीडर तहसील पाल, धमनी सुरगुजा, बिलासपुर	६॥)
२०९२६	मेसर्स मदनगोपाल शिवरतन गाँधी, मु० चिचोली, पो० अजन गाँव सुरजी, अमरावती ...	३॥)
२०९२७	श्रीयुत अनिरुद्धप्रसाद शर्मा, मार्फ़त बाबू रामनारायणप्रसाद शर्मा, मु० अरवा, पो० शाहकुण्ड, भागलपुर	६॥)
२०९२८	श्री० अरविन्द घोष, सेक्रेटरी कॉमन रूम रूम० नं० ६१, जनियाली होस्टल ३३।१, एमहर्स्ट स्ट्रीट, कलकत्ता	६॥)
२०९२९	श्रीमती चन्द्रकिशोरी बहादुर मार्फ़त बाबू शमशेरजङ्ग बहादुर, पो० छपरा	६॥)
२०९३०	श्री० डी० आर० चिखलकर मार्फ़त मेसर्स लालसाह कन्हैयासाह सराफ़ा ओली नागपुर सिटी ...	३॥)
२०९३१	ऑनरेरी मैनेजर, वर्धमान वाचनालय जैन धर्मशाला हारदा, होशङ्गाबाद सी० पी०	६॥)

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
३०६३२	ठाकुर पन्नासिंह, मु० जरवटा, पो० साखून, (जयपुर स्टेट) ...	६॥)
३०६३३	श्रीमती रामप्यारी हेड मिस्ट्रेस, जैन-कन्या विद्यालय पहाड़ी धीरज, दिल्ली	,,
३०६३५	श्रीयुत पन्नालाल जैन, मु० पो० सागोद, कोटा स्टेट, राजपूताना ...	३॥)
३०६३८	श्रीयुत देवसिंह मुनीम धौल पो० फालिया, गुजरात, पञ्जाब ...	३॥)
३०६३६	मिसेज़ सिंघानिया हंसराज त्रिपोलिया हाउस, जोधपुर मारवाड़ ...	६॥)
३०६४०	श्रीमती दयावती देवी, मार्फ़त आर० सी० शर्मा बी० एन० आर० कोयलरी, पो० टालचर, कटक, उड़ीसा ...	,,
३०६४२	सेक्रेटरी श्रीजगन्नाथ पुस्तकालय अरसी, पो० सोनवरसा राज, भागलपुर ...	६॥)
३०६४३	सेक्रेटरी गुजराती लायब्रेरी, झारसुगुड़ा	५)
३०६४४	देवान राजाराम चोपरा, बी० ए०, पेशावर कैण्ट	६॥)
३०६४५	श्रीमती सुशीलकुमारी, मार्फ़त लाला जयदयाल साहब लुथरा साहीवाल, शाहपुर	३॥)
३०६४६	श्रीमती यशोदादेवी, वाइसराय डिसपेन्सरी, शिमला	६॥)
३०६४७	ठाकुर माधोसिंह, बी० एस-सी०, मु० डण्डीयामाई, पो० शिकोहाबाद, मैनपुरी	,,
३०६४६	कुँवर यशवन्तसिंह जी जागीरदार, पलकिया हाउस कोटा, राजपुताना	,,
३०६५०	श्रीयुत रामनारायण वर्मा फ़र्स्ट असिस्टेण्ट टीचर, पाठशाला अतरू, कोटा स्टेट, राजपुताना ...	,,
३०६५१	श्रीयुत लीलाधर लालशाह, मार्फ़त शा लाल जी डोंगरसी, बरदनवाला मरचेण्ट एण्ड कमीशन एजेण्ट, शाहगेट बम्बई नं० ३	,,
३०६५२	मेसर्स साँवलदास चिमनलाल जैन, स्टोन कण्ट्राक्टर्स, मोरक बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे	३॥)
३०६५३	पं० रघुनन्दन शर्मा श्रीमाली ब्राह्मण मु० हरली मारवाड़ पो० गुरधा बालोतरा	६॥)
३०६५४	श्रीयुत धूरचन्द गाँधी, ग्रेन मरचेण्ट, धमतरी, रायपुर	६॥)
३०६५५	ठाकुर भैयालालसिंह पुरुषोत्तमसिंह क्षत्रिय बरघट, पोस्ट बरघट (सिवनी) सी० पी०	,,
३०६५६	श्री० हरिकृष्णप्रसाद, मु० पुरन्दरपुर, पो० बाँकीपुर, पटना ...	३॥)
३०६५७	श्रीयुत हरेकिशनसिंह, मु० देसना, पो० चैता, दरभङ्गा	६॥)

गत जून, जुलाई तथा अगस्त मास में हमें निम्नलिखित पुराने ग्राहक-नम्बर के ग्राहकों के रुपए मिले हैं :—

ग्राहक-नम्बर	प्राप्त रक़म	ग्राहक-नम्बर	प्राप्त रक़म
२६८६३	३॥)	२८६६२	६॥)
६१३	६॥)	२५७६०	,,
२८७६६	,,	६६४६	,,
१८३३३	,,	१८८२६	,,
२८३५७	५)	१३४६४	६॥)
३००२७	२॥)	१८८१६	,,
६४१८	६॥)	२८६४७	,,
२५२७	,,	२६६८०	३॥)
१३६६०	,,	६२३६	६॥)
२८७८६	,,	१८७३६	,,
१८५६३	,,	१८८४६	,,
१८६७६	,,	१०२८०	,,
६७७८	,,	१८४०७	,,
१८३७२	,,	१८८१७	,,
१४४१	,,	६२३	,,
२८६०५	,,	२८५६७	,,
१८४४३	,,	२८८६३	,,
२८७०१	,,	२८६५७	,,
२८७१३	,,	२६८६३	३॥)
३६३०१	,,	२६७४५	६॥)
२६८४६	,,	१७८६७	,,
६६८७	,,	६७०६	,,
२६११२	,,	२६२५३	,,
२६१४६	,,	६७८३	,,
६८५३	,,	२६१५२	,,
४०२०	,,	४०५५	,,
६३३५	,,	२५१३	,,

ग्राहक-नम्बर	प्राप्त रक़म	ग्राहक-नम्बर	प्राप्त रक़म	ग्राहक-नम्बर	प्राप्त रक़म	ग्राहक-नम्बर	प्राप्त रक़म
२४९३	६॥)	९९५	६॥)	१८७४२	६॥)	१८९२७	६॥)
२६३३	"	१४३८५	"	१८८२९	"	१८७९५	"
१३४४८	"	१३७४७	"	१८६५९	"	१८७३८	"
१३७६९	"	१८७८६	"	१८५२३	"	१७४३७	"
१९०७५	"	१९२१४	"	१८७२१	"	२८८११	"
१८९१७	"	१८९१०	"	१८९०९	"	१८९२९	"
१८८५३	"	२८६६३	"	१९०२१	"	१३७७३	"
२८६९७	"	२८६५२	"	१३७०२	"	२८७०४	"
१८२२०	"	१८५२२	"	२८६४०	"	२६३९७	"
१८३३९	"	२८७१७	"	१००८७	"	२६२२३	"
२८६८०	"	२८६२१	"	२६३८१	"	२६३९४	"
२९८२७	"	२८७५६	"	२९३९५	"	२६४२२	"
१८५३३	"	४१५७	"	२६२२१	"	२४९७	"
६३७२	"	९७७४	"	३९५३	"	४०१७	"
१९२६८	"	२६३०३	"	७६७९	"	७९४२	"
२८७४९	"	२८९०४	"	९९१	"	९९३३	"
१८४०९	"	१८४९५	"	९९४०	"	९७८२	"
१८४१६	"	१८५२४	"	१८८११	"	२९९४४	"
१८५५२	"	१८६४४	"	१५७१४	"	१३६९३	"
७१५	"	३९८९	"	९७६२	"	२६२००	"
४०१८	"	१३६८३	"	२४१३	"	२३९०	"
१८७३२	"	२८६०१	"	२७३७१	"	२७२३९	"
२६२३६	"	१९२०५	"	२८७९१	"	२८६७१	"
१८७३१	"	९५१७	"	२८६६७	"	२८७२०	"
६३१८	"	२५१२	"	२८५७२	"	२८६२४	"
२९९३९	"	१८६०९	"	२६३७५	"	१८७३३	"
२८७५४	"	२८७३५	"	१६२६३	"	१४३६६	"
२८६९८	"	२८०८६	"	१३८३४	"	७७४५	"
२६४५६	"	२६२३०	"	९७१५	"	१२६५७	"
२६१५५	"	२९८८६	"	१८९०१	"	२६२७१	"
९६९१	"	२५३४	"	२८६६६	"	६३९४	"
१४८८	"	१२२३९	"	६२०३	"	९८०८	"
१३६९५	"	१०७०४	"	२८७३०	"	२७२९८	"
९८१०	"	९६८९	"	२८६८९	"	२८७८५	"
२८६२०	"	२९९७२	"	३१०२७	"	१८२७८	"
२८८५३	"	२८७९५	"	१४५७	"	१८६२८	"
२८८२५	"	२६३५९	"	१७१९९	"	२६२१८	"
२६४३४	"	२६२३१	"	१३६८०	"	९९९९	"
२६२१४	"	२६२९४	"	१३६८०	"	२८६२५	"
२६३९६	"	१९०२७	"	२६३३५	"	१३४३८	"

ग्राहक-नम्बर	प्राप्त रक़म	ग्राहक-नम्बर	प्राप्त रक़म	ग्राहक-नम्बर	प्राप्त रक़म	ग्राहक-नम्बर	प्राप्त रक़म
१७९८४	६।।)	१८७१५	६।।)	६४४२	६।।)	२९०५४	६।।)
१९०७९	"	१८८४४	"	२६४८५	"	१४०५५	"
२७२१५	"	२७२६८	"	४०२५	"	१६९८९	"
२८७०७	"	२८७८६	"	६४७२	"	१९२९७	"
१३९५५	"	१३८६२	"	१३९६८	"	१४२८७	"
१३८००	६।।।=)	१०१३०	"	२८७३७	"	२४२५४	"
२६४६३	६।।)	९३०२	"	१००९९	"	१९१३४	"
२६४०४	"	२६३७१	"	२६४६४	"	१८६६२	"
२६३३३	"	२६२२७	"	२९०२१	"	२०११०	"
२६३२४	७)	२०१५१	"	१९२१३	"	१९६५४	"
१९२००	६।।)	१९१३०	"	४२७८	"	१५७७	"
१९०२२	"	१८७६५	"	२६५९७	"	२६५२२	"
१८७६२	"	१६३८६	६।।)	१३८८५	"	४२५२	"
१५१०९	७।=)	१००६	"	१९१२८	"	१५५५	"
२८८८७	६।।)	२०१५८	"	१९८०३	"	९९६१	"
२६४६९	"	१४०३४	"	१९२६१	"	२९०२२	"
१८८७४	"	१३८३७	"	१०२६०	"	१९२५०	"
१५४३	"	१६०४	"	२८९१२	"	२९२३४	"
६५१२	"	१३९५३	"	३०९२३	"	२९००६	४।।)
२९०९५	"	२८८०४	"	२८२७०	३।।)		
२६५२४	"	२६५६३	"				
१५७४३	"	४०६६	"				
६४२१	"	१९२९९	"				
१४२०३	"	२६४१२	"				
१०००७	"	४१७४	"				
२९५२२	"	१०२२७	"				
१०११७	"	१८८७०	"				
२८९२९	"	१९१९६	"				
२८९७८	"	२८९०१	"				
२६५६५	"	४२०४	"				
६४१३	"	२८७९७	"				
२८७०५	"	२८९३८	"				
९९२८	६।।)	६३७६	६।।)				
२४८३	"	४१८९	"				
१९१८४	"	१९१९१	"				
१९६४९	"	२६४३०	"				
१०२२३	"	१६४७०	"				
१३९९५	"	१९६४६	"				
१९२४४	"	१०२८६	"				
५१५१	"	२८९१३	"				

निम्न-लिखित ग्राहक-नम्बर के ग्राहकों को अक्टूबर १९३२ का अङ्क अक्टूबर मास के पहले सप्ताह में वी० पी० द्वारा भेजा जायगा। आशा है, वी० पी० स्वीकार कर वाधित करेंगे।

७०१ १३८७ १३९२ २७१४ २७२५ २७३३ २७४३
२७४९ २७७९ २७८२ ३१०७ ३५७० ३५७२ ३६५७
३६८९ ३७१३ ४३३० ४३६८ ४३७० ४३७१ ४३७७
४३९२ ४३९४ ४४१३ ४४२१ ४४३१ ४४४९ ४४९०
४५०१ ४५७६ ४६३५ ५६४७ ५६६९ ५७८४ ६६२८
६७२५ ६७६६ ६८०० ६८१३ ६८१५ ६८२१ ६८४३
६८५१ ६८५७ ६८५८ ६८५९ ६८६० ६८६४ ६८६६
६८८४ ६८८७ ६९४१ ७११६ ८२७१ ८३१८ ८४९४
८६०१ ८७९२ ९८२१ १०३८१ १०४४६ १०५६०
१०६४२ १०६४३ १०६५६ १०६५७ १०६६७ १०६६९
१०६७७ १०६८५ १०७:८ १०७३४ १०७३६ १०७३९
१०७४१ १०७४९ १०७५१ १२०१८ १२११९ १२०६६
१३०८८ १३१११ १४३२३ १४४९५ १४४९७ १४५३१
१४५६२ १४५६५ १४५७५ १४६०५ १४६०८ १४६१०
१४६१६ १४६२० १४६२३ १४६२४ १४६४० १४६५४

१४६६३ १४६७७ १४६८० १४६८६ १४६९७ १४७१२
१४७१४ १४७५५ १४७५६ १४७५८ १४७६४ १४७६५
१४७८५ १४७९० १४७९४ १४८५८ १४८६२ १४८६४
१४८८६ १४९३० १४९३७ १४९४२ १४९७२ १५५५४
१६९४८ १७१७५ १७२१० १७२७३ १७२३२ १७५८३
१७५९५ १८२१४ १९०८४ १९३३० १९३९० १९३९१
१९३९८ १९४७५ १९५३७ १९५५६ १९५६७ १९७०७
१९७०९ १९७१० १९७११ १९७३६ १९७८१ १९७८४
१९८२४ १९८६२ १९८६४ १९८६९ १९८७५ १९८८१
१९८८२ १९८८३ १९८८९ १९८९५ १९९०१ १९९११
१९९१३ १९९१८ १९९२० १९९२३ १९९२४ १९९२८
१९९२७ १९९३४ १९९३५ १९९३७ १९९४१ १९९४२
१९९५१ १९९५२ १९९५५ १९९५९ १९९६२ १९९६३
२०१६४ २०१६९ २०१७७ २०१८० २०१८१ २०१८३
२०१८४ २०१८७ २०१९१ २०२०९ २०२१० २०२११
२०२१४ २०२१५ २०२१६ २०२१७ २०२२१ २०२२२
२०२२४ २०२३० २०२३६ २०२४२ २०२५१ २०२६९
२०२८५ २०२८७ २०२८८ २०२९२ २०२९४ २०२९५
२०३०१ २०३१२ २०३१८ २०३२२ २०३२३ २०३२४
२०३३७ २०३३८ २०३३९ २०३४६ २०३५४ २०३५५
२०३८७ २०३९० २०३९१ २०३९७ २०३९८ २०३९९
२०४०३ २०४०६ २०४३४ २०४३६ २०४४२ २०४४६
२०४६८ २०४७७ २०४८६ २०४९५ २०४९७ २०४९८
२०४९९ २०५०० २०५०४ २०५०५ २०५०७ २०५०८
२०५१० २०५३३ २०५३६ २०९०८ २१०७४ २१०८०
२१११९ २१६४७ २१८९२ २१८९७ २१८९९ २१९०१
२१९०६ २१९०८ २२५२८ २९७४२ २९७४३ २९७८४
२५१४४ २६७३३ २९१६० २९२७१ २९३१५ २९३७५
२५३११ २६७३५ २९१६९ २९२७३ २९३१६ २९३७६
२५५२४ २६७४७ २९१७० २९२७४ २९३१७ २९३७७
२५८१३ २६७६० २९१७८ २९२७५ २९३१८ २९३८३
२६३९९ २६७८३ २९१८५ २९२७६ २९३२३ २९३८४
२६५३७ २६८४३ २९१८६ २९२७८ २९३२४ २९३८५
२६५३८ २६८९८ २९१८७ २९२७९ २९३२५ २९३८६
२६५९९ २७०२४ २९१९७ २९२८१ २९३२८ २९३८७
२६६०२ २७०५४ २९२०५ २९२८३ २९३२९ २९३८९
२६६०६ २८०२३ २९२२३ २९२८६ २९३३१ २९३९०
२६६२८ २८०५५ २९२२४ २९२८७ २९३३२ २९३९१
२६६३१ २८०८४ २९२२६ २९२८८ २९३३३ २९३९२
२६६३२ २८११३ २९२२७ २९२९१ २९३३४ २९३९३
२६६३३ २८१४१ २९२२९ २९२९२ २९३३५ २९३९६
२६६४६ २८२३१ २९२३० २९२९३ २९३३६ २९३९७
२६६५० २८२५९ २९२३५ २९२९७ २९३३८ २९४००
२६६५१ २८४१९ २९२३६ २९३०० २९३४० २९४१०
२६६६२ २८४७४ २९२३९ २९३०१ २९३४१ २९४११
२६६७० २९०६३ २९२४० २९३०२ २९३४२ २९४१२
२६६७३ २९०७८ २९२४१ २९३०४ २९३४३ २९४१४
२६६७५ २९११२ २९२४२ २१३०५ २९३४४ २९४१६
२६७०३ २९११५ २९२४४ २९३०६ २९३४६ २९४२५
२६७१८ १९११७ २९२४६ २९३०७ २९३४७ २९४३७
२६७२० २९१३४ २९२४७ २९३०८ २९३४९ २९४३८
२६७२२ २९१३५ २९२४८ २९३०९ २९३५१ २९४३९
२६७२४ २९१३६ २९२५२ २९३१० २९३५४ २९४६७
२६७२५ २९१३७ २९२५५ २९३१४ २९३७२ २९४५५
२६७२८ २९१५५ २९२५७ २९३७३ २९२६५ २९१५९
२९१५७ २९१५९ २९३७४ ३०१३८ ३०१८८ २९८४४
२९४५६ २९४५० २९४५८ २९४६० २९४६७ २९४६३
२९४६४ २९४६५ २९४६६ २९४६७ २९४६८ २९४६९
२९४७६ २९४७८ २९४७९ २९४८० २९४८१ २९४८२
२९५०० २९५०१ २९५०२ २९५३० २९५५८ २९५७६
२९६०१ २९६१४

एक आवश्यक सूचना

हमारे कितने ही ग्राहक, विज्ञापनदाता और एजेण्ट हमें बैङ्क के चेकों द्वारा रुपए भेज देते हैं, उनके चेकों के रुपए हमें बैङ्कों से मँगाने पड़ते हैं, जिसके लिए फ़ी चेक चार आने सैकड़े के हिसाब से बैङ्क वाले काट लेते हैं। फलतः अकारण कम्पनी को यह क्षति उठानी पड़ती है। इसके सिवा कम्पनी के ऑडिटर्स भी इसमें आपत्ति करते हैं, इसलिए चेक के द्वारा रुपए भेजने वाले सज्जनों से निवेदन है कि कृपया चेक की रक़म में चार आने सैकड़ा अधिक लिख दिया करें, ताकि कम्पनी इस अकारण क्षति से बच जाय। आशा है, हमारे विज्ञापनदाता, ग्राहक और एजेण्ट चेक द्वारा रुपए भेजने के समय हमारे इस निवेदन पर अवश्य ही ध्यान देंगे।

विनीत,
जनरल मैनेजर
चाँद प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

क्या आपकी स्त्री अधिक सन्तान उत्पन्न करने से निर्बल तथा निस्तेज हो गई है ?

तो

आप हमारे सन्तति-निग्रह के सर्वोत्तम साधन का प्रयोग कीजिए।

यह साधन **'का-हा-पैसरी (मीरा)'** है।
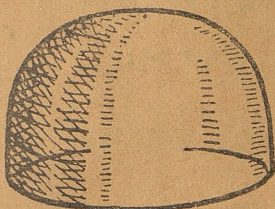
का-हा-पैसरी (मीरा)

यह रबर तथा धातुओं की पैसरी (कैप) से सहस्रों गुणा उपयोगी है। क्योंकि यह सैल्युलॉइड जैसे पदार्थ से बनी है और कभी टूट नहीं सकती—इस प्रकार एक पैसरी जन्म भर काम देती है; इसके प्रयोग से बच्चेदानी के भीतर का रस खराब होकर रोग नहीं पैदा करता; इसका प्रयोग सरलता से किया जा सकता है; यह जल नहीं सकती; यह बोझ में बहुत हलकी है और बिना किसी कष्ट के कई दिनों तक भीतर रक्खी जा सकती है। पैसरी के साथ प्रयोग की विधि मुफ़्त भेजी जाती है। मूल्य प्रति पैसरी केवल ५) (याद रखिए ५) व्यय करके जन्म भर को छुट्टी हो जाती है)। हमारे यहाँ सन्तति-निग्रह के अन्य पदार्थ, जैसे घोल, जैली आदि भी मिलते हैं। सूचीपत्र मँगा कर देखिए।

मिलने का एकमात्र पता:—

टी० एम० ठक्कर एण्ड को०, चर्चगेट स्ट्रीट, बम्बई नं० १

ऑर्डर भेजते समय कृपया लिखिए कि यह विज्ञापन आपने 'चाँद' में देखा था।

पायरेक्स

मलेरिया के लिए मशहूर और ख़ास दवा

पायरेक्स—कोई गुप्त औषधि नहीं है, यह आजकल का सर्वोत्तम बुख़ार मिक्स्चर है। बहुत प्रचलित और आज़माए हुए सिद्धान्तों के आधार पर बनी हुई है। किसी भी सज्जन के मँगाने पर विवरण भेजा जा सकता है।

पायरेक्स—यह सिर्फ़ मलेरिया बुख़ार ही के लिए उत्तम नहीं, बल्कि इसके लगातार उपयोग से किसी भी प्रकार का रोग पास नहीं फटकने पाता। उन स्थानों में, जहाँ पर मरीज़ों को किसी प्रकार की दवा का सुभीता नहीं, वहाँ यह घर-घर होनी चाहिए।

पायरेक्स—तापतिल्ली, जिगर व इनफ़्लुएन्ज़ा और दूसरी बीमारियों के लिए भी बहुत उपयोगी है। एनीमिया के लिए भी विशेष फ़ायदा पहुँचाने वाली चीज़ है। बुख़ार के बाद की कमज़ोरी के लिए अद्वितीय दवा है।

पायरेक्स—४ औंस की बोतल, जिसमें १६ ख़ुराक होती है, उसमें बहुत अच्छी तरह से पेक की जाती है। इसके मुक़ाबिले दूसरी कोई भी बुख़ार की दवा सस्ती और मुफ़ीद, कोई भी डॉक्टर या हकीम आपको नहीं दे सकेगा।

नक़ल करने वालों से होशियार रहिए। ख़रीदने के पहिले हमारा ट्रेडमार्क देख लीजिएगा।

बी० सी० पी० डब्लू०—बङ्गाल केमिकल एण्ड फ़ारमेस्यूटिकल वर्क्स लिमिटेड

१५ कॉलेज स्क्वायर, कलकत्ता

Regd. No. A—1154

Printed and Published for and on behalf of The Chand Press, Limited, by Shrimati Lakshmi Devi at The Fine Art Printing Cottage, 28, Edmonstone Road, Chandralok—Allahab